सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक ६

वार्षिक मूल्य ८)

तरंगित हृदय

(प्रथम भाग)

लेखक—

श्रीयुत 'अभय' विद्यालंकार

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य—महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ४) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारण के लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसौ पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएँ

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या अन्दाज लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

वर्ष १]

सस्ती विविध पुस्तकमाला
सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला

[पुस्तक ६

तरंगित हृदय

अथवा

विचार तरंगमाला

लेखक—
श्रीयुत पं० देवशर्मा जी 'अभय' विद्यालंकार,
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वेदोपाध्याय
तथा उपाचार्य (Professor of Ved and
Vice-Principal)

प्रकाशक—
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल
अजमेर

१९२६

प्रथमबार २०००]

मूल्य ।≡)

प्रकाशक—

जीतमल लूणिया,

मंत्री—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल अजमेर,

हिन्दी प्रेमियों से प्रार्थना

इस मंडल के स्थायी ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुवे हैं। आप उन्हे एक वार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचि के अनुसार स्थायी ग्राहक वन कर व अपने मित्रों को बनाकर इसके प्रचार में हमारी सहायता करें।

मुद्रक—

गणपति कृष्ण गुर्जर,

श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

परिचय

कहावत है कि "वृक्ष अपने फलसे पहचाना जाता है", पर कभी कभी किसी नवीन प्रकारके फलके साथ उसके अप्रसिद्ध वृक्षका परिचय-प्रदान, फलकी उपादेयतामें हेतु हो जाता है। इसी विचारसे मैं फलोंका फ़ैसला ग्राहकों को—पबलिक को—परख पर छोडकर वृक्षका बखान करने लगा हूँ।

इन विचार तरंगोंके सागर पं० देवशर्मा, गुरुकुल कांगड़ीके एक सात्त्विक स्नातक हैं (और अब वहींके वेदाचार्य हैं)। बहुत पतले दुबले कृशकाय तपस्वी हैं, अभी युवा हैं—२०-३० के बीचकी वयस है—पर इस तरुण तपस्वीके संयम और तपको देखकर बड़े बड़े साधु-पेशा उम्ररसीदा बूढ़े बुजुर्ग (तपस्वी अर्जुनके प्रति इन्द्रकी) इस उक्तिका उच्चस्वरसे उच्चारण करनेके लिए विवश हो सकते हैं (यदि उनमें सत्य कहने का साहस हो!)

"त्वया साधु समारम्भि नवे वयसि यत्तपः।
ह्रियन्ते विषयैः प्रायो वर्षीयांसोऽपि मादृशाः॥"

कई वर्ष हुए यह विद्या व्रत स्नान करके शुद्ध स्नातक बन कर दूसरे आश्रमके अधिकारी हो चुके हैं; अपने वृद्ध पिताके एक मात्र कुल-तन्तु सन्तान हैं पर गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया। यथा पूर्व ब्रह्मचर्य विधिका पालन कर रहे हैं, बही

वेष, वही दिनचर्य्या, भूमिशय्या, कौपीन वसन, सत्तू आदि सात्विक आहार, शान्त और विनीत आकृति, "शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा" । मितभाषिता, जो विचारशीलताका परिचायक गुण है, और शील संकोच, जो कुलीनताका चिह्न है, उसके आप एक उदाहरण हैं। देखकर 'जड़भरत'की याद आ जाती है। इस शरीरको सचाई और दंभरहित स्वाभाविक सादगीकी चलती फिरती तस्वीर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

देवशर्माजी गांधी महात्माके पक्के भक्त और सच्चे अनुयायी हैं। कातनेकी धुनमें अपने आदर्शके समान मस्त रहना आपका प्रिय व्यापार है, पर इसमें व्यापारिकताका भाव नहीं है जीवनका एक व्रत है। आपका कमरा देखिये तो फ़र्श पर बिछे एक काले कंबल पर रखी हुईं कुछ पुस्तकें और कागज़, एकतरफ़ रखे एक या दो चर्खे तथा पूनियां, यही उस कमरेका सब सामान और फ़र्नीचर (Furniture) है। व्रतों और उपवासोंने इस कृशशरीरको कृशतर कर दिया है, दो दो महीने एक बार सत्तू खाकर ही बिता दिये जाते हैं, इतने पर भी बल और स्फूर्त्तिका अभाव नहीं है। यह जो कुछ कहते हैं सच्चे दिलसे अपना कर्त्तव्य समझ कर और चुपचाप एक कोनेमें बैठकर, प्रसिद्धिके लिये ढोल नहीं पीटते। उलटा अपने गुणोंको ऐबकी तरह छिपाते हैं। पर इस विज्ञापन-विज्ञान-प्रधान युगमें अज्ञात-वास असम्भव है। सूखी पत्तियोंके ढेरमें छिपे फूल को निगाहें ढूँढ़ ही लेता है।

"निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने की।
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तोंमें निहाँ होकर॥"

आख़िर यार लोग इन्हें भी 'छापे की मंडी' में खींच ही लाए 'ख़ानक़ाहके फ़क़ीर' को 'मदरसे' में ले आए। जो छिपते थे वह अब छपने जा रहे हैं!

वृक्षका बखान हो चुका, फलों पर अभी कुछ कहनेकी इच्छा नहीं है फिर भी कुछ तो कहना ही चाहिए, सनातन रीतिका उल्लङ्घन भी तो नहीं हो सकता। विचार-तरङ्ग माला का माली (लेखक) गांधीजी का अनन्य भक्त है, इसलिए विचारोंमें गांधीपनकी छाप है। देशभक्ति विषयक विचार इसी रंगके यानी गांधीजीके ढंगके हैं। लेखक को एक दूसरे महात्मा श्री अच्युत मुनिमें भी प्रगाढ़ श्रद्धा भक्ति है। अध्यात्मवाद उन्हींका प्रसाद है। इन दो महात्माओंके प्रभावसे प्रभावित होकर लेखक ने जो कुछ लिखा है अपने मनकी उमंग से लिखा है। विचारोंमें मौलिकता है, बेसाख़्तगी है बनावट नहीं। जो आया सो कह सुनाया कोरी 'आमद है आवुर्द नहीं'।

'तरंगित हृदय' के विचार मानस सरके वह मोती हैं जिन्हें आब नहीं दी गई, खानके ऐसे रत्न हैं जो सान पर नहीं चढ़े, ऐसे ख़ाके हैं जिनमें रंग नहीं भरा गया। इन्हें भाषा पनकी दृष्टिसे नहीं, भावगाम्भीर्यकी दृष्टिसे देखना चाहिए; किसी चर्ब ज़बान, जादूबयान लेकचरारके लेकचरकी शानसे नहीं एक सन्तकी वाणीके ध्यानसे पढ़ना सुनना चाहिए।

मतलब यह नहीं कि भाषा भद्दी है; नहीं, भाषा भी खरी चोखी है पर दार्शनिकता और आध्यात्मिकताके कारण वैसी नहीं जैसी कि आम लोग पसंद करते हैं।

पं० देवशर्माजी के इन लेखों को साहित्य परिषद्ने प्रकाशित करवा कर तथा सस्ता साहित्य-प्रकाशक मण्डलने प्रकाशित करके बड़ा उपकार किया है।

जगदन्तरात्मासे प्रार्थना है कि जिस उद्देशसे ये विचार प्रकाशित हो रहे हैं वह पूरा हो, इस तरुण तपस्वीका शुभ संकल्प सफल हो।

काव्यकुटीर, नायक नगला,
चांदपुर (बिजनौर)
ज्येष्ठ बदी ३ रविवार सं. १९८३ वि.

पद्मसिंह शर्मा

कृतज्ञता प्रकाश

गुरुकुल विश्वविद्यालय (कांगड़ी) हरिद्वार की 'साहित्यपरिषद्' संस्थाने अपनी यह श्री पं० देवशर्माजी लिखित 'तरंगित हृदय' पुस्तक हमें प्रकाशन के लिये दे देने की कृपा की है। इसके लिये हम 'साहित्य-परिषद्' के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने 'परिचय' रूप से प्रारंभिक लेख लिख देने की कृपा की है। इस अनुग्रह के लिये उनके भी हम बड़े आभारी हैं।

मंत्री—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल

अजमेर

लागत का ब्योरा।

कागज़	२३७)
छपाई	१९७)
जिल्द बँधाई	२९)
लिखाई विज्ञापन व्यवस्था आदि का व्यय	२१२)
प्रतियाँ २०००	६७५)

इसमें ८०० राजसंस्करण और १२०० साधारण।

राजसंस्करण प्रति पुस्तक की लागत	।=)
साधारण संस्करण प्रतिपुस्तक की लागत	।-)

सब विचारों के आदि स्रोत, हृदय के स्वामी,

परमपिता को

समर्पित करने के बाद

मैं यह

विचार-तरंगों की माला

अपने पूज्य, प्रातरभिवादनीय, शान्तमूर्त्ति, सरलहृदय, देव-जीवन, बिना शोर किये बड़ा कार्य करने वाले, परमात्मपरायण परोपकाररत, दुःखियों के आश्रय, सच्चे त्यागी, सच्चे ब्राह्मण

श्री० पं० रामप्रसाद जी के

पितृ चरणों में सादर भेंट

उपस्थित करता हूँ।

पुत्र—

देवशर्मा।

लेखक के पूज्य पिताजी
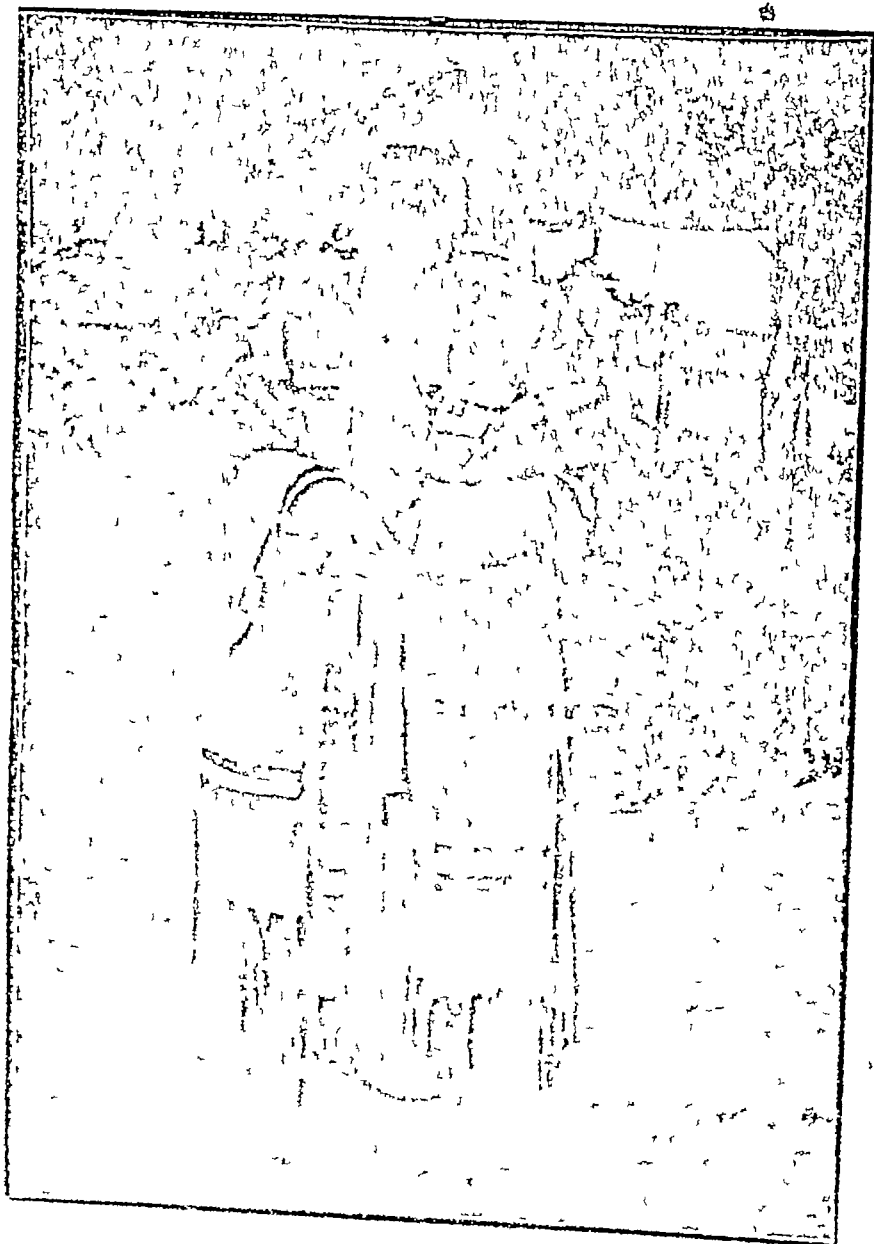
श्री पं० रामप्रसादजी शर्मा।

प्रस्तावना

अपने मानस-सर में उठने वाली कुछ विचारतरंगों को वाणी की स्वाभाविक 'फोटोग्राफी' द्वारा भाषारूप में चित्रित कर यह 'तरंगित हृदय' नाम से सहृदय सज्जनों के लिये संग्रह कर दिया है। ये सादे रंगरहित २१ चित्र हैं। भगवान् ने यदि मुझे 'कवित्व' कला प्रदान की होती तो मैं इन्हें रंगीन रच सकता और एवं बहुत से लोगों के लिये रुचिकर बना सकता। पर अब क्या करूँ? तोभी इस यंत्रालय के युग में जब कि जो कोई जो भी कुछ चाहता है छपा लेता है तो इन निर्दोष चित्रों के छपजाने से हानि तो कुछ है ही नहीं, बल्कि यदि कुछ लोग इन्हें भी देख कर प्रसन्नता प्राप्त कर सकें—मेरा सा 'मानस' रखने के कारण इन तरंगों में बहने का आनन्द प्राप्त कर सकें अर्थात् ये चित्र उनके मानस में भी ऐसी ही विचारतरंगे उठाने में समर्थ होसकें तो कुछ लाभ ही है। और यदि कहीं ये चित्र किन्हीं को 'सच्चे धर्म' के स्वरूप दिखलाने में साधन हो सकें तब तो यह सब श्रम सफल ही समझा जायगा।

अन्त में यही कहना है कि इन लेखों में एक भी शब्द विना पूरा विचार किये नहीं लिखा गया है, अतः यदि पाठक भी इन्हें मननपूर्वक पढेंगे—समय २ पर अवस्थाविशेष में इसके वाक्यों को पढेंगे—कई वार देखेंगे, तो आशा है कि ये लेख कुछ सेवाकारक सिद्ध हो सकेंगे।

गुरुकुलकांगड़ी
१३ वैशाख १६८३

पाठकों का सेवक
अभय

विषय-सूची

तरंग नाम	पृष्ठ	लिखे जाने का लगभग समय
१ नमस्कार ...	१ ...	... आषाढ़ १९८१
२ तेरा कौन है ...	६ ...	... वैशाख १९७४
३ चातक का वैराग्य	९ ...	... ज्येष्ठ १९७५
४ बीहड़ मार्ग ...	१३ ...	... वैशाख १९७५
५ सतानेवाला कौन है	१७ ...	... वैशाख १९७३
६ प्रतिष्ठा ...	२९ ...	... वैशाख १९७७
७ 'थोड़ासा' ...	३८ ...	... आषाढ़ १९७७
८ हंसता हूँ ...	४७ ...	... भाद्रपद १९७४
९ संध्या ...	५३ ...	...१९७५ तथा १९८३
१० उद्बोधन ...	५८ ...	... आश्विन १९७७
११ भयंकर अग्निकांड	६२ ...	... मार्गशीर्ष १९७७
१२ तेरी धोखेबाज़ी...	७८ ...	... माघ १९७७
१३ नग्नता ...	८६ ...	... आषाढ़ १९७६
१४ मेरी यात्रा ...	९२ ...	... ज्येष्ठ १९७४
१५ अदूरदृष्टि ...	९९ ...	. चैत्र १९८२
१६ निराले आदमी...	१०९ ...	...१९७५ तथा १९८३
१७ ज्ञान की प्राप्ति ...	११८ ...	... आश्विन १९७४
१८ घर का स्वामी ...	१२४ ...	... मार्गशीर्ष १९७७
१९ हम क्या खायें ...	१२७ ...	... फाल्गुन १९८२
२० कृष्ण की बंसी ...	१४३ ..	... भाद्रपद १९८२
२१ दुखियों की माता	१५६ ...	... ज्येष्ठ १९८३

ओ३म्

विचार तरंगमाला

तरंग १
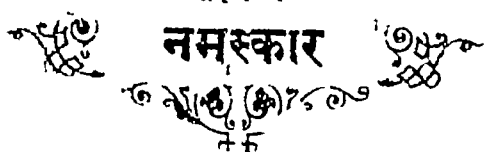
नमस्कार

हे जगन्मातः! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। अपने दोनों हाथोंको जोड़कर तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाता हूँ। अपने प्राण और अपान, सुख और दुःख, ईप्सा और जिहासा, राग और द्वेष, लाभ और हानि, मान और अपमान, जय और पराजय, सिद्धि और असिद्धिके दाये और बायें हाथोंको जोड़कर, हे मातः! मैं तुम्हारे चरणोंमें रखता हूँ। मैं अपने इन दोनों हाथोंको जोड़कर—पूरी तरह मिलाकर—ही अब प्रणाम करना चाहता हूँ और अपने अहंकारके मस्तकको झुकाकर सदाके लिये तेरे चरणोंमें समर्पित कर देना चाहता हूँ। मातः! मैं कब यह परिपूर्ण नमस्कारकर कृतकृत्य हो सकूंगा? मेरा तो परम परम पुरुषार्थ यही है कि कभी ऐसा अपना सर्वभावेन नमस्कार तेरे चरणोंमें निवेदन कर सकूं।

❀ ❀

तुम्हें नमस्कार करनेके अतिरिक्त और मैं क्या करूँ! तुम

पुत्रकी सब कामनाओंको पूरी करनेवाली हो, इसलिये हे मातः, मुझे कुछ कामना नहीं रही है। तुम आवश्यक वस्तुओं-को निरन्तर हमपर वर्षा कर रही हो, इसलिये हे मातः! मेरी कुछ याचना भी नहीं है—प्रार्थना भी नहीं है। इसलिये मैं तो तुम्हें केवल नमस्कार करता हूँ, मूक नमस्कार करता हूँ और चारों दिगन्तों तक आँख उठाकर देखता हूँ कि तुझे नमस्कार करनेके अतिरिक्त और मुझे करना ही क्या है।

❀ ❀

यह सब कुछ—यह सब अनन्त ब्रह्माण्ड—मुझे तुम्हारे पूजनके लिये ही मिला है। गुरुदेवने मुझे यही सिखाया है। "प्रातः से सायंकाल तक और सायंसे फिर प्रातःकाल तक मैं जो कुछ करता हूँ—जो कुछ चेष्टा करता हूँ जो कुछ इन्द्रियों-से कर्म करता हूँ, जो कुछ मनसे क्रिया करता हूँ, यह सब प्रतिक्षणका कर्म हे जगन्मातः! तेरा पूजन है। चौबीसों घंटे जो अन्दर रुधिर संचार होरहा है, जो हृदयकी धड़कन लगा-तार जारी है और जो कुछ अज्ञातरूपसे अन्दर नाड़ियोंका स्पन्दन होरहा है यह सब तुम्हारा नाम-जपन है। हर समय जो मेरा एक एक करके श्वसन और प्रश्वसन हो रहा है यह अहोरात्रमें इक्कीस हजार छः सौ बार तुझे अखण्ड नमन है-मानो मानो इतनी बार संतत नमस्कार है। अहा! क्या ही आनन्द है कि सब कर्म नमस्कारमें पर्यवसित हो गये। कैसी निवृत्ति, कैसी इति कर्त्तव्यताकी समाप्तिकी अवस्था है कि

सिवाय नमस्कार करनेके और कुछ कर्तव्य ही नहीं रहा।

❀ ❀

तुम्हारे सिवाय इस दुनियामें और कोई नमस्करणीय नहीं है। यह मैं जान गया हूँ। मेरा सिर संसारमें जहाँ कहीं झुकता है वहां तुम्हारा पवित्र प्रकाश पाकर ही झुकता है। जहाँ तुम्हारा प्रकाश नहीं है वहाँ यदि कोई बलात्कारसे भी मेरा सिर झुकाना चाहता है—डंडेके जोरसे झुकाना चाहता है, बन्दूकों और तोपोंका भय दिखलाकर झुकाना चाहता है तब भी नहीं झुकता। मालूम पड़ता है कि मेरा सिर टूट जायगा पर झुकेगा नहीं। किन्तु कहीं पर यदि तेरा कुछ भी प्रकाश दीख जाता है तो न जाने किस जादूसे मेरी इसी गर्दनमें वह लचक प्रकट होती है कि तुरन्त तेरे प्रकाश रूप चरणोंमें मेरा सिर जा पड़ता है।

ऐसा मालूम होता है कि मेरे सिरका यह स्वाभाविक धर्म है और तुम्हारे प्रकाशमें मेरे मस्तकके लिये कोई स्वाभाविक चुम्बक शक्ति है जिसके कारण सिर बिना नमे रह ही नहीं सकता।

इस प्रकारके सतत अनुभवसे मैंने यह जाना है कि तुम्हारे सिवाय संसारमें और कोई नमस्करणीय नहीं है।

❀ ❀

मैं यह भी जान गया हूँ कि इस विश्वके सबके सब नमस्कारोंके एक मात्र भाजन भी तुम्हीं हो। सच्चे दिलसे जो कोई भी नमस्कार जिस किसीके भी प्रति किया जाता है वे

मातः ! वह सब असलमें तुम्हें ही पहुँचता है। मुझे तो इस व्यावहारिक दुनियाँमें जब कोई नमस्कार करता है मैं वह नमस्कार हो मातः ! तुरत तुम्हे निवेदन कर देता हूँ। वह क्षणभर भी मेरे पास नही रहता। मेरे पास स्थान ही नही है जहाँ वह क्षणके लिये भी ठहर सके। मेरे इस भ्रमको दूर हुए तो चिर काल हो गया है कि मैं भी कोई चीज हूँ जिसे कि नमस्कार लेनेका हक है। सब तुम्हें ही नमस्कार होते है चाहे नमस्कार करने वाला भी इसे समझे या न समझे। मैं तो अपने एक २ कर्मको भी नमस्कारका रूप देकर तुम्हारे पास पहुँचानेका यत्न करता हूँ। फिर नमस्कारोंका क्या कहना है, वे चाहे दूसरोंके दिये हुए हों। ये सब तुम्हारे चरणार्पित है। हे मातः ! इन्हें स्वीकार करो।

❀ ❀

मुझे बालकपनसे नमस्कार करना सिखाया गया था। मैंने अपने बड़े भाइयोंको नमस्कार करना सीखा। अपने माता और पिताको प्रणाम किया। गुरुओंके आगे सिर झुकाया। अन्य महात्माओं और संतोंके चरणोंमें मस्तक रखा। पर जब मुझे पता लगा कि परम नमस्करणीया तो तुम हो, तब मैं घबराहटमें पड़ गया कि अब तुम्हें मै किस प्रकार प्रणाम करूं ? तुम्हारे अदृश्य पैरोंको मैं कहाँ पर ढूँढूँ ? और यदि पैर मिल भी जावें तो तुम्हें नमस्कार करनेके लिये हाथ कहाँ से लाऊं ? किस सिरको तुम्हारे आगे झुकाऊँ ? नहीं, तुम्हारे

चरण वह हैं जो इस संपूर्ण विश्वके अदृश्य आधार हैं। तुम्
दिये हुए सुखदुःखादि द्वन्द्वोंके रूपमें मेरे खुले हुए ह
हैं जिन्हें विना जोड़े–विना मिलाए–तुम्हें नमस्कार क
असम्भव है। मेरे अन्दर 'अहङ्कार' का तत्त्व भी तुमने वि
है जो कि मुझे और सब व्यक्तियोंसे, तुमसे भी, विशेष द
रखता है अलग बनाये रखता है। इसी मस्तकको मैंने तुम
आगे पूर्णतया झुका देनेके लिये ही अबतक ऊँचा किये र
है। हे मातः! अब मुझे अवसर दो कि मैं अब अन्तमें तु
भी प्रणाम कर लूँ और प्रणामकर कृतकृत्य हो जाऊँ।

❀ ❀

जब मैं यह देखता हूँ कि सब ब्रह्माण्ड अपनी वृहत्
वृहत्, महान्से महान्, विशालसे विशाल वस्तुओं सहित
तेरे चरणोंमें गिरा पड़ा है, जब मुझे यह दृश्य दिखाई दे ज
है तो मैं भी अपना सब कुछ तुझे अर्पण करनेके लिये आ
होने लगता हूँ और यह सचमुच अनुभव करने लगता हूँ
तुम्हें प्रणाम कर लेना ही जीवनका लक्ष्य है। अपने प
कर्म रूपी नमस्कारों द्वारा, आठों यामोंके कर्मोंसे सा
प्रणिपात करते हुए ही तेरे चरणोंको मुझे प्राप्त करना
और फिर तेरे चरणोंकी धूलिमें निश्चिन्त होकर लोटना
तेरे चरणोंकी धूलिमें निश्चिन्त होकर लेटना !! इससे
कर और आनन्द क्या है, मोक्ष क्या है, प्राप्तव्य स्थान क्या

तरंग २

तेरा कौन है ?

तेरा कौन है !

तेरा अपना कौन है ?

और सब काम छोड़कर पहिले एक बार यह पता लगा ले कि तेरा अपना कौन है।

ये जो चारों तरफ़ अपनी चमक दमक द्वारा तेरा मन हरनेके लिये आते हैं, ये तेरे हृदयको शान्ति नहीं दे सकेंगे। जो बिना बुलाये मेहमान सजधज कर, चमकीले भड़कीले वेश बनाकर सदा तेरे इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं, भ्रम में न आना कि वे तेरे नज़दीकी हैं। वे तुझसे बहुत दूर हैं, कोसों दूर हैं। जो अपनी मनोहर चेष्टाओंसे, वचनोंसे और अन्य नाना उपायोंसे तेरा मन बहलाते रहते हैं, तुझे आनन्दसे खिला देते हैं, उनके हाथोंमें, हाय! वह दीपक नहीं है जो कि तेरे असली, अकेले, घनघोर, अँधेरे मार्गको प्रकाशित कर सकेगा।

जो सभी प्रकारकी सभा-समाजोंमें आकर एक निस्सार शब्दावली गरज कर सुना जाते हैं, क्या तू समझता है कि भँवरमें पड़ी तेरी नैय्याको वे पार लगा देंगे। जो हर एक

भीड़ भड़क्केके आगे शोर मचाते हुवे चलते हैं, क्या तू समभता है कि आवश्यकता पड़ने पर वे कभी तेरे काम आवेंगे ? जो जल पर फेनकी तरह सदा ऊपर ऊपर तैरते रहते हैं, क्या तू समभता है कि तेरी वे कुछ गहरी सेवा कर सकेंगे, तेरा उपकार कर सकेंगे ?

❀ ❀

जब शानके साथ तेरी रंगीली मण्डली इतराती हुई घंटा-पथ पर निकलती है तब जो सड़कके एक किनारेसे चुप-चाप गुज़र जाता है, शायद वही तेरा है ! जब भारी भारी जलसोंके घटनापूर्ण इजलास धूमसे हो रहे होते हैं तब जो मण्डपके एक कोनेमें आत्मनिरीक्षण करता हुवा बैठा होता है, शायद वही तेरा है ! जो समुद्र-तलमें छिपे मोतियों की तरह केवल शालीनता और नम्रतावश तुमसे प्रेम रखता हुआ भी दूर रहता है, वह तेरा है ! और क्या, जो तुझे चमकानेके लिये तपाता है, तेरी तप-क्लेशकी अवस्थाको आनन्दसे निरीक्षण करता रहता है, वह निश्चय तेरा है !

विपत्तिकी सायंकाल आनेपर जब कि सब तेरे 'यार'—पखेरु स्वार्थ-साधन नामक ज़रूरी कामसे अपने २ बसेरोंकी तरफ़ उड़ जाते हैं तब जो तेरे साथ रह जाता है, वही तेरा है। जब इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है, तेरा आशा-मय संसार प्रलीन हो चुका होता है तब तुझे थामने वाला चैतन्य जहाँसे मिलता है, वही तेरा है। जब सब तरफ़से हार हो

जाती है, कोई बस नहीं चलता, निस्सहायताकी पराकाष्ठा पहुँच जाती है तब जो ठीक समय पर आकर तेरा हाथ पकड़ लेता है, वही एकमात्र तेरा है !

❀ ❀

अबके यदि उसकी धुँधली सी भी मूर्ति दिखायी दे जाय तो उसपर दृष्टि जमा देना। ऐसी टिक-टिकी बँध जाय कि जीवन भर फिर वह आँखोंसे ओझल न हो यदि अब कभी फिर तेरी शरणागतकी अवस्थामें उसके करुणा-हस्त का अवलम्बन मिले तो उसका सहारा न छोड़ना । दुनियाँ के थपेड़ोंसे चलायमान दशाओंमें भी वह अवलंबन छूटने न पाये ।

भाई, संसारमें अपना-पराया जानना बड़ा कठिन है पर इसके विना कुछ बन नहीं सकता। यदि परायेको अपना समझ लिया तो केवल पछताना होगा। पछताना, पछताना, इसके सिवाय और कुछ नहीं। इसीलिये कहना पड़ता है कि और सब धन्धे छोड़कर पहिले एक वार यह पता लगा ले कि तेरा कौन है, तेरा अपना कौन है ?

तरंग २

चातक का वैराग्य

रमणीय सलिलवाहिनी नदियाँ कल्लोलें करती हुई स्वच्छन्द बहें। बड़े २ महासागर इस पृथ्वीपर जलसे भरपूर पड़े रहें। किन्तु चातकको इनसे कोई प्रयोजन नहीं। इन भूलोकके जलोंमें अब उसको तृष्णा नहीं रही है। उसने तो आकाशकी तरफ मुँह फेर लिया है; वहींसे आयी हुई दिव्य धारायें अब उसके कण्ठको शान्ति दे सकती हैं।

निःसन्देह यह भूतल जलसे प्लावित है, सब कहीं पीनेके लिए सुगमतासे पानी मिल सकता है परन्तु उसे तो यहाँके जलोंकी—यहाँके मधुरसे मधुर और शीतलसे शीतल जलोंकी—अनुपादेयताका पूरा २ ज्ञान हो चुका है। यहांके सभी जल इसी प्रकारके हैं। मृत्युलोकके अन्य प्राणी इन्हें पीयें—भरपेट पीयें—उनके लिये ये खुल्ले छोड़े पड़े हैं। किन्तु चातक इनसे दूर रहेगा। वह इन्हें जानता है। इनमें उसका ज़रा भी राग नहीं है। प्यासा रहना कोई बड़ी बात नहीं है किन्तु त्यागे हुए का ग्रहण कदापि न होगा। यदि ज़रूरत होगी तो कभी स्वर्गसे सुधासम सलिल स्वयमेव गिरेगा।

वस्तुतः व्रत बड़ा कठिन है। कौन है जो जलोंको सामने बहता देख प्यासा रह सकता है ?

❀ ❀

इस महाव्रतको धारण किए पर्याप्त समय हो चुका है। धीरे धीरे कहीं जाकर वर्षा ऋतु आयी है और कभी कभी मेघमालायें भी दिखलायी देकर कुछ आशा बँधाती है, किन्तु अभी तक चातकका कण्ठ सूखाका सूखा पड़ा है। दूरसे आती हुई ठण्डी पवन कभी कभी शीतल जल-पूर्ण मेघों के शुभागमनका संदेश लाती है और वदन को हर्षित कर देती है, परन्तु यह सब भी आशा ही आशा रह जाती है और कोई भी मेघ दो बूँदें नहीं दे जाता। तथापि महाव्रती चातक सब कुछ त्यागकर दृढ़ विश्वास में चुपचाप ऊपर मुख किये बैठा है। पूर्वदिशासे काले मेघ जलभारसे-अवनत-उदर आते हैं किन्तु देखते ही देखते सीधे पश्चिमकी ओर चले जाते है—डाक-गाड़ीकी तरह एक क्षण भी इस स्टेशनके ऊपर नहीं ठहरते। अहो! क्या ही, अद्भुत कौतुक है। पर वैरागी अपना मगन बैठा है।

तब क्या चातक प्यासा ही रह जायगा? क्या अब उसे अपने प्राण त्यागने होंगे या इस अन्त समयकी व्यथामें वैराग्य छोड़ फिर संसारी बन कर अपनी रक्षा करनी होगी? ये सब आशंकाएँ निरर्थक और निर्मूल हैं। चातक चित्तमें असंदिग्ध है कि यह प्यासके मारे यदि धरणीतलपर मूर्छित हो गिर भी

पड़ेगा, तो भी उसे चेतनामें लानेके लिए यदि कोई आयगा तो स्वयं इन्द्र स्वर्गीय जलोको लेकर आयेंगे और चैतन्य प्रदान करेंगे। सांसारिक जलोंके छींटे उसे प्रबुद्ध भी न कर सकेंगे। उस समय भी उसकी सदा जागृत आत्मा इन त्यक्त जलोकी उपेक्षा ही करेगी—इनके स्पर्शका असर अनुभव न करेगी। सच है, क्योंकि सांसारिक वस्तुयें तो अपने सौन्दर्य और माधुर्यसे लोगोंको सदैव मोहित ही कर सकती हैं, इनमें मोहमूर्छासे लोगोंको जगानेकी शक्ति कहाँ ?

❀ ❀

भाई घबराओ नहीं, सन्तोष रखो, परीक्षामें उत्तीर्ण होओ, जो त्याज्य है उसे त्यागे ही रखो तो सब कुछ ही मिल जायगा मिलनेका नियम तो अटल है। केवल कठिन परीक्षामें दृढ़ निकलनेकी देर है। भला जिसने [विजातीय] सांसारिकता बिलकुल दूर कर दी है, उसे [आत्मीय] दिव्यता कैसे न मिलेगी—आज न मिलेगी तो दो दिन बाद मिलेगी, पर मिलेगी। और फिर उसे क्या नहीं मिलेगा ? पर त्यागो तो सही। एकबार तृष्णाको त्यागो, व्यासमुनि पर विश्वास करो कि:—

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥"

इन बिजली भरे वाक्योंसे अनुप्राणित होकर एकबार त्याग कर देखो तो।

तुम ज़रा सा त्यागते हुए व्यथासे व्याकुल हो जाते हो,

इस राहपर चलनेका समय नही आया है। अभी बहुत देर है। अन्तमें कभी जब कि ये विष-भरे दाँत तुम्हें हर समय डसते हुए मालूम होने लगेंगे, जब कि वहांके भरे हुवे बाजार तुम्हें सुनसान श्मशानकी नाई दीखने लगेंगे, जब कि वहांकी मधुर तानें तुम्हारे कानको चुभने लगेंगी और वहांका हर-एक भोजन कडुवा लगने लगेगा, उसे समय इस मार्गको स्मरण करना। तुम्हारे उस विचित्र दुःखके समयमें यह मार्ग तुम्हें अपनी शरणमें लेगा और तुम्हें एक अननुभूतपूर्व आनन्दकी ओर ले जायगा। अभी वह समय दूर है।

❀ ❀

लोगोंको घेरघारकर यहां मत लाओ। यह उचित नहीं। इससे कुछ फायदा नहीं। क्षण भरके लिये कुछ समझाकर उनकी आन्तरिक इच्छाके विरुद्ध उन्हें अपने आनन्दोंसे वियुक्त मत कर डालो। यह पाप है। जिसको आना है, वह स्वयं आजायगा—वह रोकनेसे भी रुक नहीं सकता।

तुम लोगोंको क्यों घेरघार कर लाते हो? शायद तुम इस मार्गकी निर्जनता और नीरसतासे जब तङ्ग आजाते हो तो यह सोचकर कि "नीचेसे साथियोंको लाकर आनन्दसे यह रास्ता काटेंगे" नीचे चले आते हो। यह भूल जाते हो कि यह मार्ग मित्रोंसे गप्पें मारते हुए तय करनेका नहीं है! यह तो बड़े ध्यानपूर्वक, जप तप करते हुए, बिलकुल अकेले चुप चाप चलनेका मार्ग है! यदि चढ़ाईसे थक गये हो तो

अच्छा है कि यहीं बैठ जाओ विश्राम करलो, न कि किसी बहानेसे नीचे उतर जाओ। यहां पर नवजीवन भरनेवाले ठंडी पवनके झोंके तुम्हारी थकावट दूर कर देंगे और शीघ्र ही आगे बढ़नेको तरोताजा बना देंगे।

जब तुम स्वयं आगे नहीं चल सकते, तो नये साथियोंको कैसे चलाओगे। इसलिए भाई! लोगोंको घेरघारकर मत लाओ—उन्हें मुफ्तमें दुःखमें मत डालो। इससे क्या फायदा है? इस स्थानपर जनसंख्या बढ़नेसे उन्नति नहीं होती है। जिसको आना है वह ज़रासे इशारेसे ही आजायगा—वह कष्टके भय दिखानेसे भी रुक नहीं सकता।

❀ ❀

जिन्हें भूख सता रही है उन्हें तुम कहते हो कि वे भोजन त्याग दें और ईश्वर भजन करें। जो प्याससे व्याकुल हैं उन्हें तुम वितृष्ण होनेका उपदेश देते हो। तब यदि वे तुम्हारी बात नहीं समझते इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? तब वे तुम्हें Idealistic या पागल कहके तुम्हारी बातका तिरस्कार करते हैं इसमें विस्मय क्या?

यदि तुम्हें स्वयं भोजनकी ज़रूरत नहीं रही है तो अपनी थाली भी उन्हींके आगे रख दो। इसीमें दोनोंका—वस्तुतः दोनोंका—कल्याण है। जिसने तुम्हारा कल्याण किया है वही उनका भी कल्याण कर रहा है और करेगा। वही उन्हें राह दिखायगा। उसे सबकी समान फिकर है।

भला शहरकी गलीको बिना समाप्त किये कोई जंगलकी पगडंडी पर कैसे पहुँच सकता है।

❀ ❀

जब कभी मैं इस बीहड़ मार्गकी तरफ जाता हूँ तो वहांके लोग "आओ फलाने" कहकर कोई मेरा स्वागत नहीं करते और नाही आश्लेष करनेके लिये दौड़े आते हैं—किन्तु वे सब अलग २ अपने २ ध्यानमें निरपेक्ष हो बैठे रहते हैं।

उन्हें मेरी अपेक्षा नहीं है। सच तो यह है कि इस 'उच्चपथ' ने हमारा स्वागत नहीं करना—किन्तु हमेंही इसके चरणोंमे सिर झुकाना और पूजा करनी है।

यहाँ पर नये आगन्तुकको रिझानेके लिये उसकी शुरूमें कोई खातिर तवाज़ो नहीं की जाती, और नही कुछ दिनों उससे आनन्द लेनेके बाद उसे झुठाकर त्याग दिया जाता है। किन्तु यहाँ प्रविष्ट आत्मा ज्यों ज्यों इस नीरस शून्य स्थानमें रहता है त्यों त्यों इसका पवित्र माधुर्यमय रूप उसके लिये दिनों दिन अधिक २ प्रकट होता जाता है उसे अपनाता जाता है।

इस लिए मेरे भाई लोगों! स्मरण रखना कि यह दुर्गम-पथ कभी हमें फुसलानेके लिये नहीं आयेगा किन्तु हमें ही स्वयं जब जाना होगा तो इसके मूल्यको समझकर स्थिर शान्ति पानेके लिए सत्कारपूर्वक इसके आश्रयमें जाना होगा।

तरङ्ग ५

सतानेवाला कौन है ?

ये कौन हैं जो मुझे अदृष्ट तीरोंसे बार २ मार रहे हैं। तीरोंके लगनेपर मैं चारों तरफ़ चौंक चौंककर देखता हूँ और ढूँढता हूँ, किन्तु किसी भी धनुर्धारीको नहीं देख पाता। फिर न जाने ये कौन हैं जो सभी ओर पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिणमें अपने तीरोंसे मेरे अंगोंको छेदते जा रहे हैं। मैं बड़ा पीड़ित हो रहा हूँ। हाय, ये मुझे कबतक सताये जाँयगे ? एक तीरकी पीड़ा अभी बन्द नहीं हो पाती कि इतनेमें दूसरा तीर आ लगता है। एक ही दिनमें कई बार घावपर घाव लगते हैं। घावोंसे पीड़ित हो मैं चिल्लाता हूँ और सोचने लगता हूँ कि मैं ज़िन्दा क्यों रह रहा हूँ ? किन्तु आशा पीछा नही छोड़ती। जब कभी कुछ घड़ियाँ भी शान्तिसे बीत जाती हैं तो समझने लगता हूँ कि शायद अब अच्छे दिन आगये। परन्तु फिर कहीं न कहींसे ऐसा तीर आ लगता है कि सब भूल जाता है और मैं अपनी असली अवस्थामें आ जाता हूँ। इस तरह मैं रह रहकर सताया जा रहा हूँ। हे राम, मैं क्या करूँ ?

मैं अपना सताने वाला किसे कहूँ और किसे न कहूँ। कौन वस्तु है जिस ओरसे ये तीर नहीं बरस जाते? पहिले मैं बेशक किन्हीं प्राणियों और किन्हीं वस्तुओंको अपना दुःखदाता समझा करता था किन्तु अब धीरे २ जाना है कि यह सब संसार ही दुःखका घर है। क्योंकि संसारकी सभी वस्तुएँ (एक २ वस्तु) चुभने वाली है। इस संसारमें किसी दिशामें चले जाओ किसी दशामें रहो ये सब अच्छी भली दीखने वाली वस्तुएँ ही तीक्ष्ण तीर बरसाने लगती हैं। इतने कालके बाद भी मैं यह तो नहीं जान पाता हूँ कि इन वस्तुओंमें ये तीक्ष्ण तीर कहाँसे उपजते हैं, पर मैं इतना अवश्य देखता हूँ कि इस संसारमें सब कहीं ये तीर बरस रहे हैं।

❀ ❀

मैं व्याकुल हृदय सब जगहोंमें फिरता हूँ किन्तु इस वर्षासे रहित भूमि (मरुभूमि) कहीं नहीं मिलती जहाँ कि यह तीर वर्षा न होती हो। चाहे शिमलेकी ऊँचाई पर जा बसो, चाहे गंगातटकी शरण लो, चाहे काबेकी यात्रा करो, चाहे सब तीर्थोंकी परिक्रमा कर डालो। मैंने सब तपोवन भी छान डाले किन्तु इस तीर वर्षासे परित्राण कहीं न पाया। वर्षामें मैंने समझा था कि शायद ग्रीष्मके दिनोंमें ये तीर चुभने बन्द हो जाँयगे, किन्तु इस वर्षाकी कोई ऋतु भी न पायी। सभी ऋतुएँ इसके लिये वर्षा ऋतु हैं। भ्रमहीसे मैंने वसन्त ऋतुके सुखधाम और हृदय विश्राम होनेका स्वप्न देखा और व्यर्थ ही

सुखभरी प्रतीक्षासे गर्मीके क्लेश-वर्षाके लम्बे २ दिनोंमें शरद् ऋतुकी बाट जोही।

बालकपनमें मैं समझता था कि विद्यालय (स्कूल) छोड़ उच्च विद्यालय (कालेज) जानेपर ये क्लेश बन्द हो जायेंगे और उच्च विद्यालय (कालेज) में समझा था कि पढ़ाई छोड़-कर स्वतन्त्र होनेपर अवश्य इन क्लेशोंसे छुटकारा हो जायगा। इसी तरह एक २ जगहमें माना था कि इस जगहको छोड़ दूसरी जगह जानेसे ये सब दुःख मिट जायँगे और सदैव वर्त्तमान पेशे व वर्त्तमान स्थितिसे तंग आये रहकर दूसरे पेशे व दूसरी स्थितिकी तीव्र इच्छा रखी थी। किन्तु हाय, ये सबके सब झूठे सुपने थे। यह क्लेश-वर्षा कहीं थमनेवाली नहीं है।

यदि कहीं जाकर स्थिरतासे बैठ जाता हूँ और बैठकर इन तीरोंके प्रहारोंसे बचनेके लिये जो जो तदबीरें करता हूँ वे भी सब निष्फल जाती हैं। बचनेके लिये मैं नयी २ आशाके साथ नयी २ आड़ें खड़ी करता हूँ किन्तु अन्तमें देखता हूँ ये आड़ें ही तीर बरसाने लगती हैं। इस प्रकार न मुझे फिरते चैन है और न बैठकर चैन है। हे भगवन्! मैं घबराया हुवा हूँ। हे राम! तुम्हीं बतलाओ इनसे मैं कैसे बचूँ, तुम्हीं बत-लाओ ये सब जगह सतानेवाले कौन हैं ?

* *

कई बतलाते हैं कि मुझे सतानेवाले स्वरूपमें कोई प्रकट तीर नहीं हैं किन्तु एक प्रकारके विषैले कीड़े हैं। इस दुःख-

नयी दुनियाँके आरम्भमें एक पिंडोरा नामी कहानीकी लड़की* ने कौतूहलवश उस संदूकको खोल डाला था. जिसमें तीक्ष्ण डंकोवाले यह कीट पतंग दुनियाँको दुःख देनेके लिये भरे गये थे। हाय! येही वे उड़नेवाले कीड़े हैं जो मुझे हर जगह और हर समय अपने विषैले डंक मारते फिरते हैं। हे मेरे स्वामी! क्या यह क्लेश कभी ख़तम न होंगे? क्या दुनियांमें अब कोई उपाय नहीं जिससे ये अदृश्य कीड़े फिर संदूक में बन्द किये जा सकें? क्या अनन्त कालके लिये मै इन कीड़ों का खाद्य बना रहूँगा?

❀ ❀

"हे प्रभो! रक्षा करो, मै मरा जाता हूँ। तीरोंके मारे मेरा देह चलनी हुआ पड़ा है। मैं सारी दुनियाँमें मारा २ फिरा, किंतु कहीं भी चैन नहीं पड़ी। अब और कहाँ जाऊँ! कहाँ पर आश्रय पाऊँ? कुछ नहीं सूझता। चारों ओरसे सताया जा रहा हूँ। अपने दुःख दाताओंका पता लगाते २ (और उन्हें न पाकर व्यर्थ चेष्टायें करते २) मै मर मिटा हूँ, अपने विदीर्ण हृदयको पकड़े २ संसार का कोना २ ढूँढ डाला। अब अधिक शक्ति नहीं है। क्या करूँ? क्या अब कोई उपाय नहीं है? हे प्रभो! यदि तुम हो, स्वामी और रक्षक हो तो बचा लो। मैं सदाके लिये मरा जाता हूँ।"

❀ ❀

* एक प्रसिद्ध पुरानी ग्रीक कहानी के अनुसार।

इस प्रकारसे मैं न जाने कबसे चिल्लाता और बिलबिलाता रहा हूँ। व्याकुल हो इधर उधर तड़फता फिरा हूँ। अन्तमें आज बिलकुल थककर और अधमरा होकर इस क्लेश-वर्षामें ही बेबस पड़ गया हूँ, और ज्योंही अचानक अपनी उन बाहर देखनेवाली, थकी हुई आँखोंको, जिन्हें फाड़फाड़कर मैंने संसार भरमें अपने सतानेवालोंको गहरी नज़रसे ढूँढा, और जिन आँखोंमें अब अधिक शक्ति नहीं रही है कि खुली रहें तथा चीज़ोंको देखें, मैंने विवश हो बाहरसे बन्द कर लिया त्यों ही मुझे अन्तरीय दृश्य दीख पड़ा। मैं अपने अन्दरके दर्शन करके आज एकदम स्तब्ध रह गया! उन अपने तीर बरसाने वालोंको जिनकी खोजमें मैं सारा जहान ढूँढकर निराश हो गया था, आज मैंने अपने अन्दर ही, अपने अन्तःकरणमें ही, तीर कमान कसे खड़े हुवे पाया और अधिक अन्तर्ध्यान होनेसे मुझे अब ज्ञान हो रहा है कि इनके हाथमें उन धनुष बाणोंका पकड़ानेवाला मैं ही मूर्ख हूँ। जिनके द्वारा मारा हुवा मैं आज तड़फ रहा हूँ।

* *

आज अन्दर देखनेसे दीख रहा है कि क्लेश-वर्षा करने-वाले ये बादल जिनका मुझे पता न चलता था, मेरे हृदयाकाशमें ही मंडरा रहे हैं और मैंने अपने संतप्त कलेवरसे ही वाष्प देकर उन बादलोंको बनने दिया है। अब पता लगता है कि पिंडोराका सन्दूक कोई बाहरकी चीज़ नहीं जो [illegible] के

घरके दरवाजे पर रखी हुई थी किन्तु यह विषैले जन्तुओं-वाला बाहरसे सुन्दर और मनोहारी सन्दूक मेरे मन-मन्दिरमें ही खुला पड़ा है और यदि सच कहूँ तो मैंनेही यह स्वयं खोला है तथा अब मै जानता हूँ कि मैंही चाहूँ तो इसे बन्द कर सकता हूँ।

❀ ❀

धन्य है आजका दिन! कृतकार्य हुआ आजसे मेरा जीवन! सुफल हुये आज वे मेरे अनादिकालीन पीड़ायें और मरणान्त क्लेश, जिनसे अत्यन्त पीड़ित होकर आज मैं विवश हुआ कि अपने अन्दर देखूँ। अन्धकारका महान् समय बीत गया और आज प्रकाशके शुभ दर्शन हुवे। उसे आज देख लिया, जिसकी तलाशमें व्याकुल इधर उधर क्लेश भोगता फिरा।

आज दुःखदाताको पहिचान लिया है। मै आज दृढ़तासे कहता हूँ बाहरकी कौनसी चीज़ है जो मुझे अब क्लेश पहुँचा सके। मुझे अब कौन सतायेगा, जब कि मैंने अपने हृदयको हस्तगत कर लिया है। अब कौन डङ्क मारेगा जबकि मैंने वह सन्दूक बन्द कर लिया है। आजसे सब क्लेश समाप्त हैं। क्या मजाल कि आजसे दुःखका एक भी तीर मुझे स्पर्श कर जाय, चाहे मैं महलको छोड़कर घनघोर जङ्गलमें जा बसूं चाहे शिमलेकी कोठीसे उतरकर रेगिस्तानकी गरमी में रहूँ, चाहे सब कपड़े उतारकर हेमन्तकी शीतमें नङ्गा फिरना प्रारम्भ

करूँ। आ जाओ, दुनियाँकी सब व्यथाओ आ जाओ, देखूँ कौनसी व्यथा है जो मुझे अब दुःखी कर सकती है ?

❀ ❀

मुझे वैरी समझनेवालोंके कटु वाक्य-रूपी तीर मेरा क्या करेंगे यदि मैं उन्हें अपने भाइयोंके प्यारे मुग्ध वचन समझकर सुन लूँगा। कालकूट ज़हर मेरा क्या बिगाड़ेगा, यदि मैं उसे अमृत समझकर पी जाऊँगा। मेरे काल्पनिक शत्रुओंके फेंके हुवे ईंटे, पत्थर मेरे अङ्गोंको क्या पीड़ा पहुँचायेंगे, यदि मैं उन्हें फूलोंकी वर्षा समझकर आनन्दसे स्वीकार करता जाऊँगा।

❀ ❀

वे भयानक रोग जिन्हें मेरे पूर्व पाप कर्म बुला गये हैं, अपनी असह्य पीड़ा और दर्दोंके साथ आवें और बड़ी खुशीसे चले आवें मुझे कोई परवाह नही, क्योकि मै उन सब दुख-दर्दोंको अपनी शुभ सहन-शक्तिके पारस पत्थरसे सुख और शान्तिमें परिणत कर लूँगा।

और भी विपत्तियाँ और आफते जो आना चाहें आवें, मैं इन परम सुखके पहुँचानेवाली सीढ़ियों पर पैर रखकर चढ़ता जाऊँगा और आनन्दसे ऊपर देखूँगा कि परम सुखका सुन्दर मन्दिर नज़दीक आता जा रहा है।

मेरे दरवाजे खुले हैं। सब तरहके कष्ट और क्लेशोंको खुला निमन्त्रण है। वह निःशङ्क अन्दर घुस आवें। किन्तु अन्दर पहुँचते ही उन्हें अपना दुःखदायी और भयावह चोला

उतारकर अपने सौम्य सुखद स्वरूपको स्वीकार करना पड़ेगा, जब कि उनको प्रभुके अटल नियमोंके भेजे हुवे तथा उन्नतिका संदेशा लानेवाले दूत समझकर मैं उन्हें आतिथ्य सत्कारसे सन्मानित करूँगा।

❀ ❀

जब कि सारे जीवन भर मैं एक ही धुनमें निमग्न रहूँगा तो कौनसा क्षण मिलेगा जब कि मैं किसी अकर्मण्यता व चिन्ताके क्लेशको मुलाकातके लिये बुला सकूँगा। जब कि मैंने सदाके लिये दृढ़ताके दुर्भेद्य कवचको धारण कर लिया होगा तो कौनसा मार्ग होगा जिससे दारुण दुख मुझे पीड़ित करनेके लिये अन्दर घुस सकेगा। जब कि मेरे चारों दिशाका वायु मण्डल मेरी अहिंसाव्रत और अभयदानकी सुगन्धिसे परिपूर्ण हो रहा होगा तो मैं किधरसे आशा करूं कि मुझे मारनेके लिये किसी भय व त्रासके क्लेश कीटाणुका प्रवेश हो सकेगा। जब कि मैं सदैव ही अपने ऊपर आनन्द-मयकी घनी छत्र-छायाको अनुभव करता रहूँगा, तो कौनसा अवसर हो सकेगा जब कि शोक और रंज ग़मकी कड़ी धूप मुझ तक पहुँच मुझे संतप्त करेगी।

❀ ❀

निःसन्देह जब मैं वेगसे सत्यके मार्ग पर बढ़ता हुआ आ रहा हूँगा तो मार्गमें अड़नेवाली आपदा और मुसीबत की झाँकमें टूट टूटकर गिरती जांयगी।

वे विचार जोकि मेरे मनको मलीन और खिन्न करनेके लिये आवेंगे उलटे पैरों चुपकेसे लौट जायँगे, जब कि देखेंगे कि मेरा मन एकाग्रताके अदम्य सन्तरीसे रक्षित है।

जब कि मैं परमात्माकी आज्ञाको ही अपना लक्ष्य, उद्देश्य और आंखोंका तारा मानकर उसीकी ओर टकटकी लगाये अपने मार्गपर जा रहा हूँगा तब कोई भी सम्भावना नहीं कि कभी इधर उधर जलनेवाली प्रतिष्ठा-लालसाकी दुःख-चिताग्नि में पतित हो जाऊँ।

❀ ❀

ऐ अपने को शक्तिशाली समझने वाले अन्यायी! तेरे भीरू अत्याचारमें क्या शक्ति हो सकती है? तू अपने अत्याचारोंसे मुझे क्या सता सकता है? मेरे शरीरको भले ही तू शिकंजे-में फसवा ले, कुत्तोंसे बोटी २ करके कटवा ले, खाल उध-ड़वाके खौलते तेलमें नमक मिर्चके साथ तलवा ले और जो कुछ सूझे उस उपायसे इस निश्चेतन शरीरकी जितनी चाहे दुर्गति करता फिर, परन्तु तू मुझे कैसे सतायेगा? वह कौन सा शस्त्र है जिसे चलाकर तू मुझ सुख दुःखके अनु-भव-कर्ता पर अपने क्रूर अत्याचार करेगा, जब कि मेरा साधन मन मेरे ही अधीन है? यदि तेरी अत्याचारी तलवार मुझे सतानेके निश्चयसे मुझ तक पहुँचेगी, तो वह निस्सन्देह मेरे शरीरपर ही लगकर रह जायगी तथा अपने घातक

प्रहारका दुःख मुझ तक न पहुँचा सकनेके कारण अपनी कमजोरी अनुभव करेगी।

❀ ❀

ये संसारकी सरकारें मनुष्यके लिए बड़ी डरावनी चीजें मानी जाती हैं। संसारमें बहुतसे धार्मिकोंपर इन सभ्य अन्याचारियोंके किये हुए जुल्म प्रसिद्ध हैं। इनके किए हुए अत्याचार ऐसे समझे जाते हैं कि जिनका इलाज प्रजाके पास नहीं है। परन्तु भला धर्म-पथके यात्रीको कौन संसारमें सता सकता है?

धर्म-कार्य्य करते हुए यदि कोई सरकार मुझे बलात् अन्यायसे पकड़कर कलंकित करना चाहेगी, तो उलटा देखेगी कि सब जगह मेरा यश मुफ्तमें फैल रहा है। मैं नहीं जानता कि उसके जेलखानेकी ऊँची २ मोटी दीवारें मुझ स्वतन्त्र जीव-को कैसे क़ैद कर सकेंगी। ये जेल तो मेरा ध्यान-मन्दिर बन जायँगी। (ओह ये वही जेल हैं जिन्हें कि बहुतसे धर्मवीर अपनी चरण-रजसे पवित्रकर गये हैं और इन्हें तीर्थ भूमि बना गये हैं)। उस समय मेरे हाथों और पैरोंमें पड़ी हुईं हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ मुझे क्या जकड सकेंगी, वे तो मेरा आभूषण बनकर मेरे हाथों और पैरोंको अलंकृत कर रही होंगी।

❀ ❀

हे राजाओं! मानवशक्ति अधिकसे अधिक कहाँ तक पहुँच सकती है? शायद अन्तमें मृत्युको ही क्लेशकी पर-

काष्ठा समझकर तुम सतानेके लिये मुझे मृत्यु दण्डकी आज्ञा सुना दोगे, तो मैं हँसता खेलता सूलीकी खूँटीपर अपना पुराना जीर्ण चोला लटका हुआ छोड़कर परम पिताके पास नया वस्त्र धारण करनेके लिये आनन्दसे पहुँच जाऊंगा। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है ?

हे राज्यशक्ति ! तू इससे ज्यादा मेरा और कुछ नहीं कर सकती, चाहे तू अपने पूरे साज और सामानके साथ मुझ-पर आ, चाहे तू अपनी सुसज्जित डरावनी चतुरङ्गिणी फौज़के साथ मुझ अकेलेपर आक्रमण कर, चाहे तू अपनी भुवनोंको कँपानेवाली तोपोंकी थरथराहटके साथ मुझपर चढ़ आ।

❀ ❀

ऐ मौत ! तू विकराल 'काल' कहलाती है। लोग कहते हैं कि "तू बड़ी डरावनी है, तेरा नाम सुनते ही दिल कांप उठते हैं। संसारके बड़े २ लोग मौतके आनेपर छटपटाते मर गये उनकी कुछ न बन पड़ी।" किन्तु हे प्यारी मौत ! यह सब झूठ है। यदि तू ऐसी ही होती तो फाँसीका हुक्म सुननेपर उस बंगालीका आनन्दके मारे दो सेर भार क्यों बढ़ जाता? यदि तू दुःखदायिनीही होती तो मरते समय ऋषि दयानन्दका मुख दिव्य आनन्दसे प्रफुल्लित क्यों देखा जाता ?

सचमुच हे मृत्यु ! तू डरावनी नहीं है। तू तो विश्राम-दायिनी और मुक्तिदायिनी है। तू काले भैंसेपर चढ़ी हुई भयानक कालदण्ड हाथमें लिये हुवे कोई रौद्र चीज़ नहीं है

तू तो मुझे एक रमणीक सुन्दर, बन्दनवारोंसे सजे हुये द्वारके रूपमें दीखती है, जिसमें कि श्रान्त तपस्वी विश्रामकी प्रफुल्लता पानेके लिये सुखसे प्रवेश करते हैं और जिसमें होकर चरम देहवाले मुनिगण मंगलमय परम प्रभुके धाममें प्रवेश कर उसकी प्यारी गोदकी शरण पहुँचते हैं।

❀ ❀

सचमुच आजसे संसारके सब झूठे कष्ट 'इस जीव'की दृष्टिमें लुप्त हो गए। आज ज्यों ही समझा है कि पदार्थोंको दुःखप्रद बनानेवाला मेरा अंतःकरण है त्यों ही पृथ्वी तलकी सब कष्ट—कालिमायें धुल गईं और सुखकारी प्रकाश—सुधासे चारों दिशायें पुत गयीं। आजसे इस जीवन मन्दिरके आकाशमें कोई दुख छाया नही पड़ सकती। आजसे 'इस जीव'के अनन्त अविनाशी आनन्दमें जगतकी कोई भी वस्तु बाधा नहीं डाल सकती। आहा! सारा संसार आनन्दकी ज्योतिसे जगमगा रहा है। ओ३म् आनन्द! आनन्द! आनन्द!

प्रतिष्ठा

ऐ उच्च मार्गके पथिको! सावधान। इस प्रतिष्ठा पिशाची-से सावधान। यह पाशिनी अपना पाश फैलाकर जगह हपर हमारे राहमें आकर बैठती है, उससे बच बचकर ो पग धरना। यह अपने फन्देमें हाथ पैर बाँधकर सहजमें ाली भूमिपर पटक देगी।

जब फूलोंका बरसना, अख़बारोंमें मोटे अक्षरोंमें नाम ा जाना, बड़े जन संघसे घिरे हुए उच्चासन पर बैठाया ा आदि दृश्य उपस्थित हों तो जान लेना कि प्रतिष्ठाकी न आगयी है, इस चिकने चमकतेसे स्थलपर सँभलकर रखना कि कहीं फिसलकर औंधे मुँह गिरना न हो।

❁ ❁

एक सन्तको जब सत्कारपूर्वक भोजन खिलाने ले जाने तो उन्होंने अस्वीकार किया कि मुझे तो तिरस्कारसे ा भोजन चाहिये। यह क्यों?। मनु महाराजने ब्राह्मणके अपमानामृतके पिपासु रहनेका क्यों आदेश किया है?। ाद्य मकरीविष" इत्यादि वचन किस लिये हैं?। सन्त

बात यह है कि इस (प्रतिष्ठा) सर्पिणीसे काटा मनुष्य बचता नही है। बहुतसे लोग जिनके नाश करनेके सब उपाय विफल हुये—कारावास और मौतका भय उन्हें न रोक सका, परंतु जब उन्हें सम्मानका हलाहल रस थपक २ कर प्रेमसे पिला दिया गया तो वे ऐसे सोये कि फिर कभी न उठ सके।

❀ ❀

मेरे बलके करतबोंको देखकर जो मेरी प्रशंसा करता है क्या वह मेरी प्रशंसा करता है?। हाँ! उस शक्तिरूप प्रभुके सिवाय और किसकी स्तुति हो सकती है कि जिसके प्रदान किए सामर्थ्यके विना संसारमें एक पत्ता भी नही हिल सकता।

जो मेरे सौन्दर्यपर मुग्ध हो ललित शब्दोंमें मेरी प्रशंसाके गीत गाता है वह मूर्ख नहीं जानता कि यह तो (मेरे और उसके) उस दिव्य कारीगरका स्तोत्र पाठ हो रहा है जिसने, अपने सौन्दर्यसे इस ब्रह्माण्डोद्यानमें सुन्दरतम फूलोंको रंगा है।

और मेरे बुद्धिके चमत्कारोंकी जब कोई स्तुति करता है, हे स्वयं भास्वन भगवन्! उसे मैं अपनी स्तुति कैसे समझूँ? मेरे वह सूर्य तो आप हैं जिससे फैलती हुई असंख्यातों किरणोंसे मैं कुछ हमारे इन क्षुद्र मानवीय मस्तिष्कोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं।

❀ ❀

मुझे यह क्या हो गया है? इस मालकिनकी पुकार मुझे कहीं सुन पड़ती है मैं उसके पालतू कुत्तेकी तरह वहीं जा

पहुँचता हूँ और पूंछ हिलाने लगता हूँ। इस प्रतिष्ठा-पिशाची-की उँगली जिधर उठती है उधर ही नाचने लगता हूँ। इसके बाजेकी खड़क कानमें पड़ते ही मेरे अंग फड़क उठते हैं, मैं खड़ा हो जाता हूँ और बेबस उधर ही खिंचा चला जाता हूँ, वह स्थान फिर देशके किसी भी कोनेमें क्यों न हो, गहनसे गहन स्थलपर क्यों न हो।

"आप बड़े महात्मा हैं" "आपके बिना यह कौन कर सकता था" इन टेकोंके गीत जी चाहता है कि दिन और रात कानमें पड़ते रहें तभी मैं जीवित रह सकता हूँ। जो मुझे प्रणामकर जाते हैं या "धन्य हो महाराज" बोल जाते हैं मैं इस विस्तृत दुनियामें केवल उन्हें ही कुछ समझदार मान सकता हूँ। केवल ज़रा प्रशंसा कर दो, फिर चाहे मेरा सब कुछ लूट ले जाओ। मैं सच बताता हूँ कि मुझे "कामिनी और कांचन" की कुछ इच्छा नहीं है, परन्तु यह लौकेषणाका भूत है जो कि मुझपर पूरे बलसे सवार है। मैं इससे अब अवश्य छूटना चाहता हूँ किन्तु—इसके साज-सामान जहाँ दिखाई दे जाते हैं तो रहा नहीं जाता।

❀ ●

आओ श्रद्धासे उन महर्षियोंकी चरण-धूलि सिर माथे-पर चढ़ावें जिन्हें कि ऐसे तुच्छातितुच्छ प्रणामोंकी त्रिकालमें अपेक्षा नहीं; क्योंकि वे वे मनुष्य देव हैं जिनका हृदयाधिष्ठित परमदेव—जिनका विमल अन्तरात्मा—हरसमय उनके हरएक

कृत्यकी स्तुति करता है, फिर उन्हें क्या चिन्ता कि कोई और भी उन्हें पूँछता है कि नहीं। जब अन्दर उनकी स्तुतिका स्वर्गीय-गान निरन्तर हो रहा है तो क्या परवाह कि कोई (अन्यथा सिद्ध) शामिल बाजे उनकी प्रशंसामें बज रहे हैं कि नहीं।

वे उस अचल पदपर प्रतिष्ठित होते हैं कि यदि संसारके सब महाराजाधिराजे मिलकर उनके पैरों पर अपने मुकुट रखनेके लिए ढूँढ़ते हुए हाथ जोड़कर सामने उपस्थित हों तो उनका कुछ सन्मान नहीं बढ़ता अथवा यदि संसारके सब सभ्य पुरुष उन्हें 'जंगली' कहें,या निन्दाका प्रस्ताव पास कर लें या कोई और हरकत करें तो उनका कुछ मान नहीं घटता।

वे अपने अन्तर्यामी देवसे अनवरत मिलनेवाली प्रतिष्ठा में ऐसे मगन हैं कि उन्हें कुछ मालूम ही नहीं होता कि उनके सिरपर फूल बरस रहे हैं या जूते, पैरोंमें संपूर्ण जनता पड़ी है या बेड़ी, लोग धन्य धन्य पुकार रहे हैं या धिक् धिक्।

वे अपने विशाल हृदय—प्रासादके भीतर राजाओंके राजा के समान ऐसी परिपूर्णतामें विराजमान हैं कि कुछ अनुभव नहीं करते कि उनकी बाहिरी दीवारोंपर बच्चे कब कौनसा खेल खेल रहे हैं।

जब कभी ऐसे द्वन्द्वातीत महात्मासे एकबार साक्षात् हो जाता है तो समझमें आ जाता है कि अनमोल मोती समुद्रके अगाध तलोंमें क्यों छिपे पड़े हैं—जिन्हें संसारके किसी भी

मनुष्यसे द्वेष नहीं (किसी तरहके प्राणीसे भय नहीं) वे निर्जन प्रदेशोंमें क्यों भागे जाते हैं, जिन्हें बड़ी २ सिद्धियाँ प्राप्त हैं वे उन्हें दिखलाकर यश क्यों नहीं लूटते फिरते, जहाँ कोई परिचित, सराहनेवाले, या बहुत सत्कार करनेवाले लोगोंके मिलनेकी आशंका होती है वहाँसे ये लोग क्यों बच २ कर अपना रास्ता ते करते हैं? । सबका एक उत्तर है कि वे स्वयमेव इतने तृप्त हैं कि दूसरों द्वारा (ऊपरी) सन्मानके ठूंसे जाने से डरते हैं, क्योंकि हम (उन्हें अपने जैसा ख़ाली समझनेके कारण) सचमुच ऐसा ही करना चाहते हैं।

❀ ❀

जब तू ज़रासे सन्मानसे इतना हर्षाकुल हो जाता है तो इतनी ज़रासी निन्दाके होनेपर क्यों न कुम्हला जायगा। इस कुम्हलानेका मूल तेरी उस हर्षाकुलतामें है।

जब कोई तेरे नामके अन्तमें 'जी' नहीं लगाता या अभिवादन करना भूल जाता है तो तेरे सिरपर अपमानके घोर बादल मँडराने लगते हैं। और यदि सहभोजके निमन्त्रण पत्रमें तुझे भी याद कर लिया जाता है तो सारी दुनिया तुझे उस दिन उजली दिखायी देने लगती है और तू संसारमें अपनेको 'कुछ चीज़' समझने लगता है। ऐ मेरे मन! तू इतना क्षुद्र है। जब तू (बरसाती नदीकी तरह) ज़रासे पर-प्रसादसे भरपूर हो जाता है और स्वल्पसे अभावसे सूख जाता है तो मैं तुझ ऐसे तुच्छको साथ लेकर इस संसारमें क्या काम कर सकूँगा।

३

हे त्रिभुवन विधाता! मेरे हृदयको विशाल बना दे। हे कृष्ण भगवान् और महात्मा सुकरातके हृदयोंके बनानेवाले! मेरे हृदयको (समुद्रके समान) गम्भीर और 'अचलप्रतिष्ठ' बना दे जिससे कि प्रशंसाके रूपमें हज़ारों नदी नद इसमें आ आ करके गिरें किन्तु यह आपेसे बाहर न हो और सहस्रों निंदक रवि-किरणें अपनी पूरी तीक्ष्णतासे दिन भर काम करें किन्तु इसे ज़रा भी ताप न पहुँचा सकें। नहीं तो, हे प्रभो, ज़रासी बातसे बढ़ने घटनेवाले इस क्षुद्र हृदयको लेकर मैं इस तेरे बड़े भारी संसारमें किस काम आ सकूँगा।

❀ ❀

सम्मान वसन्तके आनेपर असली और नकलीका भेद खुल जाता है। नकली साधु इसे आया देखकर गर्वसे 'कांय कांय' करने लगते हैं किन्तु सच्चे सन्त अपनेको चारों दिशाओंमें फूलोंसे घिरा हुआ, मंद पवनसे वीज्यमान और ऊँचे-पर बैठा हुआ पाकर गर्दन झुकाए मीठी वाणी बोल बोलकर हृदयकी कृतज्ञता प्रकाश करते हुये नहीं थकते।

इन नम्र महात्माओंको दिये गये प्रतिष्ठा और सम्मान उन-पर क्षण भर भी नहीं ठहरते (पद्माकरके कमलपत्रपर पड़े जल-बिंदुके समान वे तुरंत अपने असली धाममें जा पहुँचते हैं) वे उसके चरणोंमें जा गिरते हैं जिसके चरणोंमें ये महात्मा स्वयं गिरे हुये हैं। इन सम्मानोंसे वे महात्मा स्वयं बिल्कुल निराग, निर्लेप और अस्पृष्ट रहते हैं।

जिन्होंने प्रतिष्ठाको प्राणान्त डसनेवाली नागिनें बनते देखा है वे महान् आश्चर्यमें देखते हैं कि वे ही प्रतिष्ठायें इन सच्चे महात्माओंपर गलेमें उज्ज्वल पुष्पोंका हार और परिवेष्टित आभूषण बनकर कैसे उतर रही हैं। यह किसका जादू है? क्या यह महात्माओंकी करामात है? किन्तु महात्मा बताते हैं कि यदि इसमें कोई अलौकिक बात दीखती है तो यह केवल बेलाग रहनेकी बात है, यही जादू है, यही करामात है।

❀ ❀

पहिले जब मैं चुपचाप सुदूर ग्राममें दिनरात तेरी पूजा करता था, वह मेरे सौभाग्यके दिन मैं ही जानता हूँ। किन्तु जबसे झुंडके झुंड लोग दर्शन करने आने लगे और जगह २ बुलाया जाकर मैं सांसारिक स्वागत सत्कारोंमेंसे गुजरने लगा, तबसे तेरी यह पूजा विषम हो गयी है। वह आनन्द मारा गया है। जैसी तेरी इच्छा, यदि तूने मुझे यही काम अब सौंपा है। किन्तु मुझे तेरी शान्त उपासनाके वे दिन नहीं भूलते जब कि तेरे—केवल तेरे—यहांसे मुझपर प्रतिष्ठाओंकी दिव्य वृष्टि होती थी—अन्य कोई मुझे न जानता था और न सत्कारके रूपमें अपना मलिन जल मुझपर बरसाता था।

किन्तु इससे भी बहुत पहिले जब कि मुझे तेरे चरणोंकी कुछ खबर न थी एक दिन वह भी था जब मैं एक छोटी सी सभाके सभापतिकी कुर्सीपर बैठनेके लिये ऐसे जा रहा था जैसे कि कोई दस दिनका भूखा एक रोटीके टुकड़ेको पड़ा

पाकर आतुरतासे लपकता है। अहो उद्धारक! तेरी लीला !!

❀ ❀

जब मैं किसी आदमीको देखता हूँ जो कि केवल अपनी कोई त्रुटि बतानेवाला न मिलनेके कारण घमंडमें अकड़कर चल रहा है, तो देखकर बड़ा तरस आता है और जी दुखता है। मुँहसे अपने लिये यही प्रार्थना निकलती है "हे विधाता, मुझे चाहे सदा किसी जंगलमे रखना किन्तु कभी चाटूकारोंके वाड़ेमें घड़ीभर भी न घिरा रखना। यदि दौर्भाग्यसे मेरे गुण और दोष दोनों बतानेवाले सच्चे समालोचक न मिल सकें तो मुझे घोर निन्दकोंके बीचमे वास देना, किन्तु करुणाकर उस भयंकर स्थानमें कभी जगह न देना जहां पर सब प्रश्नोंका उत्तर 'जी हां' 'ठीक है' में ही मिलता है, जहां पर ऐसा सेन्सर (censor) का प्रबन्ध है कि सिवाय 'वाह' 'वाह' के और किसी भी प्रकारका समाचार लानेवाली हवा तक मुझे न पहुँच सके।"

जहाँ मेरे केवल काले पार्श्वपर प्रकाश पड़ता है वहां मेरा सब कालापन धीरे २ उड़ जायगा और ठीक उसी तरह जहाँ केवल सफेद पार्श्व खुला रहता है, वहां मेरी सब धवलिमा नष्ट हो जायगी और मैं पूर्ण काला रह जाऊँगा, यद्यपि जीमें मैं अपनेको सफेद समझता रहूँगा। ऐसे निरंतर धोखेमें रहना कितना भयंकर है। इस धोखेसे जब एकदम आँख खुलती है तो अपनी दशा देखकर सिवाय आत्मघात करनेके और कुछ नहीं बन पड़ता।

मेरा शरीर पहिले ही निर्बल है, फिर यदि मैं हमेशा 'वाह वाह' को नमी आब हवामें रहूँगा और निन्दाके झोकोंसे कभी जलवायु परिवर्तन न होता रहेगा तो बताओ मेरे अंग-गल न जायँगे तो क्या होगा।

❀ ❀

तब कितनी आश्चर्य्यकारक बात होती है जब हम उनसे अपनी प्रशंसा चाहते हैं जिन्हें कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि वे अज्ञानी और मूर्ख हैं। प्रशंसाके लालचमें यह भी नहीं देखते कि हमें क्या चीज़ मिल रही है। मूर्खोंकी दी हुई प्रतिष्ठाका क्या मूल्य है? जो विचारा उस बातको समझ ही नहीं सकता वह हमारी क्या प्रशंसा करेगा और क्या निन्दा करेगा। अज्ञानी और स्वार्थी पुरुष जिस समय निन्दा, अपवाद फैलाने लगते हैं तब ज्ञानी लोग तो इसे बड़ा भारी शकुन समझते हैं।

हे प्रतिष्ठे! तुम्हारा भी संसारमें कोई उचित स्थान है। यह वहां है जिस मौके पर अनुभवी वृद्ध पुरुष प्रसन्न होकर हमारे सिरपर हाथ फेरते हैं, या सज्जन मण्डल अपनी सराहनाका प्रेम प्रदान करते हैं—जब कि इन आप्त पुरुषोंसे आदरकी इच्छा और निरादरका भय हमें उत्साहपूर्वक सदा सन्मार्गपर रक्खे रखते हैं। यही अवस्था है जब कि हमें अपने विकासके लिए परदत्त प्रतिष्ठाकी ज़रूरत है—जब कि बाल पौधेको अपरधामें इस जलसेकके समय २ पर दिये जानेकी ज़रूरत है।

"थोड़ासा"

रोगमें ग्रस्त बालक शय्यापर पड़ा है। वह कहता है "नहीं अम्मा! आज तो वैद्य जी मुझे भोजनके लिये विशेष तौरसे मना कर गये है। वे कह गये हैं कि कुछ भी खाना बहुत हानि कर जायगा।" किन्तु पास खड़ी अम्मा भोजन भरी थाली हाथमें लिये कह रही है "नहीं बेटा **थोड़ासा** तो खा ले, और कुछ नही खाता तो ले यह **थोड़ीसी** खीर खा ले। हाय, बच्चा क्या दिन भर भूखा रहेगा?"

एक विचित्र सी अवस्था आ पड़नेपर सत्यव्रती कह रहा है 'नहीं भाइयो! सत्यका महाव्रत पालन करनेकी वह महिमा तुम कुछ नही जानते हो; मै और क्या कहूँ।' किन्तु अन्य सब लोग कहते हैं "**थोड़ासा** एक बार झूठ बोलनेमें भला क्या हरज है, एक बार तो धर्मराज युधिष्ठिरने भी झूठ बोल दिया था। थोड़ा सा झूठ न बोलनेसे यह सब बना बनाया काम बिगड़ जायगा।"

बड़े प्रलोभनका समय है जब कि यती कह रहा है "भाग जाओ, तुम्हारा मेरे सामने कुछ काम नहीं है। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ।" किन्तु चारों तरफ डोलती

फिरती हुई, मोहनी मूरतें अपनी चेष्टाओं द्वारा कह रही हैं "अरे थोड़ासा बस आनन्द एक बार लेकर देख। फिर चाहे छोड़ देना। थोड़ासा, केवल थोड़ासा।"

प्रकृति देवीकी गोदमें पला हुआ एक युवक इस बाज़ारी दुनियामें नया नया आया है। स्थान स्थानपर उसे 'अप टु डेट' सभ्य मिलते हैं और कहते हैं "अजी थोड़ासा मांस अवश्य खाना चाहिये। इससे जिस्ममें ताक़त बढ़ती है। नुकसान तो बहुत खानेसे होता है।" "यार शराबका थोड़ासा सेवन तो करना चाहिये। इससे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। इसका थोड़ासा सेवन तो साहब लोग भी भोजनके साथ करते हैं।" "नहीं जी, थोड़ासा मसाला, चटनी, चूर्ण आदि खाना तो आवश्यक है। डाक्टर लोग भी ऐसा ही कहते हैं। इनके बिना भोजन पच ही नहीं सकता।" "केवल भोजनके बाद धूम्रपान (सिगरेट, बीड़ी या हुक्का,) बड़ा उपयोगी है। सारा दिन पीनेको कौन कहता है, थोड़ासा भोजनके बाद।"

❀ ❀

बिच्छू कहता है कि मुझे केवल थोड़ासा— केवल अपने पतले डंककी नोक भर धरनेको—स्थान अपने शरीरमें देदो। बस, शेष सारे शरीरको मैं कुछ नहीं कहता।

आग लगानेवाला कहता है कि थोड़ीसी केवल एक

चिंगारी अपने छप्परके एक कोनेमें लगाने दो, मैं और कुछ नहीं मांगता।

पाप भाव कहता है कि मुझे अपने हृदयमें थोड़ासा स्थान दे दो—मैं वहां कोनेमें एक तरफ़ चुपचाप बैठा रहूँगा, कभी कुछ करूँगा नहीं।

चतुर शासक कहता है कि तुम थोड़ासा केवल एक पैसा भर अपनी अमुक वस्तुपर 'कर' लगा लेने दो, अधिक कुछ नहीं।

विदेशी व्यापारी आकर कहते हैं कि तुम अपने विस्तृत देशके एक किनारेपर थोड़ीसी भूमि हमें दे दो—केवल एक कोठी बनाने लायक जगह।

वामनावतार उतरते हैं और कहते हैं कि 'हे महादानी बलि राजा! तुम मुझे केवल साढ़े तीन पग धरने लायक थोड़ीसी भूमि दान कर दो बस मैं और कुछ नहीं मांगता।

❀ ❀

मैंने आज ऐसी चीज़ें न खानेका व्रत किया था किन्तु अमुक आदमी यह खोयेका लड्डू रख गया है। अच्छा इसे न खाऊंगा, छोड़ दूंगा ...... "किन्तु अब वह दे गया है तो इसे बिलकुल न खाना तो उचित नहीं। इसलिये थो-ड़ा-सा खालूं, इतना तो करना चाहिये।" यह थोड़ासा खा लिया गया। थोड़ीही देर बाद इसके दूसरी तरफसे आँख मीचे हुए एक गस्सा और भर लिया। अब इसे फिर उठा कर दो उँगलियोंमें पकड़े हुये इधर उधर घुमाता हुआ, 'अब यह रह दो कितना

चाया है' उस सबको एक ही ग्रासमें जल्दीसे गलेके नीचे उतार लिया—मानो कि यह जल्दीसे खा लेना न खानेके बराबर हो जायगा।

"मैंने शराब तो बहुत दिनोंसे छोड़ दी है, किन्तु आज यह सामने दूकान आगयी है, लाऊं तो **थोड़ीसी**—केवल एक छोटासा प्याला ' ....।" एक प्याला पी लिया। "दूकानवाले! ले फिर पाँच आनेकी और दे दे।" पाँच आनेकी भी पी डाली। 'अच्छा फिर जब पीनी है तो छक कर क्यों न पीलें।' जेबमें सब टटोलनेसे कुल पूंजी सवा चार रुपयेके पैसे निकले, वे सब दुकानदारके हवाले कर दिये और कई बोतलें खाली करके चल दिये।

'मुझे पेचिश हो रही है इसलिये यह इमलीका पना और चाट खानी तो नहीं चाहिये किन्तु **थोड़ासा** केवल पानी २ चामलोंमें डाल लेता हूँ'। थोड़ी देरमें पाँच चार चम्मच और डाल लिये और कुछ देरमें 'अब मैं जीऊँ या मरूं इसे तो खाऊंगा ही' ऐसा कहकर सारी कूँडी उठाकर पी डाली।

रात दो बजे घड़ीका अलारम बज रहा है क्योंकि बाबू साहबको ४ बजेकी गाड़ीसे कहीं जाना है और २ घंटे तय्यारीमें लगेंगे। उठकर 'एं दो तो बज गये। किन्तु अभी देर है थोड़ासा और सो लेवें। १५ मिनट बाद उठ जायंगे।' तीन बजेके लगभग फिर आँख खुली, 'गाड़ी तो ४ बजे आती है

और ४½ पर छूटती है थोड़ासा और सो लें। जल्दीसे सामान बांध लेंगे।' "ये तो पौने चार बज गये, अब उठकर जल्दी करनी चाहिये। किन्तु नींद क्यों खराब करें। अब दिनकी गाड़ीसे जायेंगे।" रोजके उठनेके समयपर भी जब कि ६½ बजे सूरजकी धूप आँखोंपर पड़ने लगी तब भी 'आज रात विघ्न होता रहा है' कहकर करवट बदल सो रहे और ठीक आठ बजे बाबू साहब आँखें मलते हुये चारपाईसे उतरे।

'यह बड़ा दुर्जन है। गुरुजीने इससे मिलनेसे रोका था। किन्तु कभी २ थोड़ीसी बातचीत कर लेनेमें क्या हर्ज है।' कुछ दिनों बाद दिल कहता है कि 'जब मित्रता ही की है तो इनकी सभी बातोंमें थोड़ा थोड़ा सम्मिलित होना चाहिये, नहीं तो दोस्ती कैसी।' अब उनकी सभी बातोंमें सम्मिलित होने लगे। कई वर्षों बाद एक दिन मनमें विचार होरहा है "अपने यारकी मैंने सभी इच्छायें पूरी की हैं तो एक यह क्यों रह जाय। अच्छा कल भाईको विष खिला ही दूंगा। यह आँखों-का काँटा दूर हो जाय तभी ठीक है। पकड़े जानेपर फिर जो कुछ होगा देखा जायगा" अगले दिन अपने सहोदर भाईको भोजनमें संखिया खिला दिया।

❀ ❀

हर एक काम आदिमें 'थोड़ा सा' से ही प्रारम्भ होता है। आरम्भमें 'थोड़ीसी' उँगली पकड़ते पकड़ते ही पहुँचा पकड़ा जाता है और मनुष्य सर्वथा वशंगत हो जाता है।

वह आग जिसमें कि सारा नगर जल गया प्रारम्भमें थोड़ीसी, केवल एक चिंगारीके रूपमें थी।

वह व्रण जिसका कि विष सारे शरीरमें फैलकर प्राण चले गये प्रारम्भमें थोड़ीसी—एक ज़रासी फुंसीके रूपमें था।

वह आपसकी लड़ाई जिसके महायुद्धमें असंख्यों प्राणी नष्ट हुए और सम्पूर्ण संसारको धक्का पहुँचा, प्रारम्भमें थोड़ीसी केवल एक कटु वचनके रूपमें पैदा हुई थी।

उस वीर्य्य नाश करनेवालेने जो कि आज गले सड़े शरीरमें पड़ा हुवा भयंकर आँखें दिखा रहा है और जिसे कि कुछ दिनोंकी दुनियाँमें नैराश्यके सिवा आज कुछ दिखाई नहीं देता प्रारम्भमें केवल एकवार थोड़ेसे काम विचारके रूपमें उधर मुँह उठाया था।

वह धोखा देनेवाला जो कि आज संसारमें किसीपर विश्वास नहीं कर सकता और जिसके लिये झूठ बोलना सचकी तरह बिल्कुल साधारण हो गया है प्रारम्भमें केवल एक बार ही थोड़ासा झूठ बोलकर दूसरेको धोखा दिया था।

वह विशूचिका रोग जिसमें कि बड़ा हृष्ट पुष्ट शरीर दो घण्टोंमें छटपटाकर ठंढा हो गया प्रारम्भमें थोड़ासा, दिखाई भी न देनेवाले क्षुद्रसे क्षुद्र कीटाणुके रूपमें था।

वह पाप-वृक्ष जो कि आज बड़े ऊँचे और दूर दूर तक

फैली हुई विशाल शाखाओंमें दृढ़ खड़ा है प्रारम्भमें थोड़ासा, केवल एक नन्हेंसे बीजके रूपमें, था।

❀ ❀

छोटेसे छेदकी उपेक्षा करनेवालेको क्या मालूम था कि इस 'थोड़ेमें' से सम्पूर्ण जहाज़में पानी भर जायगा और इतना सामान तथा ये हज़ारों यात्री देखते २ समुद्रगर्भमें ग़र्क़ हो जायेंगे।

थोड़ीसी (केवल पाँच मिनिटकी) देर करनेवाले सेनापतिको क्या मालूम था कि इससे उसके महाराजकी सदाके लिये पराजय हो जायगी और सारे संसारका इतिहास बदल जायगा।

माताको क्या मालूम था कि आज थोड़ीसी केवल एक पुस्तककी पाठशालासे चोरी कर लानेवाला उसका पूत एक दिन चोरीमें फाँसी चढ़ेगा और उसका कान भी काट ले जायगा।

अनजानको क्या मालूम था कि थोड़ीसी केवल रत्ती भर इस चीज़के पड़ जानेसे सारा कुँवा विषैला हो जायगा और जो इसका थोड़ासा भी पानी पीवेगा वह यमालयमें ही पहुँचकर विश्राम लेगा।

ऊँची पहाड़ीपर सुखसे खड़े हुए प्राणीको क्या मालूम था कि पासकी बेरोंसे लदी झाड़ीपर मुँह मारनेके लिये थोड़ासा केवल एक पग नीचेकी तरफ उठानेमें वह खाईमें जा पड़ेगा और सब हड्डियाँ चकनाचूर हो जावेंगी।

❀ ❀

यह 'थोड़ासा' बहुत भयंकर वस्तु है। कभी इसको थोड़ा समझ उपेक्षा मत करना। केन्द्रसे च्युत होते ही-थोड़ा या बहुत—सारे मंडलसे सम्बन्ध बिगड़ जाता है। गुरुताकेन्द्र से अतिरिक्त किसी भी अन्य स्थानपर वस्तुको संभाला नहीं जा सकता, वह स्थान फिर वहाँसे थोड़ी दूर हो या बहुत। इसी प्रकार संसारके व्यापी नियमोंकी सत्य रेखाओंसे "थोड़ासा" भी हटनेसे जगतसे हमारा सम्बन्ध बिगड़ जाता है और हम उसकी महान रक्षासे तत्क्षण वंचित हो जाते हैं। अतः प्रश्न तो किसी कामके बिल्कुल ही न करने या कर डालने में है, थोड़ा करने या बहुत करनेमें नहीं। और फिर यदि सुईकी नोकसे एक बार "थोड़ासा" भी छिद्र बना दिया गया तो उससे निकलनेवाली धारा कुछ ही क्षणोंमें बढ़कर एक भयंकर प्रवाह बहानेवाले मार्गके रूपमें आ जाती है। थोड़ा कभी थोड़ा नहीं रह सकता। एक बार भी चस्का लग जानेपर फिर उसे कौन छोड़ सकता है। मार्ग चल निकलने पर उसे कौन रोक सकता है। एक बार धारामें पड़ जानेपर फिर कौन वापिस लौट सकता है। इसलिये विचारने और संभलनेका यदि कोई समय है तो तभी है जब कि प्रलोभन 'थोड़ासा, थोड़ा सा' कहता हुवा हमें गढ़ेमें डालनेके लिये पास आता है उस समय कमसे कम यह तो सोच लेना चाहिये कि अब मैं इस 'थोड़ेसे' को नहीं रोक सकता तो क्या बढ़ जानेपर रोकूँगा। अबके बाद यदि फिर कभी यह

'थोड़ा सा' आवे तो कड़कके गंभीर स्वरसे कह देना 'नहीं कभी नहीं, बिलकुल नहीं। क्या मैं इतना तुच्छ हूँ कि इस 'थोड़ा-सा' की बहकावटमें आ जाऊँगा। यह मेरे दृष्टिपातके भी योग्य नहीं है। मैं जिसमें महाशक्ति प्रवाहित हो रही है, अगाध, अटल हूँ। मै इस थोड़ेसे से हिल जाऊँगा' यह थोड़ासा! ऐसा कहकर इसे अस्वीकार कर दो, लात मार दो, दूर फेंक दो।

❀ ❀

किन्तु महा आश्चर्य है कि प्रलोभनके ही समय यह 'थोड़ेसे' का सिद्धान्त क्यों याद आता है। अच्छे कामोंमें 'थोड़ासा, थोड़ा सा' क्यों नही किया जाता। थोड़ा २ रोज़ हम क्यों न सत्संग करें, थोड़ा २ पढ़नेमें प्रवृत हों .... इत्यादि। यहाँ भी थोड़ेसे को कभी तुच्छ मत समझना। एक २ धूलिकणसे हिमालयसे पहाड़ खड़े हुए हैं, एक २ बून्दसे महासागर भरे हैं। एक एक पलसे मिलकर यह अनन्तकाल बना है, एक २ परमाणुसे जुड़कर यह विश्वब्रह्माण्ड खड़ा है। एक एक सत्कर्मके पुष्पोंसे महात्माओंकी चरित्रमालाये गूँथी गयी हैं, एक एक पग ऊपर रखनेसे उच्चसे उच्च इन्द्रासन पहुँच गये हैं। यही दिशा है जहाँ 'थोड़ासा' २ करके जितना बढ़ा जाय उतना ही थोड़ा है। यही इस 'थोड़ा सा' के सिद्धान्तका उचित प्रयोग है, जिसके करते २ सहजमें परम अभीष्ट प्राप्त किया जा सकता है।

तरंग ८

हँसता हूँ

सब तरफ हंसी और प्रमोद का राज्य है, जिस चीज़ को देखता हूँ हंसता ही पाता हूँ। विशाल प्रकृति देवी अपने एक २ अंग से चहुँ ओर मुस्करा रही है। ऊपर आकाश, कभी श्याममेघों से आवृत, कभी नील निर्मल, कभी तारों से जटित, अपनी छवि में आठों पहर शोभायमान है। भूतल पर दिगन्तों-तक हरे खेत लहरा रहे हैं, इधर पहाड़ उचक रहे हैं, उधर चमकीली नदियां उछलती कूदती दौड़ रही हैं। कहीं पक्षियों-के गीत, हिरणोंकी सायंकालिक छलांगें और मोरोंके नाच हैं: और कहीं हरी पोशाक में सजे हुये तरुगण अपने रंग बिरंगे फूलों से प्रफुल्लित मंद हास्य कर रहे हैं। आहा! आनन्द खुशी और हंसी की तरंगोंमें, यह देखो, कैसे सारा संसार-समुद्र उमड़ रहा है। यह वृहत् हास्य-संमेलन न जाने किस अज्ञान कालसे हो रहा है।

समय था जब अपने बालकपनके दिनोंमें मुझे यह विशाल हास्य 'भयानक हंसी' प्रतीत हुआ करती थी और मैं समझता था कि ये सब चारों ओरके हंसनेवाले निरन्तर मुझपर ही हंसा करते हैं, इसलिये तब मैं नीचे मुख किये सदैव उदास

और दुःखी बना रहता था। किन्तु "ये सब तो मुझे हँसानेके लिये ही हँस रहे हैं और मुझे भी इनके साथ मिलकर हँसना चाहिये" यह मंगल संदेश जबसे मुझे पहुँचा है तबसे मैं हँसता हूँ और तबसे हँसा ही करता हूँ।

❀ ❀

यह हमारा जगत् एक विचित्र, जीवित जागृत, महान् अद्भुतालय है जिसमें कि रखी हुई एक २ वस्तु एकसे एक अद्भुत और अतएव हास्योत्पादक है। मैं यहांकी किसी भी वस्तुको ध्यानसे जरा देरतक देखता हूँ तो कुछ देरमें हँसने लगता हूँ। यहां कहीं आनन्दोत्सव मनाया जारहा है तो कहीं रोना धोना मचा हुवा है, एक ओर योगनिद्रामें लीन होना दूसरी ओर अज्ञानकी घोर रात्रिमें चादर तान सोना, इधर शोर शराबा उधर श्मशानका सन्नाटा। यह सब अद्भुत खेल देखकर मैं दिनरात मनही मन खिलखिलाता रहता हूँ। इसमें कहीं सत्व चढ़ा हुआ है और लोगोंको ज्ञानप्रकाशमें ऊँचा २ उठा रहा है, कहीं रज लोगोंको बलात् बड़े २ कार्योंमें लगा रहा है उन्हें चैन भी नहीं लेने देता और कहीं तमका राज्य है तो लोग आलस्यके मारे हुवे मोहमें फँसे पड़े हैं। अहो, यह विश्वव्यापिनी लीला, बस देखने योग्य है। जो लोग व्याकुलतासे बड़ी २ साधनाओंमें लगे हुवे हैं जी चाहता है कि उन्हें हिला २ कर उठाकर खड़ा कर दूं और कह दूं "अरे देखो, इस

हास्यरसके विशाल नाटकको द्रष्टा बनकर देखो। तुम किस झंझटमें पड़े हो। इस लीलाको देखो और हंसो, बस यही मोक्षका सीधा उपाय है। क्या तुम्हें यह प्रत्यक्ष होता हुवा अद्भुत नाटक नहीं दिखायी देता? ज़रा एक तरफ खड़े होकर देखो: द्रष्टा बनते ही तुरंत तुम्हारे लिए मोक्षके दर्वाजे खुल जांयगे और पहुँचनेके लिए पास पोर्ट (Pass Port) मिल जायगा। "उठो, देखो हंसो" यही हमारी साधना का मंत्र है"।

❀ ❀

सृष्टिके गहन रहस्योंको खूब सोचनेपर भी जब कुछ सूझ नहीं पड़ता तो न जाने क्या सोच मैं कहकहा मारकर हँसने लगता हूँ, जिस दिन कि प्रातःसे एक ही जगह बैठकर बड़े परिश्रमसे दिनभर कार्य्यव्यग्र रहता हूँ और शामको देखता हूँ कि चिन्ता भार रत्ती भर भी नहीं घटा सका हूँ तो विवश अपना कार्य्य समेट लेता हूँ और सब कुछ भुला हँस पड़ता हूँ। अब किसी आपत्तिके टालनेके सब उचित यत्न करनेपर भी देखता हूँ कि यह टलती नहीं हैं तो इसे आने देता हूँ और अपनी मुस्कराहटसे इसका स्वागत करता हूँ। संसारके सब कष्ट और कठिनाइयोंमें मेरा अन्तिम शरण यह 'हास्य' ही है।

इसी प्रकार मुझसे किये गये सब प्रश्नों और तर्कोंका अन्तिम और अमोघ उत्तर भी यही हंसी है। जिसे मैं अधिक समझा नहीं सकता। वह जब कहता है कि 'तुम्हारे विचार दुनियासे निराले हैं' तो मैं मन ही मन हँसता हूँ। वह ज़ोरसे

कहता है कि 'बतलाओ कि तुम्हारी ये विचित्र बातें कैसे ठीक हैं' मैं आज्ञापालनेके लिए हँसने लगता हूँ। यदि वह बलात् 'शास्त्रार्थ' (?) पर उतर आता है, तो मैं उसे और कैसे समझाऊँ?। ईश्वरकी कृपासे मैं निरुत्तर रह जाता हूँ और तब खूब जी खोलकर हँसता हूँ।

❀ ❀

वास्तवमे मैं सदैव हँसता हूँ। हे चारों तरफकी चीज़ो! जिस समय तुम मुझे हंसता न पाओ या दुःखी और उदासीन देखो तो यह न समझो कि मेरे अन्दरका हँसीका दीपक बुझ गया है। निःसंशय तुम यदि ज़रा इधर उधरसे झांककर देखोगे तो इसका प्रकाश तुम्हें ज़रूर मिलेगा। सच तो यह है कि बाहरके आपद् और कष्टोंकी आँधीके झोंकोंसे इस दीपकको बचानेके लिए ही मैं स्वयं इसे उस समय छिपा लिया करता हूँ—केवल ढक लेता हूँ। वास्तवमें मैं निरन्तर हँसता ही रहता हूँ।

यह सत्य है कि देर तक अन्यमनस्क रहनेसे इस दीपककी बत्ती कभी २ नीची हो जाया करती है परन्तु ध्यान आने ही मैं तुरन्त इसे ऊंचा कर लेता हूँ और एवं मेरा दीपक सदैव जलता ही रहता है। मेरी हंसी कभी बन्द नहीं होती।

❀ ❀

जिन अवसरोंपर दुनिया रोती पीटती है या हंसना छोड़ गंभीर चेहरा बनाये रखती हैं उस समय भी यद्यपि संसारके

वायुमंडलके दबावसे मेरी हंसी दबी होती है और चेहरा गंभीर बना होता है तो भी अन्दर ही अन्दर मेरे एक कोनेमें हंसी चलती रहती है। मेरा एक हिस्सा हंसा करता है जब कि लोग 'मेरी सारी जिन्दगीका कमाया धन नष्ट हो गया' 'या मेरा इकलौता जवान बेटा मर गया' ऐसा समाचार सुनाते हैं अथवा अत्याचारीके किन्हीं लोमहर्षण अत्याचारोंकी कथा करते हैं। मैं रोगीपर पंखा करता हुआ भी अपनी अन्दरकी एक गुफामें हंसता हूं और जब 'राम नाम सत है' करती हुई प्रतिदिन अरथियाँ सामनेसे गुज़रती है तब भी अन्दर हंसता जाता हूं। और भी हंसी आने लगती है जब ध्यानमें लाता हूं कि मैं भी एक दिन ऐसे ही अरथीपर पड़ा हूंगा। हाँ, हाँ, अपनी मृत्युके सायंकालको भी मैं हंसना न भूल सकूंगा। मरनेके बाद भी मेरे दाँत निकले होंगे। नहीं नहीं, मेरी तो चिता भी अंत समयमें एक विकट हास्य हंसेगी जिससे कि छोटे २ हंसोंके फूल झड़ेंगे जिन्हें कि चुननेके लिये लोग, यदि चाहेंगे तो, मेरी राख ढूंढेंगे।

❀ ❀

हे सर्वव्यापी हास्यके स्रोत! हे सबको हंसानेवाले! हे आनन्दमय! तेरे अनगिनत दानोंमेंसे मैंने आज इस एक हंसीके दानको पहचाना है और अपनाया है। हे दाता! इससे मुझे कभी वियुक्त न करना। मुझे अयोग्य देख चाहे अन्य सब दान भले ही मुझसे छीन लेना परन्तु हे करुणा-

निधान ! इस हंसीके दानको तो अपने स्मृतिचिन्हके तौर पर ही सही, इस गरीब दासके पास रहने देना और अपराधोंके दण्डमें मुझसे सब सामर्थ्य हरण कर लेनेपर भी इतनी—केवल इतनी—सामर्थ्य छोड़ देना कि जिससे आपकी दी हुई इस हंसीको सदा प्रकट कर सकूं, जिससे अपने पापों और अधर्मोंके बदले आई हुई आपदाओं और क्लेशोंमें मैं मुस्कुरा सकू—इस तेरी भेंट द्वारा उन्हें पवित्र कर सकूं—इस तेरे उपहार पुष्पके संसर्गसे अपने सारे कंटीले रास्तेको सुरभित कर सकूं। यही नाथ ! एक प्रार्थना है। इस लोकमें परलोकमें, जवानीमें या बुढ़ापेमें, वर्षामें या ग्रीष्ममें, दिनमें या रातमें, सदैव ही यह तेरा उपहार-पुष्प इस तुच्छ पौधेपर विकसित रहे, कभी भी म्लान न हो। हे प्रभो ! कभी भी म्लान न हो।

तरंग ९

सन्ध्या
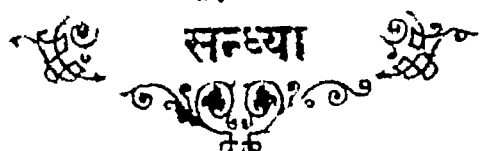
अब मेरे चौकेमें कोई न आवे। अब मैं सब कूड़ा करकट निकाल कर साफ चौका लगाकर आत्मिक भोजन पकानेके लिये बैठा हूँ।

यही निश्चय करके मैं प्रतिदिन सायं प्रातः जब आत्मिक भूख लगती है, चौका लगाकर पवित्रतासे रसोई करना शुरू करता हूँ। परन्तु मेरे यार दोस्त ऐसे बेतकल्लुफ (दोस्तोंको इससे ज्यादा और क्या कहूँ) हो गये हैं कि मुझे अपना भोजन भी नहीं करने देते। जिन किन्हीं से दिन भरमें या रातमें जरा क्षणिक भी परिचय हो गया होता है वे निःशंक बेखटके मेरे चौकेमें चले आते हैं और मुझसे बातें करने लगते हैं। और मैं भी ऐसा रसिक (अपनेको 'निर्लज्ज' कहते तो लज्जा आती है) हूँ कि मुझे कुछ खबर तक नहीं रहती। कभी कभी तो घिन्टों तक दोस्तोंसे गप्पें उड़ती रहती हैं। एकदम जब ख्याल आता है तो चिल्ला उठता हूँ "हायरे! यह तो मेरा चौका छूत हो गया। निकलो, यहाँसे भागो! मैं तो भोजनके लिये बैठा था"। सबको हटाकर फिरसे चौका देता हूँ और फिरसे भोजन बनाने बैठता हूँ। किन्तु फिर भी वही हाल है।

भला दिन भरके साथी इस समयके लिये कैसे हट जाँय। फिर फिर चौका छूत होता है और मैं फिर फिर शुरुसे चूल्हा सुलगाता और दाल चढ़ाता रहता हूँ। बड़ा हैरान हूँ। क्या करूँ? बहुत देर हो जाती है। क्या दिन भर यही करता रहूँ? इतना तो धीरज नहीं है। या यह भोजन ही न खाऊँ? यह भी इच्छा नहीं है। अन्तमें तंग आकर छूत, जूठा जैसा भी कच्चा पक्का खाना होता है, खालेता हूँ और छुटकारा पाता हूँ। पर इस दूषित भोजनसे क्या लाभ होना है? यही कारण है कि मेरी आत्मिक पुष्टि नहीं होने पाती। प्रतिदिन दोनों संध्या वेलाओंमें भोजन खाता जाता हूँ तो भी दुबलाका दुबला ही हूँ।

❀ ❀

एक नदी है जिसे सब यात्रियोंने कभी न कभी पार करना है। बहुतसे लोग इस नदीके तटपर वर्षोंसे आये बैठे हैं–बहुत आ रहे हैं, कोई दूर है, कोई समीप पहुँच चला है–ऐसे भी बहुत हैं जिन्हें खबर नहीं कि हमने कभी इस नदीको पार भी करना है, परन्तु ये सब इस बातमें समान हैं कि कोई भी पारंगत नहीं। सब इसी पार हैं।

तटवर्त्ती लोग दूर तक पानीमें जाते हैं और घबराकर लौट आते हैं। बड़े २ यत्न करते हैं–नई २ तदबीरें पार होनेके लिये सोचते हैं। इधरसे आकर देखते हैं, कभी उधरसे जाते हैं। परन्तु जब तक पार नहीं हो जाते तब तक कुछ नहीं। वे

वहीं है जो अन्य हैं। उनमें कोई सच्ची महत्ता नहीं, कोई वैशिष्ट्य नहीं।

यह कौन सी नदी है? यह वह नदी है जो कि व्युत्थानता के राज्यकी सीमा है और जिसके कि पार एकाग्रता और निरोधकी पुण्य भूमिका विस्तार प्रारम्भ होता है, जिसपर कि प्रसिद्ध, धारणा ध्यान और समाधि नामक उत्तरोत्तर प्रकाशमान साम्राज्य है और जहाँ पर बने हुये विभूतियोंके दिव्य-भवन कई यात्रियोंको इसी किनारेसे दीखने लगते हैं। यह वह नदी है कि जिसके पार लंघे हुए मनुष्यको अपने आत्मिक भोजन बनानेमें ये 'यार दोस्त' विघ्न नहीं डाल सकते और इसलिये वह वहाँ निर्विघ्न आत्मिक पुष्टि प्राप्त कर सकता है।

❀ ❀

तो इस नदीके पार कैसे जाँय? यह तो स्पष्ट है जिस यात्री पर संसारके नाना विषयोंसे बँधा हुवा 'राग' रूपी बोझ लदा हुवा है वह तो इस नदीको पार नहीं कर सकता। वह डूब जायगा, पर पार नहीं पहुँचेगा। इसलिये पहिले तो इस 'राग' के बड़े भारी बोझेको उतारकर हलका वैरागी बनना होगा। फिर जो वैरागी है वह किसी न किसी तरह बार बार (अभ्यास) करता हुआ इसे तर ही जायगा। जिसने सचमुच इस पारकी वस्तुओंका राग छोड़ दिया है उसे तो उस पारका गहरा आकर्षण ही खींचने लगता है। वह पार क्यों न होगा।

हाँ, कोई वैरागी पूछ सकता है कि 'बार बार यत्न' किस प्रकारका करना चाहिये। इसपर सन्त लोग बतलाते हैं कि:-

(१) कोई तो निरन्तर निरवच्छिन्न जप-रूपी पुल परसे उसपार पहुँच जाते हैं। ये लोग प्रणव या किसी अन्य जपको करते हैं।

(२) कोई ज्ञानी भक्त अपनी विचार-सिद्धि द्वारा इस नदी परसे ऐसे गुज़र जाते हैं कि उन्हें पता ही नहीं लगता कि हमने कोई नदी पार की है। ये लोग प्रारंभमें मनको कहते हैं 'अरे चंचल मन! तू जा, कहाँ जाता है। तू जहाँ भी जायगा वहीं वे ही भगवान ही तो हैं।' इस प्रकार उनका मन हर एक वस्तुमें भगवानको ही देखनेसे एक ही रंगमें रंग जाता है।

(३) दूसरे कोई भक्त अपना सब कुछ समर्पण करते हुवे मनःसमर्पण रूपी विमान द्वारा ऊपर ही से पार हो जाते हैं! जब सचमुच मन अपना नहीं रहता, भगवानका हो जाता है तो वह और किसका चिन्तन करे वह स्वयं निरुद्ध हो जाता है।

[४] कोई प्राणके अनुसार चलनेवाले 'सोहं' भावनाकी युक्तिसे ऐसे ठीक घाट उतर जाते हैं कि इन्हें वहाँ जलका कुछ भी कष्ट नहीं होता, बल्कि जलधारा सहायक होती है। ये लोग सतत चलनेवाले प्राणमें निरन्तर मन द्वारा सोहं या ॐ का श्रवण करते हैं।

[५] कोई इच्छाशक्ति वाले अपनी प्रबल इच्छाकी बाहुओंसे इसे तर कर पार कर जाते हैं।

[६] इनके अतिरिक्त गुरुपदेशसे प्राप्तव्य बहुतसी नौकायें, डोंगियें आदि भी है जो कि वैरागिओंको पार ले जाती हैं।

इसप्रकारके उपाय तो सैकड़ों हैं जिनसे कि इस नदीके पार पहुँचा जा सकता है। आओ हम भी किसी न किसी उपायसे इस नदीसे पार उतर जाएँ और निर्विघ्न आत्मिक पुष्टि प्राप्त करें।

तरंग १०

उद्बोधन

उठो, राजपुत्र ! वन्दिगण तुमें मंगल गीतों से जगा
हैं। स्वप्न छोड़ जागृत में आओ और अपनी राज
अनुभव करो। इस विशाल साम्राज्यके स्वत्वधारी राज
उठो, वन्दीगण खड़े तुम्हारे स्तुति गीत गा रहे हैं।

सेना नायक ! क्यों नैराश्य-ग्रस्त पड़े हुवे हो ? यह
सव शिथिल विखरी पडी हुई दिव्यशस्त्रों वाली अनन्त
तुम्हारी ही है। उठो और खड़े हो कर एक वार अ
रणशंख वजादो (सुनादो) कि ये दिग्विजयिनी सेनाये स
होकर भुवनों को कंपाती हुई आकाश पाताल को एक व
हुई तुम्हारी आज्ञा में खडी होजांय।

देवाधिराज ! उठो, जागो, दृष्टि उठाकर देखो कि ये
तैंतीस करोड़ देव तुम्हारे चारों तरफ आज्ञा पानेके लिये
बांधे खड़े हैं। इन्हें अपने आदेश सुना सुना कर अनु
करो-कृतार्थ करनेकी कृपा करो।

हे पुरुष ! उठो चारों तरफ दिखाई देनेवाली प्रकृति
विश्वरूपा और अनन्ता प्रकृति-तुम्हारे ही लिये अनादिका

प्रवृत्त हो रही है। इसे अपना कुछ भी नहीं सिद्ध करना है-- यह जो भी कुछ है सो सर्वथा तुम्हारे ही लिये है। पुरुष ! उठो इसे जानो और अपना पुरुषार्थ लाभ करो।

❀ ❀

हे शरीरी ! तू तो पवित्र आत्मा है। उठ, इस पाप कीचड़ से ऊपर उठ। तू निर्लेप है तेरे पास पापका क्या काम, पाप तुझे स्पर्श भी नहीं कर सकता। उठ, विशुद्ध आत्मा ! ऊपर उठ।

हे मनुष्य ! तू यहां विषय भोगों मे कहां फंसा पड़ा है। तू दिव्य अपवर्गका अधिकारी, वैराग्य के पवित्र मार्ग द्वारा ब्रह्मानन्द के पहुंचनेके अधिकारी ! तू क्या इस दशा में पड़नेके लायक है। उठ, तू मनुष्य है-पशुओं की असंख्यों भोग योनिओंसे ऊपर उठकर इस मननशील योनिको प्राप्त हुवा है।

हे जीव ! तू हारा हुवा क्यों पड़ा है। तुझ में तो संसारकी अनन्तशक्ति प्रवाहित होरही है। तेरे मस्तिष्कमें ज्ञानका सूर्य चमक रहा है। तेरे हृदयमें स्वयं भगवान् बस रहे हैं। तू क्या नहीं कर सकता, उठ।

❀ ❀

हे मौतके मारे हुये ! ज़रा आंख खोलकर देख कि यहाँ मौत कहाँ है? तू अमृतपुत्र, अमृतकी शाश्वत सत्ता, तू अनादि कालसे कब मरा है या मर सकता है।

हे दुःख क्लेशोंसे आठों पहर सताये हुये ! अब उठकर खड़ा होजा और आंख उठाकर चारों तरफ खुल कर देख कि

जो दुःख दिखाई देरहे थे वे अब क्या हैं। अरे, यह तो भगवानका जगत है जो कि 'आनन्दसे उत्पन्न होता है आनन्द में स्थित है और आनन्दमें ही लीन होता है'। यहां दुःखका कहां स्थान है ?।

ऐ घोर अन्धकारसे पीड़ित जिसे कि इस भयंकर तिमिरमें कुछ भी सुझाई नही देता ! ज़रा उठकर एक वार अपने बन्द किवाड़ोंको खोल और फिर देख सारा ब्रह्माण्ड स्वयंज्योति सूर्यकी भासमान किरणोंसे चकाचौंध हो रहा है कि नहीं।

ऐ नानाविध भयोंसे त्रासित ! तू क्यों हर समय क्षण २ में अनिष्टाशंकासे संकुचित हुवा रहता है। एकवार उठकर क्यों नहीं देख लेता कि इस घरमें सब अपना ही अपना है, यहां भय कैसा ? यहां तो त्रिकालमें भी किसीका अकल्याण कैसे हो सकता है ? फिर तू इस परम कल्याणमय शासनमें क्यों नहीं छाती निकाल कर निर्भय होकर फिरता।

ऐ असंख्यों चिताओंके भारसे व्याकुल ! तुझे यह भार लादने को किसने कहा है ! उठ, उस अपने सर्व रक्षक सर्व चिन्तकके सर्वधारक कन्धों पर इन्हें परमश्रद्धासे अर्पत कर निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाता। अरे मूर्ख ! जिसकी सर्वशक्तिमती माता हर समय जाग रही है उसे कैसी फिकर, किसकी चिन्ता। क्यों नहीं, उसकी गोदमें बेफिकरीमें मस्ताना होकर लोटता फिरता ?

❀ ❀

महापुरुष ! तुम यहां साधारण पुरुषोंकी भांती कहां घूम रहे हो। सब दुःखित पापमग्न संसार तुम्हारे चरणार्पणकी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम जानते नहीं कि तुम्हें क्या बनना है--अपनी भावी ऐतिहासिक महत्ताका तुम्हें कुछ ज्ञान नहीं। जो कार्य तुम्हारा है उसे संसारमें और कोई नहीं कर सकता।

हे कर्मवीर ! उठो, तुम्हारे लिये संसारका कार्यक्षेत्र खुला पड़ा है। तुम जिस छोटेसे भी कामको हाथमें लोगे तुम्हारे स्पर्शसे वही महत्वपूर्ण बन जायगा। तुम दीनोंके उद्धार [धर्मसंस्थापन] के लिये आये हो। तुममें महान् शक्ति निहित है, किन्तु पवनसुतको मालूम नहीं कि वह इस पारावारको लांघ सकता है। उठो, लोक तुम्हारी घोर आवश्यकता अनुभव कर रहा है। भारतभूमि-रजोजात ऋषिसंतान ! उठो जागो, समस्त संसार तुम्हारे जागने और इस पुण्यभूमिसे ज्योति प्राप्त करनेकी प्रतीक्षामें है। सूर्य ! उदित होओ, अपनी तमो-भेदक किरणोंका विकास करो। उठो, तुमसे जगत्का भावी कल्याण होने वाला है।

यह कौन जंगलमें लात पर लात धरे मस्त सोया पडा है। अरे अरे, तेरे सब लक्षण चक्रवर्ती केसे है। उठ, तू यहां कहां ?, तू तो देशों पर शासन करनेके लिये पैदा हुआ है। प्रसुप्त पंचानन ! उठो, देखो कि पांचो दिशायें तुम्हारे प्रतापसे व्याप्त हो रही हैं। सब जगतके अधिपति ! अपनी तेजःशाली विशाल आंखोंको खोलो। महाराज ! जागो बन्दीगण खड़े जगाते है।

'भयंकर अग्निकांड'

'वहाँ आग लग रही है आग लग रही है, चलो दौड़ो! बुझानेवालोंकी सख्त ज़रूरत है'। ऐसा शोर करते हुवे कुछ लोग आये । मैं भी उनकी तरह आग बुझानेवालोंका वेष भर कर उनके साथ हो लिया। साथ रहनेवाले अपने पड़ोसी— जो कि एक निराला आदमी था—से भी मैंने कहा कि 'चलो यार, कहीं परोपकार करने चलें। आज हम अमुक लोगोंमें अमुक स्थानपर परोपकार करने जा रहे हैं।" किन्तु उसक वही हमेशा जैसा उत्तर पाया और मैंने झुंझलाकर उसे व चार उलटी सीधी सुनाईं थी कि वह और कहने लगा 'भ तुम क्रुद्ध क्यों होते हो, क्या नहीं देखते कि मेरे तो स्वयं अ लग रही है। मैं औरोंकी आग क्या बुझाऊँगा।' ये लोग हो पागलपनकी बातें कहा करते हैं। इसलिए मैंने मुँह फे लिया और आगे चल दिया। किन्तु वह कहता ही गया 'अरे तेरे भी ज़ोरकी आग लग रही है। जाकर अपनी आ बुझा। तुम तो अपनी आगसे उलटे न जाने कितनों लगा आओगे।'

राहमें और भी कई इसी श्रेणीके लोग मिले। एक ने तो [जो कि बहुत उतावला मालूम होता था] हमें सचमुच आगमें जलता समझ कर दो चार उपदेशके भरे घड़े हम पर उलटा दिए किन्तु हम अपना काम बना कर ही घर लौटे और यही समाचार लाकर सुनाया कि 'आग बुझा आए'। यह सुनते ही 'निराला आदमी' फिर अपने घरसे बोल उठा 'सचमुच आग' अपनी या किसी और की ?

इस ढंगसे अपने स्वार्थ साधन करनेके काममें मैं इस प्रकार बहुत बार सम्मिलित हुआ। किन्तु अन्तमें कष्ट पाकर एक दिन आँखें खुल गयीं। आग सचमुच दिखाई देने लगी अपने लगी हुई आग दीखने लगी। ईश्वरकी कृपा हुई। अपने लगी हुई इस भारी आगको बुझानेके लिये बड़ी घबराहट पैदा हुई। यह भी स्पष्ट हो गया कि वह दूसरोंकी आग बुझानेका बहाना करना सचमुच अपनी ही एक आगकी क्षणिक शांति करनेका एक टेढ़ा उपाय है।

उस दिनसे मैं निरंतर अपनी अग्निके शमनमें लगा रहता हूँ। यदि समीपमें कोई मुझसे भी अधिक आगमें जलता दिखाई देता है और मैं उसकी शांतिके लिये कुछ कर सकता हूँ तो अपना काम छोड़कर उसका भी जो कुछ बन पड़ता है अवश्य कर देता हूँ। नहीं तो हर समय दिन और रात अपने अग्नि शमनमें ही लगा रहता हूँ।

ॐ ॐ

ओह ! संसार में ऐसे भी लोग है जिन्हें आग लग रही है किन्तु उसकी उन्हें कुछ भी ख़बर नहीं। जिन्हें अपनी आगका ज्ञान हो गया है वे तो अग्निकाण्ड सूचक घंटे बजाकर सहायता के लिये दूसरोंको बुलाते है या स्वयं उनके पास शरण पानेको जाते हैं अथवा अन्य कोई आग बुझानेका उपाय करते हैं। किन्तु उन शोचनीयताकी पराकाष्ठाको प्राप्त पुरुषोंकी क्या गति होती होगी जो कि आगमें फुँके जा रहे हैं किन्तु उन्हें इसका कुछ भी मालूम नहीं। उलटे वे औरोंकी आग बुझाते इधर उधर घूमते फिरते हैं।

सचमुच इस संसारमें आकर सबसे पहले हमे यही जानना है कि हमें आग लग रही है। भगवान बुद्धकी घोर तपस्याओं से प्राप्त चार महासत्योंमें पहिला सत्य यही है कि संसार आग से जल रहा है। मुनिराज पतंजलिने अपने योगशास्त्रके साधन पादमें यही सत्य बताया है कि विवेकी पुरुषके लिये संसारकी सभी वस्तुयें आग बनकर संतापदायिनी हो जाती है। सन्त कबीर अन्य मनुष्योंसे ऊपर खड़े होकर जगमें यही दृश्य देखते हैं और वर्णन करते है 'ई जग जरते देखिया, सब अपनी अपनी आगि"।

ॐ ॐ

'ऐसा कोई न मिला जासों रहिये लागि' इस संसार व्यापी आग में जलते हुये लोग ठंडक पानेकी मृगतृष्णामें जहां तहां तड़पते फिरते हैं। कोई स्त्री को ठंडक पहुंचाने वाली समझ

उसे जा लिपटता है। कोई प्यारे बालबच्चोंको छातीसे लगा अपना कलेजा ठंडा करना चाहता है। कोई अन्य भाई बन्धु मित्रोंको सदा चिपटा रह कर शीतलता पाना चाहता है। और कोई शान्ति पानेके लिये साधू फकीरों तथा अन्य ऐसे लोगोंकी शरण ढूँढ़ता फिरता है। किन्तु एक क्षणके बाद मालूम हो जाता है 'अरे ये भी वैसे ही जल रहे हैं—अपनी २ आगमें वैसे ही तप रहे हैं।' ऐसा कोई नहीं मिलता जिससे आकर लग रहें—जिसे लगे रहकर चार क्षणके लियेभी कुछ ठंडक पड़ जाय।

इस जलते हुवे संसारमें बालक समझता है कि जब वह युवा (विवाह योग्य) हो जायगा तो उसकी यह सब आग बुझ जायगी। जो तीसरी श्रेणीमें पढ़ता है वह दशम श्रेणी उत्तीर्ण होनेपर अपने सब संतापोंसे छुटकारा समझता है। जो ग्राममें रहता है वह शहरके निवासके लिये उद्विग्नतासे लालायित है, मानो कि वहांके बर्फपड़े शरबत तथा मलाईके बर्फ आदिका प्रयोग उसकी सब कलेजेकी आग बुझा देगा। जो अपने पांचखण्डके मकानमें पड़ा तप रहा है वह गंगाके शीतल तट या हिमालयके ठंडे पहाड़ोंकी तरफ बड़ी ही आशभरी निगाहोंसे देखता हुआ एक दिन वहां पहुंचनेकी प्रतीक्षामें बैठा है। जो ५-१० रुपये पाता है वह ५००) की डिप्टीगिरीकी प्राप्तिसे अपने सब दाह और जलनोंकी शान्ति समझता है। जो एक रोज़गार कर रहा है वह समझता है कि इसके सिवाय दूसरे

सभी पेशोंमें सुख हो सुखकी शीतल धारा बरस रही है। इसी प्रकार इस जलते हुवे संसारमें जहां अपना शासन नहीं, वे स्वदेशीय-राज्य को ही अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। जहां पढ़े लिखे कम हैं वे सबके साक्षर हो जानेमेंही सब प्रकारके संतापों-की शान्ति समझते हैं। किन्तु कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन सब समयों, स्थानों, अवस्थाओंपर भी पहुँचनेका विलंब है कि मालूम हो जाता है कि वहांपर एक और अगली भट्टी हमारे जलानेके लिए धधकती हुई तय्यार रखी है। सभी देश और काल अपनी २ आगमें भयंकरता से जल रहे हैं। इस अग्निपूर्ण संसारमें सभी कुछ जल ही जल रहा है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसे ठंडा पाकर कहीं चिमटकर बैठ रहे।

❀ ❀

फिर इस आगसे कौन रक्षा करेगा ?

किन्तु दूसरी तरफसे रक्षा करनेवालेका प्रश्न है क्या तुम इस आगसे रक्षा, बचाव चाहते भी हो—इस आगसे बचनेकी इच्छा भी कर सकते हो या इच्छा करनेका भी सामर्थ्य नहीं है।

जो कुछ भी समझदार हैं वे तो बारबार आगमें अपने अंग जलाकर समझ जाते हैं कि यह चमकीली वस्तु जलादेने वाली है और फिर इससे सदा बचकर रहते हैं। उनके लिए तो वह दिन धीरे २ आजायगा जब कि वे इस दाह और जलनके देशसे बाहर हो जायंगे। किन्तु उन पतंगोंकी कौन

रक्षा करे जोकि जल मरने हीके लिए पैदा होते हैं—जोकि आगको देखते ही दूर२से उसमें भस्म होनेके लिए वेगसे खिंचे चले आते हैं और यदि कोई उनकी रक्षाके लिए मार्गमें बाधा खड़ी करता है तो वे उसी पर टकरा २ अपनी जान खो देते हैं किन्तु उधर जानेसे नहीं रुकते। क्या आप प्रतिदिन कामाग्निमें जलकर भस्म होनेवाले पतङ्गोंको नहीं देखते? क्या आप प्रतिदिन क्रोधाग्निमें लाल अंगारे हुए २ इनको नहीं देखते? क्या लोभकी आगमें जल मरोंको नहीं देखते? क्या मोहाग्निकी दारुण जलनसे व्याकुल क्रन्दन करते हुए प्राणियोंको नित्य नहीं देखते? इन्हीं नाना प्रकारकी विषयाग्नियोंमें न जाने कितने पतंगें प्रतिदिन भस्म हो रहे हैं किन्तु आगको जलना देखकर रुक नहीं सकते—वे रुकनेकी इच्छा ही नहीं कर सकते।

हे जगत्पिता सर्वशक्तिमान्! इनकी रक्षा करो।

यदि इस सीधा मौतके पास पहुँचानेवाले असाध्य रोगका निदान जानना हो तो महाराज मनुका आदेश सुनो। वे बताते हैं कि यह तो अज्ञान है जिसके वशमें आकर प्राणी इन अग्नियोंमें नाना आहुतियां डालने लगते हैं जिससे कि ये तृप्त होकर अपनी ज्वाला छोड़ दें। किन्तु हवि पाकर ये 'कृष्णवर्त्मायें' और भड़कती हैं और उनको समाप्त करके ही तृप्त होती हैं उनका केवल यह काला अवशेष छोड़ जाती हैं।

* *

आग अपने आपमें कोई बुरी वस्तु नहीं है। आग तो हमारे चूल्होंमें जलती है और हमारा भोजन पकाती है। यह कुण्डमें जलती हुई पवित्र अग्नि "आग लग गई आग लग गई" कहकर बुझाने योग्य नहीं होती। सूर्य नामक महाऽग्नि पिण्डकी आँच हमें जीवन शक्ति ही प्रदान करती है। अग्नि तो इष्टदेव है, जीवन है, प्राण है। किन्तु यहां तो बात ही और की और हो रही है। वही अग्निदेव हमारे छप्परपर विराजमान घर फूंक रहे हैं—हमारी सब वस्तुयें, वस्त्र, देह जलाये जा रहे हैं। यही कृत्रिम आग है जोकि बुझाने योग्य है, जो कि हमारा नाश कर रही है जोकि देखते २ संसारमें दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती चली जा रही है, जिसमें कि संपूर्ण संसार स्वाहा हुवा जा रहा है। वह हमारी स्वाभाविक जीवनप्रद अग्नि तो इस बढ़ी हुई सर्वतोव्यापी आगमें बिलकुल अनुभव ही नहीं होती कि यह कहीं है भी वा नहीं। वह इन्द्रियोंका स्वाभाविक तेज, वह हमारे उदरोंमें जलनेवाली (चतुर्विध अन्न पकानेवाली) वैश्वानर अग्नि दिन प्रतिदिन मन्द और नष्ट होती जाती है, ज्यों २ यह कृत्रिम आग हमारा सब कुछ जला मारनेके लिए भयंकर रूपमें सब कहीं वेगसे फैलती जारही है।

❀ ❀

और तो और इस संसारके एक बड़े जन समुदायका सिद्धान्त ही यह है कि खूब नयी २ आगें लगाओ जिससे कि (उनके बुझानेके लिये) बहुत २ आविष्कार होवें। फलतः

खूब आगें लगायी जा रही हैं और खूब नये अविष्कार हो रहे हैं, नयी २ आग बुझाने की कलायें और यन्त्र बनाये जा रहे हैं। यह सच है कि ये सब आविष्कार प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूपमें इन कामनाग्निओं को बुझानेके प्रयोजनसे ही किये जा रहे हैं। अब पानीके (पुराने ढंगके) स्थान पर आग बुझानेके लिये सब कहीं नवाविष्कृत शराबों का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आप आश्चर्य न करें कि दियासलाइयाँ (जिन्हें की जहाजों पर लाद कर दूसरे देशोंमें स्पर्धाके साथ भेजा जा रहा है) आग बुझाने ही के लिये हैं। तोप गोले, ४२ सेन्टी मीटरें, बम तथा सिगरेट आदि वस्तुयें आग बुझाने ही के लिये आविष्कृत की गई हैं। पंखे-नहीं नहीं, बिजलीके पंखे-आग बुझानेहीके काम आते हैं। मट्टीका तेल तथा स्पिरिट आदिका स्थान २ पर प्रयोग आग बुझानेके ही प्रयोजनसे हो रहा है।

❀ ❀

ये ही दो चार वस्तुयें नहीं किन्तु असंख्यों प्रकारकी सामग्रियाँ इस प्रयोजनके लिये आविष्कृत की गई हैं, जिन्हें कि लाखों मनुष्यों की सुसंगठित (Organized) मंडलियां और इनके विशाल कारखाने इनमें तय्यार कर धड़ाधड़ संसारके सभी कोनों में पहुँचाते जा रहे हैं। यदि कहींके लोग इन्हें नहीं मांगते तो पहले किसी युक्तिसे उनके घरोंमें आग लगा दी जाती है और फिर पर आग बुझानेका सामान उनको भेंट

कर दिया जाता है। इस प्रकार वे भी इस नये सिद्धान्तमें दीक्षित हो जाते हैं और आविष्कारोंके लिये आगे बढ़ाना जान जाते हैं। दूसरी तरफ 'नई सभ्यता' का प्रचार असभ्योंकी आग बुझानेके लिये नाना रूपोंमें बड़े वेगसे किया जा रहा है।

यही नहीं, योरोप की कई जातिओंने तो पूर्वीय लोगोंकी आग बुझाने का सारा ठेका ही हाथोंमें स्वयमेव लेलिया है। वहाँके लोग तो चिल्ला चिल्ला कर कहते है 'अब हम अपनी आग स्वयमेव बुझालेगें, बस करो, हम तो बिलकुल ठंडे ही हुये जाते हैं' किन्तु ये लोग कहते है "नहीं अभी तुममें कुछ गर्म्मी बाकी है" और अपने आग बुझानेके इस महायन्त्रकी चर्खी घर बैठे घुमाये चले जाते हैं।

❀ ❀

इन 'युगपरिवर्त्तक' आविष्कारोंके साथ साथ आग भी बढती जाती है और इनसे जलता हुआ सारा युग इस तरह भी बदलता जाता है। क्योंकि सिद्धान्त ही यह है कि खूब आग लगाओ। नहीं तो आविष्कार कैसे होंगे। आविष्कार तो स्वयं उद्देश्य हैं किसीके साधन नहीं। यदि ये आग बुझानेके लिये (साधन) होते तो नयी २ आग लगाने की क्या ज़रूरत होती। खूब आविष्कार बढ रहे हैं और आग भी प्रचण्ड रूप धारण करके बढती जा रही है। देखने वाले देख रहे हैं कि इसे आविष्कारों और आविष्कृत वस्तुओं सहित सब कुछ

भस्म करती हुई ऊँची ज्वालाओंमें लपटों की विकराल जीभें लपलपाती हुई यह प्रचंड अग्नि सम्पूर्ण संसारको ग्रास करने के लिए आगे बढ़ती चली जा रही है।

❀ ❀

यदि इन बढती आती हुई ज्वालाओंमें जल मरनेसे बचना है तो जाओ कपिल मुनि के शासनमें जाओ, जिनका कि शास्त्र इसीलिये प्रारम्भ होता है कि इन तीन प्रकारके तापोंसे जिनमें कि संसार जला जा रहा है किस प्रकारसे 'एकान्त और अत्यन्त' छुटकारा हो।

अनिश्चित तथा क्षणिक छुटकारे का उपाय तो सब कोई जानता है और इनके बताने वाले बहुतसे दम्भी भी फिरते हैं। देखना, इनको कभी अपना गुरु न बनाना। इनके दमभरमें पार लगानेवाले चुटकलोंकी तरफ़ कभी ध्यान नही देना। ये रक्षा करनेके स्थान पर तुम्हें नरककी जलती हुई भट्टिओंमें ढकेल देंगे। सच्चे गुरु वही हैं जो उन आर्ष उपायों का उपदेश करते हैं जिनसे कि आग 'अवश्य' बुझ जाती है और ऐसी बुझती है कि फिर कभी जल उठने का डर नहीं रहता।

उन आग बुझानेकी दवा देने वाले डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों-के मुँह न लगना जो कि तुम्हें ठग ले जाते हैं—ऐसी गोलियाँ या चूर्ण (Powder) खिला पिला जाते हैं जिससे कि उस समय तो आग बुझती मालूम होती है किन्तु असलमें और न जाने कितनी नयी आगें देहमें पैदा होकर जलाने लगती हैं।

उनके समीप फिर कभी न जाना। सच्चे वैद्य वही हैं जो कि सचमुच ओषधि देते हैं, ओष अर्थात् दाह को पी जाने वाला इलाज करते हैं।

❀ ❀

उन आगके ठेकेदारों को त्याग दो जो आग बुझाने वालों-का वेष धरकर आते हैं और बड़े २ ठाठ खड़े करके ऐसा दिखलाते हैं कि आग बुझाने का बड़ा भारी काम हो रहा है किन्तु असलमें इनकी आड़में अपनी बढ़ी हुई इन्द्रियोंकी अग्नि तृप्त करनेके लिये ईंधन बटोरते फिरते हैं। उन्हें कह दो कि तुम इस श्रेष्ठ कामके बिलकुल अयोग्य हो। जो अपनी चिताके लिये लकड़ियाँ जमा कर रहा है वह थोड़ी देरमें अपनी लगाई आगमें जल मरने वाला दूसरों को आगसे क्या बचायगा। सच्चे आग बुझानेवाले वही हैं जिन्हें कि स्वयं कोई आग नही सता रही—जो स्वयं सब प्रकारसे शान्त हो चुके हैं। वेही आग बुझा सकते हैं और बुझा रहे हैं। यह उन्हीं के केवल करुणा प्रेरित कर्मों का फल है कि यह संसार अभी तक बचा हुआ है, नहीं तो न जाने कबका यह इस प्रचण्ड आग में जल कर राख हो गया होता।

❀ ❀

उन सब लोगोंसे बचकर रहो जो कि आगमें प्रचण्ड जल रहे हैं किन्तु आग बुझाने का ढँढोरा पीटते हुए तुम्हारे पास बिना बुलाये आते हैं। ये न जाने कितनोंको झोंपड़ियाँ फूंक

चुके हैं और फूंक रहे हैं। इनसे बचकर रहो, विशेषतः उन बड़ी सामर्थ्य रखने वालोंसे जो जैसी आग चाहते हैं भड़का देते हैं। सब निर्बल पुरुष उसी आगमें 'भर भर तड़ तड़' जलने लगते हैं। इन आगके खिलाड़ियों से बच कर सँभल कर रहो। इनकी आग देख कर रंग मत पकड़ो किन्तु अपनी शक्तिओं का उपयोग लो।

अपने आप आग लगानेसे बाज़ रहो। अरणी लकड़ियां बने हुए आपसमें रगड़ कर मुफ्तमें आग न लगा बैठो। और यदि कोई दूसरा आदमी आग फैलानेके लिये तुम्हारे घरमें अंगारे फेंकता है तो उन्हें तुरन्त प्रेम जलसे बुझा दो या कमसे कम आवेगोंकी फूंक मार कर (या बढ़े आवेगोंके पंखे चला कर) इन्हें सुलगने मत दो।

❀ ❀

जलते हुए संसारसे सम्बन्ध तोड़ कर अलग खड़े हो जाओ और पहिले बैठ कर अपनी आग बुझालो। ज्यों २ यह कृत्रिम आग बुझती जायगी त्यों २ तुम्हारा अपना स्वाभाविक तेज प्रकाशित होता आयगा। आग बुझाते जाओ जबतक कि अग्नि-सिद्धि न प्राप्त हो जाय (Fireproof न बन जाओ) जिससे कि फिर कोई भी संसारकी आग तुम पर असर न कर सके। यह निःसंदेह है कि अपनी सब आग शान्त हो जाने पर फिर सिवाय परोपकारके, दूसरोंकी आग शमन करनेके और कोई काम नहीं रहता।

❀ ❀

सदा आग पैदा करनेके ही काममें लगा रहता है। बाहर तुम्हारी वृष्टिमें बिहार करने वाले 'अनिकेत' महात्मा ऋषिगण बेशक कहते हैं कि सब जगह आनन्द ही आनन्द बरस रहा है, किन्तु हम उनका कैसे विश्वास करें। कभी २ जब हम ज्वलन पीड़ासे भाग कर अपने मकानके झरोखोंके नीचे जा खड़े होते हैं तब हमें भी तुम्हारे उन जलकणोंकी शीतलता अनुभव होती है। किन्तु वहाँ कब तक खड़े रहें। हमारी पैदा की हुई प्यारी आगें हमें फिर बुलाती है। जलते हैं और भागते हैं, इस प्रकार क्षण क्षणमें इधरसे उधर बेचैनीमें फिरते हैं किन्तु बन्द मकानसे निकल नहीं सकते। यह सब तरफसे पक्की तौरसे बन्द है जिससे कि 'कोई दूसरा न आ सके'। क्या बाहर निकलनेके लिये इसे कहींसे तोड़ डालें? हा, यह तो 'मेरा' मकान है। और अब यह हमसे टूट कैसे सकता है? हम अपने इन स्वार्थताके मकानोंको दिनदिन दृढ़ पक्का बनाते गये हैं और स्वयं निर्बल होते चले गये हैं। वे ही धन्य हैं, जिनके कि अहंकारके मकान अभी कच्चे हैं, जिनकी छतें पक्की पटी हुई नहीं है। वहाँ तो यह संभव है कि तुम्हारी अनवरत होनेवाली वृष्टिमें वे चूने लगें और अन्दर की आग बुझ जाय और धीरे २ मकान ही ढय जांय। किन्तु हमारा क्या होगा? हे बरसने वाले! तुम्ही इतनी ज़ोरसे बरसो कि इनकी नीवें हिल जायें, ये पक्केसे पक्के मकान भरभरा होकर बाहरकी तरफ गिर पड़ें। निर्बल यही प्रार्थना

कर सकते हैं। नहीं तो फिर अन्तमें जब कि ये अग्नियाँ बढ़ती हुई इस मकानको ही जला देंगी ऊपर वल्लियोंमें भी आग लग जायगी, और असीम पीड़ा पहुँचाता हुआ यह मेरा सब कुछ अपने आप ढय कर जलता हुआ धड़ाम धड़ाम भूमिसात् हो जायगा (मैं समाप्त हो जाऊँगा या रहूँगा मैं नहीं जानता) तब तो तुम्हारी वे शीतलदायिनी नित्य वृष्टि इस स्थान पर भी निष्प्रतिबन्ध पड़ेगी। पर तब क्या होगा?

हे परमकारुणिक! हमें अपनी इस सदातन सुखवृष्टिके ग्रहण करनेके लिये जितना जल्दी हो अपना महान बल प्रदान करो। कृपा करो। हमारी यह प्रार्थना सफल बनाओ

'सुख की वर्षा करो, आनन्दघन! चहुँओर।'

तरंग १२

तेरी धोखेबाजी !!!

संसारके रचने हारे ! आज मैं तुझे जी भरके धोखेबाज कहना चाहता हूँ। तुझे धोखेबाज़ कह कर पुकारना आज मुझे बड़ा ही प्यारा लग रहा है। मेरे जीका प्रेमभाव प्रकट करनेके लिये इससे अधिक भाव पूर्ण शब्द इस समय मुझे ढूंढे नही मिला। इस तेरे संसारमें धोखे ही धोखे देखकर मैं बड़ा विह्वल हुवा करता था किन्तु आज सब ठीक ही ठीक दीखता है और तुझे धोखेबाज़ कह कर आनन्दमें मगन हूँ।

हे मेरे प्यारे धोखेबाज़ ! मेरे धोखोंसे उद्धारक धोखेबाज़! परमदयालु और दुष्टोंके दलन करनेवाले धोखेबाज़ ! तेरे धोखोंका पार इस संसारमें किसीने न पाया। बड़े २ ज्ञानका अभिमान करनेवाले अन्त तक यही कहते गये कि "अभी तक हम धोखेमें थे"।

✿ ✿

इस संसारमें धोखा देनेवाले लोग (अपने साथीका रुपया मार कर या कोई वस्तु ठगकर) कैसे आनन्दित होते हैं। किन्तु हे धोखेबाजोंके धोखेबाज़ ! इससे पहिले वे तेरे धोखेमें आगये होते हैं। तेरे सर्वत्र फैले (अदृष्ट) जालोंको न देखकर धोखा

जाते हैं कि धोखा देनेसे मेरा क्या बिगड़ेगा। किन्तु धोखे का मनमें संकल्प होते ही मनुष्य इन जालकी तरह फैले सूत्रोंके किसी फेरमें तत्क्षण बंध जाता है जो कि यद्यपि उस समय कुछ भी मालूम नहीं होता किन्तु समय आने पर दण्ड भूमि पर ला खड़ा करता है—इसे कोई भी नहीं रोक सकता।

हम चोरी करते, झूठ बोलते और नाना धोखे करते हुवे ऐसे निशंक फिरते हैं कि जानो कुछ भी नहीं हुवा। किन्तु एक २ स्थान पर जो तेरा अदृष्ट ठप्पा हम पर लगता जाता है उसे कोई भी नहीं देख पाता जिसके अनुसार तेरे दूत देखकर हमें पीड़ा दे जाते और सब कुछ भुगा जाते हैं। बहुत विरले ही आते हैं जो कि तेरे इस धोखेमें नहीं पड़ते—जो कि इन सूक्ष्म तन्तुओंको देखते हैं और किसीको धोखा नहीं दे सकते। ऐ सांसारिक जनों! तुम्हें भी जब कोई धोखा देवे तो उस पर केवल तरस खाओ—उस परम धोखेबाज़को याद करो जिसके धोखेमें वह विचारा आया हुवा है, क्योंकि इस संसारमें जो जितना बड़ा धोखेबाज है वह दीन उसके धोखेमें उतना ही गहरा फंसा हुवा है। उस पर तरस खाओ, वैसा ही बदला लेके अपने आप धोखा मत खाओ।

❀ ❀

तुम हम पर एक धोखेके पीछे देते हो पर कुछ भी मालूम नहीं होता [illegible] रोज ठोकर खाकर तुमसे अज्ञान करते हैं कि यदि कोई ईश्वर है तो हमारे सामने आवे किन्तु तुम अपने अगाध

मौनमें चुप बैठे रहते हो—उनके जीभ और हृदयमें परिपूर्ण रमे हुवे भी चूँतक नहीं करते, उनके सदा 'सामने आये' हुवे भी नहीं दिखा देते कि मैं यह हूँ।

तुम सब जगह सब कुछ हो, संसारके एक मात्र सार हो, किन्तु सब जगह अभावकी तरह होकर बैठे हुवे हो। हम सदा यही समझते हैं कि तुम कभी भी कहीं पर भी नहीं हो। तुमने आँख कान वाला अपना शरीर न धारण कर हमें बड़ा धोखा दे रखा है। तुम हमारा एक एक काम चुपके २ देख रहे हो गुप्तसे गुप्त, अन्धेरीसे अन्धेरी जगह पर तुम पहिले आसन लगाये बैठे हो—हमारे हृदयमें घुसे हुवे हमारा मन जब जिसके विषयमें जो कुछ गुनगुनाता है सब बैठे हुवे सुन रहे हो, किन्तु हे धोखेबाज़! कभी भी मालूम नहीं होता कभी आशंका तक नहीं होती। कभी स्वयमेव बोल भी नहीं पड़ते कि "मैंने देख लिया" "मैं यहां बैठा हूँ"। 'मैं अभी यहांसे नहीं निकला' 'अभी बिलकुल एकांत नहीं हुआ' इत्यादि।

हे परमपूजयनीय धोखेबाज़! मनुष्य किस प्रकार तेरे दर्शन करें।

❀ ❀

तेरे इस संसारमें पापी लोग मौज उड़ा रहे हैं—धन, मान संपत्ति सभी चले आरहे हैं। दूसरी तरफ पुण्यात्मा लोग आपत्तियां झेल रहे हैं—एकके पार उतरते ही दूसरी पहाड़की तरह आ खड़ी होती है। जो लोग अन्यायसे दीनोंको खा रहे

हैं, हे धोखेबाज़ ! तू उन्हें मन माना दे रहा है, उनका बल सामर्थ्य बढ़ा कर और पाप करवा रहा है; कुछ भी नहीं विचार करता कि देखनेवाला संसार क्या परिणाम निकालेगा। और जो सज्जन लोग यम नियमोंके कठिन मार्ग पर चलने लगते हैं, हे धोखेबाज़ ! तू न जाने कब के पुराने रजिस्टर निकाल कर उनके पुरानेसे पुराने हिसाब चुकाने शुरू करता है, कुछ भी तरस नहीं खाता कि दुखोंसे घबरा कर वे फिर कहीं उसी प्रेयमार्ग पर तो नहीं चले जांयगे। तूने संसारको यह ऐसा धोखा देरखा है कि सब मुंह बाये खड़े हैं, कुछ समझ नहीं आता क्या करें। वह दिन जब कि पापका घड़ा भर कर फूटेगा, वह दिन जब कि क्षणभरमें तख़्ता पलटेगा और जहाँ उजाड़ हैं वहां उद्यान खड़े होंगें, वह दिन तूने भविष्यके गर्भमें ऐसे छिपा कर रखे हुए हैं कि कोई भी नहीं देख पाता। सब चकराये फिरते हैं।

लोग देखते हैं कि अन्यायी पुरुष मुक़द्में जीत रहे हैं, लड़ाइयां जीत रहे हैं—विजय पर विजय पा रहे हैं। हे 'सत्य-मेवजयते नानृतं' के आदि उपदेष्टा धोखेबाज़ ! तब यही मालूम पड़ता है कि यह गान किसी जंगली भोले गडरियेकी ही बल-बलाहट है। दूसरी तरफ लोग देखते हैं कि सदाचारी पुरुष अत्यधिक परिश्रम करते हुए भी पेट भर नहीं पाते और भुक्खका मारे हुए जिन्हें लोग उनकी तरफ उँगली उठा २ कर उनके पुरुषार्थहीनता [illegible] करते हैं। हे परम न्यायकारी धोखेबाज़ ! तब

यही मालूम पड़ता है कि इस विश्वमें कोई न्याय नहीं, नियम नहीं, नियम चलानेवाला नहीं।

आहा! तूने संसारको यह कैसा धोखा दे रखा है, कैसा चक्करमें डाला है। उन आड़में रक्खे हुए "ब्रह्मानन्दके सुख" और "नारकीय भट्ठिओं"को कोई नहीं देख पाता। कबीर जैसे देखनेवाले सब चिल्ला चिल्ला कर संसारको सचेत कर रहे हैं किन्तु लोग तेरे धोखेमें ऐसे आये हुए हैं कि बहे चले जारहे हैं कोई नहीं सुनता।

❀ ❀

तेरा नाम सुनकर लोग तुझे ढूँढ़ने निकलते है किन्तु तू सदैव अपनेको आड़में छिपाये रखता है। कहते हैं कि विद्यासे तेरी प्राप्ति होती है इसलिये जो पढ़े नहीं वे पढ़ते हैं—नाना विद्या और कलाओंका अध्ययन करते हैं कि तुझे ढूंढ़ेंगे—कोई संस्कृत भी पढ़ते हैं और दर्शनोंके सूत्रोंसे संनद्ध होकर तेरा पीछा करते हैं, किन्तु हे प्रवीण धोखेबाज़! तू किसीके भी हाथ नहीं आता, कभी किसी कभी किसी झाड़ीके पीछे छिपा रहता है। कोई विज्ञान पढ़ते हैं और अपने नये २ आविष्कारों और कलाओंके बलसे तुझे फांसना चाहते हैं किन्तु उनकी आंखोंमें धूल डालता हुआ कहीं गुम बैठा रहता है। ये मत संप्रदायवाले हैं जो कि सभी तेरे द्वारका 'सीधा मार्ग' बतलाते हैं, किन्तु वैष्णव, शैव, ईसाई, मुसलमान, किसीने भी तुझे कभी लाकर न दिखाया। लोग नयी नयी आशाओंसे

सनातनधर्मी या आर्यसमाजी बनकर तुझे देखने खड़े होते हैं किन्तु तू फिर किसी और ओटमें आया हुआ दिखाई नहीं देता। प्रायः सभी एक स्वरसे कहते हैं कि एक योगका साधन है जो कि इस साध्यके लिये अमोघ है किन्तु जब चेले लोग नेति धौति करने लगते हैं, बड़े श्रमके बाद प्राणायाम लगाने लगते हैं तब भी तू अंगूठा ही दिखाता रहता है। नाना प्रकारके मंत्र, यंत्र, जप, तप भी तुझे फुसलाकर काबू नहीं कर सकते। तू हमेशा किसी भावमें प्रच्छन्न ही रहता है।

हमारे साथ यह आंखमिचौनी (लुकलुकइय्यां) का खेल तू न जाने किस समयसे खेल रहा है—हम ढूढ़ते फिरते हैं और तू छुपता फिरता है। न जाने धोखा दे दे कर सदा लुके रहनेमें तुझे क्या आनन्द आता है कि कभी भी नहीं मिल जाता—दृष्टिगोचर नहीं हो जाता, यद्यपि हम जानते हैं तू कहीं पर भी मिल सकता है। और जिसे मिलना होता है, फिर वह चाहे निरक्षर हो या किसी भी मतका अनुयायी न हो, उसके सम्मुख प्रगट होकर स्पष्ट बता देता है कि मैं तुझे मिला हुआ हूँ।

* *

तुझ निराकार भगवानने यह इतना साकार जगत रच रखा है। तू सबको खिलाता रहता है किन्तु स्वयं कुछ नहीं खाता इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तूने हमारी आँखें बाहरकी तरफ लगायी हैं, जिससे कि हम सदा बाहरकी तरफ ही झांकियां झांकते रहते हैं किन्तु

कभी अन्दरके ख़ज़ानेको नहीं देख पाते इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी सृष्टिमें बड़े वेगसे गतिमान् वस्तुयें स्थिर मालूम होती हैं। तूने सब कुछ दिखाने वाली प्रकाशकी किरणोंको अदृश्य बनाया है इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी सृष्टिमें जो हमारे सच्चे हितैषी हैं वे हमें शत्रु मालूम होते हैं। तूने स्वार्थियोंको मीठी, फुसलाने वाली वाणी दी है। इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तूने ऊपर चढ़ना कठिन बनाया है और नीचे गिरना सहज। तूने उत्कृष्ट फलोंको बड़े कड़े छिलकेमें बन्द रखा है। तूने विना पिछली जगहको त्यागे अगली जगह जाना असंभव बनाया है इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तूने आग जैसी मनोहर चीज़को अंगुली जला देनेवाला बनाया है। तूने गुलाबके चारों तरफ कांटे लगाये हैं। तूने सांप जैसे सुन्दर प्राणीके मुंहमें विषकी थैलियां रखदी है इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी धोखेबाज़ियों पर मैं और अधिक इशारे नहीं करना चाहता। बस इतना कह देना पर्याप्त है कि संसारमें जो भी कुछ सचाई है उसे तूने 'हिरण्यमय पात्र' से ढक रखा है इस लिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

❀ ❀

हे संसारके सृजनहारे! तुम सर्वविध मायाओंसे रहित

हो, परम विमल हो। किन्तु मैं जिस अपने संसारमें रहता हूँ वह अवश्य धोखेकी टट्टी है—इसमें जो कुछ जैसा है वैसा नहीं मालूम होता। इसमें रहते हुवे मुझे तुम्हारे विमल गुणोंको गानेके लिये भी धोखेके शब्दोंके सिवाय और शब्द कहाँसे मिलें।

बड़ी मजेदार बात यह है कि धोखेके हट जानेपर ही जान पड़ता है कि यह धोखा था—धोखेके समयमें नहीं। हम अपनेको धोखेमें नहीं जानते इसी लिये हम धोखेमें हैं। यह 'न जानना' ही हमारे सब धोखोंका वास्तविक कारण है। इसलिये, हे सृष्टिकर्त्ता, जो तुझे सचमुच ही धोखेबाज़ (ही) जान लेता है तो तुम धोखेबाज़ कहां रहते हो। हे स्वयंप्रकाश, परम विशुद्ध ज्योति! तुम्हारी निर्मल प्रभा ज्यों २ हमें कुछ मिलती जाती है त्यों २ मालूम पड़ता जाता है कि यह धोखा है यह धोखा है। हे पावन सूर्य! इस प्रकार जो पुरुष तुम्हारी उद्धारक पवित्र रश्मियोंका सहारा लेते हैं वे दिन दिन अधिक २ प्रकाशित जगत्में रहने लगते हैं और अन्तमें तुझ ज्योतिको प्राप्त होते हैं। फिर उनका संसार धोखेका नहीं रहता। संसारके वे स्थूलसे सूक्ष्म किन्तु कार्यकारण भावमें अटलतासे सुसंगठित वस्तु उन्हें स्पष्ट दीखते हैं। तब न कोई धोखा रहता है न कोई धोखेबाज़, न कोई धोखेमें आता होता है और न धोखा देता।

नग्नता

मैं कब नग्न होऊँगा? ये जो दृश्य और अदृश्य नाना प्रकारके वस्त्र आच्छादन मैंने अपने पर डाले हुवे हैं उन्हें उतारकर कब मैं नङ्गा होऊँगा?। हे प्रभो, हे जगन्मातः! मुझे जल्दी ही नङ्गा कर दो—बिलकुल नंगा कर दो—जैसा मैं माताके पेटसे नंगधडंग पैदा हुवा था वैसा ही कर दो।

❀ ❀

नङ्गा होने में क्या कोई असभ्यता है? क्या कोई लज्जाकी बात है?। कौन कहता है? लज्जा तो कमज़ोरिओंके दीखने की होती है, न कि नङ्गा होने की। हम आवरण इसीलिये धारण करते हैं कि हमारी ये (लज्जाकारक) कमज़ोरियाँ ढक जाँय। निर्दोष अर्थात परिपूर्ण पुरुष होकर नङ्गा रहनेमें कोई नहीं शरमाता।

मेरा कुड़ता जब फटा पुराना होता है तब मैं जरूर ऊपर कोट पहिन लेता हूँ, किन्तु जब यह सुन्दर नया होता है तो कोट उतारकर इस नंगे कुड़तेको सब कहीं दिखाता फिरता हूँ। अच्छी निर्दोष चीज़को कौन ढांपता है।

❀ ❀

यद्यपि मैंने बहुतसे कपड़े आवेष्टन आदि लपेट रखे हैं, तथापि स्वरूपतः मैं नग्न ही हूँ। इन सब आवरणोंके अन्दर यदि देखा जाय तो मैं सदा अपनी अचल नग्नतामें स्थिर मिलूँगा।

मैं तो सर्वथा नग्न हूँ। जिसे लोग नङ्गा कहते हैं वह कुछ नङ्गा नहीं। इस नंगे देह की अवस्थामें तो मुझपर कई प्रसिद्ध २ खोल (कोश) चढ़े होते हैं। इन चार या पाँच खोलोंके भी भीतर मैं हूँ—नितान्त निरावरण, केवल होकर वर्त्तमान हूँ। यही मेरी अभीष्ट नग्नता है। इसी परम नग्नतामें मैं विश्वमाता के गर्भसे बाहर हुआ था।

❀ ❀

प्रायः जब मुझे वस्त्र नया २ मिलता है वह बड़ा सुन्दर मुलायम होता है। इसके कारण बहुतसे लोग मुझसे प्रेम करते हैं; मैं भी इसके घमण्डमें रहता हूँ और बहुत से कर्त्तव्य कार्य नहीं करता कि कहीं यह मैला न हो जाय। किन्तु धीरे धीरे साठ सत्तर बरसमें यह पुराना हो जाता है, सौन्दर्य जाता रहता है, यह सलवटोंसे भर जाता है। तब लोग इसे देख हँसते हैं। यह वही है जिसपर लोग कभी मुग्ध रहते थे। और अन्तमें जब रोज २ टाँके लगाते और सिलाई करते भी नहीं चलता तो—यद्यपि अब भी छोड़नेको जी नहीं करता—प्रकृति मेरे इसको उतारकर नया वस्त्र दे देती है।

जिस 'पैटर्न' का वस्त्र मेरे अनुकूल होता है वैसा ही मुझे मिलता है। यद्यपि सभी वस्त्र पाँच प्रकारके सूत्रोंसे बने हैं

किन्तु ये बनावटमें लाखों प्रकारके हैं। मुझे कभी ('कौड़ी' नामक) छोटा, कभी बहुत बड़ा (कुंजराख्य), कभी एक तरफको लंबा ('ऊँट' कहाता है), कभी चौड़ाई रहित (गंडोया) और कभी (भेड़ नामक) ऊनी वस्त्र—जिस प्रकारके 'फैशन' की तरफ पिछले दिनों मैं बह गया होता हूँ उसी फैशनका (अंग्रेजोंकी भाषामें कहें तो कभी cat fashiou, कभी Dog fashion, कभी Eliphant or Cammel fashion का) वस्त्र मुझे मिलता रहता है।

❀ ❀

कोई भी बुराई नङ्गी नहीं रह सकती।

शरीर निर्बल है तो वस्त्रोंमें ढांप दिया जाता है। बदसूरती रहती है तो उसे ढांपनेके लिये आभूषण और सजावट कर देते हैं। नेत्र निर्बल होते हैं तो उनपर चश्मा लगा देते हैं। बाल पक जाते हैं तो काला रोगन चढ़ा देते हैं। मुख निस्तेज हो जाता है तो 'पाऊडर' से ढांप देते हैं। शरीर निर्जीव हो जाता है तो कफनसे ढांप देते हैं। और पाप किये जाते हैं तो उन्हें असत्यतासे आवृत कर देते हैं।

एवं निर्बल आत्मा नग्न नहीं रह सकता और एक खोल अपनेपर ढक लेता है। किन्तु यह खोल भी निर्बल हो जाता है तो उसके बचाव के लिये उसपर दूसरा खोल चढ़ा लिया जाता है। एवं खोलों पर खोल चढ़ने लगते हैं। इसी प्रकार हमने अपने पर ये पांच कोश चढ़ाये हैं। (एक स्थूल दृष्टान्तसे

देखिये कि हम इस स्थूल देहके धड़पर ही बनियान; कमीज़, वास्कट, कोट, ओवर कोट, या गाउन, ओढ़ना, पर्दा आदि एक पर एक आवरण चढ़ा लेते हैं)

❀ ❀

और जैसे विद्युत ऊपरी पृष्ठ पर आ जाती है, इसी प्रकार से अहंकार रूपी आत्मा हमारी ऊपरी२ खोलपर आ रहती है।

आत्माने अपनी रक्षाके लिये पाँच शरीर रूप आवरणोंको धारण किया तो आत्मा इस अन्तिम स्थूल देहमें आ गया। अब हम इसे ही अपना स्वरूप (आत्मा) मानकर इसीकी पूजा करने—इसे 'चन्द्रमुखी' और 'पीयर' साबुन तथा विविध तैलादिकोंसे साफ सुथराकर वस्त्रोंमें लपेट रखने—में ही आत्म कल्याण समझते हैं।

किन्तु ज्यूं ही निर्बली भूत देहके लिये एक दूसरे आवरण की जरूरत हुई क्योंकि आत्मा वहाँ आगयी। अब चाहे अंदर का देह कैसा रोगोंसे भरा, मरा, बेडौल हो किन्तु ऊपरका कुड़ता कालरदार बढ़िया होना चाहिये, क्योंकि इसका अच्छा होना ही हमारा अच्छा होना है।

फिर जब हम कोट पहिरने लगते हैं तो आत्मा कुड़तेसे निकल कोटमें आ जाता है। अन्दरका कुड़ता महीनोंका मैला या फटा भले ही हो किन्तु बाहर कोट साफ और 'फैशनेबल' चाहिये। इसकी प्रशंसा ही हमारी प्रशंसा है।

एवं हमारे घर [illegible] बूटजूतों, दुकानों तथा मकानके

बाहिरी हिस्से आदि उपरले आवरणोंमें बास करने लगती है और तब हम वह नहीं ध्यान करते कि अन्दर कोढ़ है, मलिनता है, दरिद्रता या पाप है।

❀ ❀

किन्तु ज्यों २ इस प्रकार पहिले २ आत्मभूत खोलके लिये उसपर अगला अगला खोल चढ़ता जाता है, त्यों २ निर्बलता बढ़ती जाती है और हम विनष्ट होते जाते हैं अन्दर का निवासी असली आत्मा नग्नतासे भ्रष्ट हो इन असंख्यों खोलोंमें दबता मुंदता और घुटता जाता है। उसका शब्द इन पाँच बड़ी २ 'गुफाओं'को पारकर हम तक नहीं पहुँच सकता। उसकी स्वाभाविक ज्योति इन पर्दोंमें मन्द होती हुई समाप्त हो जाती है और हम इस अन्धेरेमें अपने आपको ही गुम कर देते हैं—हम नहीं जान सकते कि हम कौन है। इस प्रकार चारों तरफ प्रतिदिन खड़ीकी जाती हुई हमारी इन अहंकार की घनी २ ऊँची दीवारोंके भीतर वह रोज अधिक २ घोर क़ैद में पड़ता जाता है।

क्या इस कठिन कारागारसे उसे मुक्त करनेमें कोई लज्जा की बात है? क्या इन सब आवरणोंको फाड़कर अपने स्वरूप में आ जाना असभ्यताका काम है?

ये सब अज्ञान और निर्बलतायें दूर हो जायँगी, जब हम सब आवरणमलोंसे नग्न अपने विमल रूपमें आ जायँगे, जब

इन सबोंमेंसे अहंकारात्मको निकाल अपने असली आत्मामें केन्द्रित हो जायँगे।

❀ ❀

इन सबसे नग्न कैसे हों?। स्पष्ट है कि किसी प्रकार निचले २ खोलको पूर्ण (पुष्ट) करके ऊपरलेकी अपेक्षा न रख उसे २ शनैः छोड़ते जाँय तो निःसंन्देह अन्तमें हम सर्व-निरपेक्ष, स्वयं समर्थ, स्वयं ज्योति तथा निरावरण स्वरूप निकल आवेंगे। तब हमें कोई आवरण ढांप नहीं सकेगा।

अब आवृत दशामें हम अवश्य कभी कभी माताको स्मरण कर रोने लगते हैं। किन्तु माताको कहाँसे पावें? माता तो निज विनिन्द्र प्रेमपूर्ण आँखोंसे अपने पुत्रोंको हर समय ढूंढ़ रही है, किन्तु हम ही निर्बलताओंके मारे अपने आपको इन खालों और खोलोंमें छिपाये फिरते हैं। माता हमें कैसे पहिचाने? और इसके बिना माता कैसे मिले? जब कभी हम निज माताके सदृश अपने उज्वल तेजस्वी मुखको इन सब खोलोंसे बाहर निकालेंगे तो तत्क्षण अपनेको माताके अंकमें पहुंचा पावेंगे, क्योंकि तब माता अपने लालको तुरंत पहिचान लेगी और तब मुखचूम कर परम सन्तोष देगी जिसे कहीं न पाकर हम व्याकुल भटक रहे थे।

तरंग १४

मेरी यात्रा

यात्रीको विश्राम कहां है ?

मैं अपनी राह पर चलता २ हार नही गया हूं—मेरी टांगें कोई ऐसी थक नहीं गयी हैं। किन्तु जब मेरे प्रिय हितकारी मुझपर तरस खाकर बड़े करुणा भरे शब्दोंमें मुझे विश्राम लेनेकी सलाह देते हुवे कहते हैं कि "तेरा जिस्म बिलकुल निढाल हो चुका है और तेरे हरएक अंगसे थकावटके निशान नज़र आते हैं" तब मैं भ्रममें पड़ जाता हूं और क्षण भरके लिये अपनी दशा ऐसी ही समझने लगता हूं। किन्तु स्वस्थ होकर जब ज़रासा विचारता हूं तो सचमुच मुझे अपने (जिस्म) पर कोई करुणा नही आती, किन्तु मुझे तो तब उनके इन करुणा भरे वाक्योंपर रहम आने लगता है। और मैं चुपचाप अपनी राहपर चल पड़ता हूँ।

ऐसी बहकाहटमें आना कभी २ अपनेको भूल जानेसे ही हो जाता है, पर फिर विचार होते ही अपनेमें चलनेकी अनन्त शक्ति अनुभव होने लगती है और तब मेरा उत्साह कोई भी वस्तु भंग नहीं कर सकती।

भाई ! मैं कैसे विश्राम लूं? मैं तो एक ऐसा अनवरत पथिक हूँ जिस विचारेको अनन्त सालोंसे लगातार बटोही बने रहनेपर भी अपनी राहका अन्तिम छोर कभी भी दिखाई नहीं दिया है। फिर मैं कैसे कहीं बीचमें सुस्तानेके लिये बैठ जाऊं? बिना सड़कके अन्तको पाये मुझे कैसे कल पड़े? । मुझे तो प्रायः संदेह हो जाता है कि यह विस्तृत मार्ग कभी समाप्त भी होगा (या नहीं, जब कि मैं निश्चिन्त हो ठिकाने पर सुख चैनसे बैठूंगा)।

बीचमें आराम लेनेका ध्यान आते ही जी क्यों न घबड़ाने लगे जब कि सामने देखता हूं कि मेरे चलनेके लिये सदैव ही एक न समाप्त होने वाला मार्ग पड़ा हुआ है—विशेष कर जब कि युक्ति और तर्ककी दूरबीनोंसे भी इस सीधे मार्गकी सुदूरवर्ती रेखा कहीं भी खतम होती नहीं दिखायी पड़ती है।

❀ ❀

मेरे भाई पुकार करने लगते हैं, "आज तो आराम कर लो। श्रम और नियम पालन करते २ बहुत देर होगयी। अब तो गद्दोंपर लेटनेका मजा लूटो-आज तो स्वादु भोजन जी भरके उड़ालो—मजेदार गप्पें लगालो—कमनीय वस्त्रोंसे सज लो। तुमने कभी मौजमौज नहीं खाया एकबार इसे तो ठहर कर चखलो। एकबार आनन्द मौज करनेमें क्या बिगड़ जायगा। बहुत नियम पालना भी तो ठीक नहीं है। आजके सुन्दर दिन तो छक कर एकबार आनन्द भोगलो—कुछ घड़ोंके

लिये यह सूखा रास्ता छोड़ यहां छायामें विश्राम करने आवैठो और इस रंगीली गोष्ठीका मज़ा लूटो"। परन्तु जब अपने ठिकानेपर पहुंचनेकी याद आजाती है तो ये मीठी २ बातें भली नही लगती—इनमें कोई रस नहीं आता। तब मैं अपने प्यारे भाइओंको कुछ उत्तर न दे धीरे धीरे आगे पग धरता जाता हूं।

❀ ❀

त्योहार व खुशीका अवसर बड़ी सजधज और महान् समारोहके साथ आता है। सब ओर बड़ी चहल पहल है—शानदार चमक दमक है। वह आनन्द उल्लासका दिन आ पहुंचा है जिसकी बहुत दिनोंसे तैय्यारी और प्रतीक्षा हो रही थी। सब तरफ आनन्द प्रमोदका सामान और सब सजी हुई वस्तुयें यही कहती हुई दिखाई देती हैं "आओ आज आनन्द मौजमें लगजाओ, सब इन्द्रिओंको इसमें खुला छोड़ दो। और सब कुछ भूल जाओ, बस आनन्द"।

पर हा! आज तो यह काम और भी कठिन है। आज हम इसी तरह व्यर्थ समय कैसे गवां सकेंगे। आजके अपने पूज्य नायकको या उच्चसिद्धान्तोंको (जिस संबन्धमें कि यह दिन हम मनाने लगे हैं) याद आकर क्या हमें ऐसे काम करते हुवे बड़ा संकोच और भय न उत्पन्न होगा?। वह हमारा दिवंगत पुरुष अपनी संततिकी यह अवस्था देख रहा होगा। तब तो यह दिन इस प्रकार संयम-हीन और शिथिल होनेकी जगह और भी संभलकर चलनेका बन जाता है।

यदि यह विजयादशमीका उत्सव दिन है तो हमारे असुर-विजेता मर्यादापुरुषोत्तमका गंभीर और दीप्यमान यात्रा-वृत्तान्त स्मरण आ आकर हमें उस दिनके फजूल 'हाहा हूहू' में सम्मिलित होनेसे बार २ रोकता है—उस प्रतापी दिव्य जीवनका क्रियात्मक उपदेश अन्दर कहींसे सुनाई दे देकर अपनी जघन्य दशाके लिये हृदयमे पुनः २ एक सच्ची व्याकुलता का अनुभव होता है। तब उस दिनके उपचारपूर्ण भोजनको मैं किसी प्रकार 'स्वादु' व 'उत्सव भोजन' समझ कर ग्रहण नहीं कर सकता। उस दिनका व्यर्थ समय खोना व्यर्थ समय खोना ही प्रतीत होता है, उसे 'आवश्यक कर्त्तव्यता' का चोला पहिना कर अपनेको धोखा नहीं दिया जाता। न जाने कहांसे बार २ अंकुश लगता है जो आगे चलनेको प्रेरित करता है और सन्मुख विश्राम लेनेकी जगह उसदिन मैं अन्य दिनोंकी अपेक्षा एक आध पग अधिक ही चल लेता हूं।

❁ ❁

हे भुवनपति ! हे मेरे प्रभु ! तुम बड़े दीनवत्सल हो। तुमने [illegible] इस [illegible] तीर्थ यात्राके लिये बड़ा उत्तम प्रबन्ध कर रखा है। लोग मुझे यहाँ डराते हैं कि मेरा रथ छोटा है, और यह टूट कर कहीं बीचमें यहीं ढेर हो जावेगा। परन्तु, हे करुणासागर, मुझे तो [illegible] है कि जब कभी यह रथ [illegible] गिर जायगा, तब मैं कोई निस्साधन नहीं रह जाऊंगा [illegible] अपराध नहीं पाऊंगा,

प्रिय बन्धुओं ! मुझे जिस राहपर जाना है वहाँके लोग तो मेरे इस स्वांगको देख मुझपर हंसी ही करेंगे, मेरी प्रशंसा नहीं करेंगे। इस आमोदसे मेरे रूपमें कोई सौन्दर्य्य नहीं आवेगा। कृपया, इन चीज़ोंको मुझपर मढ़कर मेरी शकल मत बिगाड़िये, मुझे अपने ही स्वरूपमें रहने दीजिये। मैंने जिस तीर्थ पर पहुँचना है उसकी पवित्र वेदीपर तो इन अमेध्य वस्तुओं को किसी प्रकार भी नहीं लेजाया जा सकता है। अतः मुझे खाली हाथ ही वहाँ जानेकी आज्ञा दो। विश्वशासक प्रभुके प्रबन्धका अपमान मत करो। इस पाथेय आदि आडंबर के बिना ही स्वतन्त्रतासे मुझे यात्रा प्रारम्भ करने दो, और निज स्वरूपमें ही अपने अभीष्ट तीर्थपर पहुँचने दो।

❀ ❀

मैंने निश्चयकर लिया है कि मैं अब राहमें चलता २ पक्षियोंके मधुर २ गीतको सुननेके लिये कहीं नहीं ठहरूँगा। सुनूंगा पर इनके लिये ठहरूंगा नहीं। मैं रास्तेके मनोहर दृश्योंको यद्यपि बड़े ही आनन्दसे देखूँगा, किन्तु इनके सौन्दर्य्यपर मुग्ध होकर कहीं पर खड़ा ही नहीं रह जाऊँगा। मैं फूलोंकी प्रिय सुगन्धके लिये हर्षसे ही अपनी नाक खुली रखूँगा, किन्तु उन शोभामय फूलोंको अपने लिये तोड़ लानेकी इच्छासे कभी भी अपनेमें मोह कुछ नहीं रखूँगा।

मैं इन हरे भरे हुए मैदानोंकी हरियाली देख बहुत ही प्रफुल्लित होऊँगा, किन्तु वहांके किसी सौन्दर्य्यका पीछा करनेके

किन्तु इस ब्रह्माण्डकलाके संचालक तेरे अदृश्य हाथ तत्क्षण मुझे एक नवीन तथा उत्तम रथसे समन्वित कर देंगे और इसी प्रकार मुझे रथ पर रथ मिलते चले जायंगे जब तक मैं अपनी यात्रा समाप्त कर अपने तीर्थ पर न पहुँच जाऊंगा। फिर मुझे चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है ? मैं क्यों यात्रा छोड इस रथकी फिकरमें लगजाऊं ? कही ठहर कर इसे व्यर्थ सजाना या इसपर रोग़न करना शुरू करदूं ? यह तो यात्रा करनेके लिये दिये हुवे जैसे हैं तुम्हारे ही रथ हैं। इनका तुम जो चाहो सो करो, तुम ही इनके मालिक और प्रेरक हो। ये सब तरह तुम्हारे हैं।

❀ ❀

मेरे स्नेही संबन्धिओं! तुम नाहकही मेरे पल्लेमे पूरी पकवान बाँध रहे हो। यह बोझा मुझे वेफायदा ही उठाना पड़ेगा। जरा देखो! स्वामी मे अविश्वास मत करो, जिसने निःसंदेह मेरे ही लिये मेरी यात्रा पथके दोनों ओर सर्वत्र फलोंसे लदे हुवे वृक्ष पहिलेसे ही स्वयं लगा रखे है। यह मान लिया कि आप मुझसे बड़ा स्नेह करते हैं किन्तु क्या इसहीके बदलेमें आप मुझे रेशमी कपड़ोंमें लपेटे डालते हैं और बटनों और बंधनों (टाई) से मुझे जकड़े देते है ?

यह जो आपने मेरे हाथों और पैरोंमें गहने फंसा दिये हैं, क्या आपको विदित नहीं कि ये मुझे बोझल बनादेंगे और मेरे राह चलनेमें बहुत ही बाधक होंगे ?

प्रिय बन्धुओं ! मुझे जिस राहपर जाना है वहाँके लोग तो मेरे इस स्वांगको देख मुझपर हंसी ही करेंगे, मेरी प्रशंसा नहीं करेंगे। इस आमोदसे मेरे रूपमें कोई सौन्दर्य्य नहीं आवेगा। कृपया, इन चीज़ोंको मुझपर मढ़कर मेरी शकल मत बिगाड़िये, मुझे अपने ही स्वरूपमें रहने दीजिये। मैंने जिस तीर्थ पर पहुँचना है उसकी पवित्र वेदीपर तो इन अमेध्य वस्तुओं को किसी प्रकार भी नहीं लेजाया जा सकता है। अतः मुझे खाली हाथ ही वहाँ जानेकी आज्ञा दो। विश्वशासक प्रभुके प्रबन्धका अपमान मत करो। इस पाथेय आदि आडंबर के बिना ही स्वतन्त्रतासे मुझे यात्रा प्रारम्भ करने दो, और निज स्वरूपमें ही अपने अभीष्ट तीर्थपर पहुँचने दो।

❀ ❀

मैंने निश्चयकर लिया है कि मैं अब राहमें चलता २ पक्षियोंके मधुर संगीतको सुननेके लिये कहीं नहीं ठहरूँगा। सुनूंगा पर इनके लिये ठहरूंगा नहीं। मैं रास्तेके मनोहर दृश्योंको यद्यपि बड़े ही आनन्दसे देखूंगा, किन्तु इनके सौन्दर्य्यपर मुग्ध होकर कहीं पर खड़ा ही नहीं रह जाऊँगा। मैं फूलोंकी प्रिय सुगन्धके लिये सुंदर ही अपनी नाक खुली रखूँगा, किन्तु उन सौरभमय फूलोंको अपने लिये तोड़ लानेकी इच्छासे कभी भी रास्तेसे नीचे [illegible] नहीं रहूँगा।

मैं इन हरे भरे हुए मैदानोंकी हरियाली देखकर बहुत ही प्रमुदित होऊँगा किन्तु वहाँके किसी सौन्दर्यका पीछा करनेके,

लिये उनको पगडंडियोंके कांटोंमें भटकनेको कभी नीचे नहीं उतरूँगा।

मैंने निश्चय करलिया है कि यदि कोई मेरा परिचित स्नेही राहमें मिलेगा और मुझे कुछ प्रेमालाप करनेके लिये ठहरनेको कहेगा, तो मैं यह निवेदन करके कि 'मुझे मंज़िल पहुँचनेमें अबेर होती है' छोड़कर आगे चल दूँगा। अब मेरा बन्धु व सखा वही है जो कि मुझे आगे चलानेमें सहायक है।

❀ ❀

भाइओ! जीवन पथके यात्रीको चैन कहाँ है? बिना अपने घर पहुँचे हम भटके हुये बालकोंको शान्ति कैसे मिले?। आओ दिन रात, उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते हर समय कमर कसे रहें, हर समय जागते रहें, आगे बढ़नेको सदा सावधान रहें। यहाँ विश्राम और शान्ति ढूँढ़ना व्यर्थ है। पथिकको मार्गमें मज़ा और आनन्द कहाँ है?। आ जाओ, बहुत देर हो चुकी, अब खेलना छोड़ दें और अपने घरकी तलाशमें अनवरत, अनथक परिश्रम करते हुए आगे ही चलते चलें, जब तक कि हम अपने घरकी पावनी ज्योतिर्मयी दिव्य भूमि पर न पहुँच जाँय, जहाँ अनन्त तेज, अगाध शान्ति, अज्ञान चैतन्य और असीम आनन्द हमारा स्वागत करनेके लिये अनादि कालसे हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अदूरदृष्टि (MYOPIA)

आज कल जिधर देखें लोग ऐनक लगाये दिखायी देते हैं। इसका अधिकतर कारण 'अदूरदृष्टि' की बीमारी (Short sight या Myopia की बीमारी) है। इस बीमारीमें मनुष्यको दूरकी वस्तु नहीं दिखलायी देती। भगवान् जाने यह बीमारी दुनियामें सदासे चली आती है या आजकल ही पैदा हुई है, परन्तु यह सच है कि इस समय तो इस बीमारीसे ग्रस्त बहुत अधिक आदमी हैं। इस बीमारीमें ग्रस्त ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो बिचारे गरीब होनेके कारण ऐनक आदि नहीं लगा सकते और इसलिये अपनी इस बीमारीका प्रमाण नहीं देते फिरते।

एक पश्चिमी विद्वान्‌के कथनानुसार हमारे पूर्वज 'असभ्य' लोग भी इतनी दूर तक देखने पाते होते थे कि उन तारों और ग्रहोंको जिन्हें कि आजके 'सभ्य' लोग दूरबीनोंसे देख सकते हैं अपनी नंगी आँखोंसे देखा करते थे और नक्षत्रविद्याके [illegible] ज्ञान रखते थे। इस दृष्टिसे हम विचार करें तब तो आजकल हम सभीका—जिन्हें ऐनकको जरूरत नहीं और जो

अपनी आँखोंको सर्वथा नीरोग समझते हैं–उनको भी 'अदूर-दृष्टि' (Short sight) की बीमारी है।

जैसे कि दूरकी वस्तु न दीखनेकी बीमारी होती है वैसे ही बारीक सूक्ष्म वस्तुके पाससे न दीखनेकी भी बीमारी होती है। इस बीमारीके प्रतीकारके लिये भी वैसे ही लोग बहिर्गोल ताल (Convex lens) की ऐनकें लगाते है या क्षुद्रवीक्षण (खुर्दबीन) आदिका प्रयोग करते हैं।

❀ ❀

यह तो बाहिरी आँखों की बात हुई। परन्तु बाहिरी आँखोंकी 'अदूरदृष्टि' (Myopia) का वर्णन करना मेरा विषय नहीं है। यदि बाहिरी आखें ही सब कुछ होतीं तो भक्त सूरदास, विरजानन्द स्वामी और मिल्टन आदि जैसे अन्तःचक्षु पुरुष संसारमें क्रान्तदर्शी न हो गुज़रते। और हम भी तो अन्दरकी आँखोंसे जितना काम लेते हैं उतना बाहरी आँखोंसे नही लेते। हम अपना एक एक काम, एक एक चेष्टा अन्दरकी आँखोंसे देख कर करते है। अतः अन्दरकी आँखोंमें इस बीमारीका होना जितना हानिकारक होता है, और हो रहा है, उसका शतांश भी बाहरी आखोंमें होने से नहीं। तो जिन विचारोंकी अन्दरकी आँखें दूरतक नहीं देख सकतीं उनकी दशा बड़ी ही दयनीय है। और ऐसे अन्दरसे अदूरदर्शी लोगोंकी संख्या तो संसारमें और भी अधिक है। सारा दुःखग्रस्त और रुदन करने वाला संसार इसी अन्दरकी

अदूरदृष्टिसे ग्रस्त है। दूरकी बात नहीं दिखलायी देती इसी-लिये संसारमें सब रोना पीटना है। क्या कोई इस अदूरदृष्टिके लिये भी अञ्जन दे सकता है? ऐ ऐनकें देने वाले, बड़े 'साइनबोर्ड' वाले नामी डाकृरो! क्या अन्दरकी आँखके लिये भी तुम्हारे पास कोई ऐनक है? यही कहनेको जी चाहता है 'पहिले अपनी दृष्टि ठीक करलो, औरोंको ऐनकें और अञ्जन फिर लगाना'। अदूरदृष्टि कोई बाहिरी आँखोंमें ही नहीं हुआ करती। यह तो बड़ी गहरी बीमारी है। मैं तो आज असली (अन्दरकी) अदूरदृष्टि को इतना फैला हुआ देख कर घब-राया हुआ हूं।

❀ ❀

जब मैं बालक था और चतुर्थ श्रेणीमें पढ़ता था तभी मैं कृष्ण पट्ट पर (ब्लैक बोर्ड पर) लिखे हुये अक्षर नहीं पढ़ सकता था, क्योंकि मुझे बचपनसे ही इतनी अधिक अदूरदृष्टि-की बीमारी थी। किन्तु अपनी यह सारी बीमारी अब मुझे इतनी भार नहीं मालूम होती जब कि मैंने अब यह जाना है कि मैं कामी इसलिये हूं क्योंकि मुझे अदूरदृष्टि है, मैं क्रोधी इस लिये हूं क्योंकि मैं अदूरदृष्टिसे ग्रस्त हूं, मैं लोभी, घमण्डी और ईर्षालु इसलिये हूं क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं सब पाप इसीलिये करता हूं क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं संसारमें पड़ा इसलिये हूं क्योंकि मैं अदूरदर्शी हूं। अब यह भी समझमें आता है कि शास्त्रोंने एक

अपनी आँखोंको सर्वथा नीरोग समझते हैं-उनको भी 'अदूरदृष्टि' (Short sight) की बीमारी है।

जैसे कि दूरकी वस्तु न दीखनेकी बीमारी होती है वैसे ही बारीक सूक्ष्म वस्तुके पाससे न दीखनेकी भी बीमारी होती है। इस बीमारीके प्रतीकारके लिये भी वैसे ही लोग बहिर्गोल ताल (Convex lens) की ऐनकें लगाते हैं या क्षुद्रवीक्षण (खुर्दबीन) आदिका प्रयोग करते हैं।

❀ ❀

यह तो बाहिरी आँखों की बात हुई। परन्तु बाहिरी आँखोंकी 'अदूरदृष्टि' (Myopia) का वर्णन करना मेरा विषय नहीं है। यदि बाहिरी आखें ही सब कुछ होतीं तो भक्त सूरदास, विरजानन्द स्वामी और मिल्टन आदि जैसे अन्तःचक्षु पुरुष संसारमें क्रान्तदर्शी न हो गुज़रते। और हम भी तो अन्दरकी आँखोंसे जितना काम लेते हैं उतना बाहरी आँखोंसे नहीं लेते। हम अपना एक एक काम, एक एक चेष्टा अन्दरकी आँखोंसे देख कर करते हैं। अतः अन्दरकी आँखोंमें इस बीमारीका होना जितना हानिकारक होता है, और हो रहा है, उसका शतांश भी बाहरी आखोंमें होने से नहीं। तो जिन विचारोंकी अन्दरकी आँखें दूरतक नहीं देख सकतीं उनकी दशा बड़ी ही दयनीय है। और ऐसे अन्दरसे अदूरदर्शी लोगोंकी संख्या तो संसारमें और भी अधिक है। सारा दुःखग्रस्त और रुदन करने वाला संसार इसी अन्दरकी

अदूरदृष्टिसे ग्रस्त है। दूरकी बात नहीं दिखलायी देती इसी-लिये संसारमें सब रोना पीटना है। क्या कोई इस अदूरदृष्टिके लिये भी अञ्जन दे सकता है? ऐ ऐनकें देने वाले, बड़े 'साइनबोर्ड' वाले नामी डाकृरो! क्या अन्दरकी आँखके लिये भी तुम्हारे पास कोई ऐनक है? यही कहनेको जी चाहता है 'पहिले अपनी दृष्टि ठीक करलो, औरोंको ऐनकें और अञ्जन फिर लगाना'। अदूरदृष्टि कोई बाहिरी आँखोंमें ही नहीं हुआ करती। यह तो बड़ी गहरी बीमारी है। मैं तो आज असली (अन्दरकी) अदूरदृष्टि को इतना फैला हुआ देख कर घब-राया हुआ हूँ।

❀ ❀

जब मैं बालक था और चतुर्थ श्रेणीमें पढ़ता था तभी मैं कृष्ण पट्ट पर (ब्लैक बोर्ड पर) लिखे हुवे अक्षर नहीं पढ़ सकता था, क्योंकि मुझे बचपनसे ही इतनी अधिक अदूरदृष्टि-की बीमारी थी। किन्तु अपनी वह बाह्य बीमारी अब मुझे इतनी घोर नहीं मालूम होती जब कि मैंने अब यह जाना है कि मैं कामी इसलिये हूँ क्योंकि मुझे अदूरदृष्टि है, मैं क्रोधी इस लिये हूँ क्योंकि मैं अदूरदृष्टिसे ग्रस्त हूँ, मैं लोभी, घमण्डी और ईर्ष्यालु इसलिये हूँ क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं सब पाप इसी लिये करता हूँ क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं संसारमें बद्ध इसलिये हूँ क्योंकि मैं अदूरदर्शी हूँ। अब यह भी समझमें आता है कि शास्त्रोंने एक

स्वरसे 'अदर्शन' या 'अविद्या' को सब रोगोंका महारोग क्यों बतलाया है।

❀ ❀

नौजवानोंको दूरस्थ आने वाला बुढ़ापा नहीं दिखायी देता इसलिये वे जवानी भर बुढ़ापा लाने वाले कर्मोंमें लिप्त रहते हैं और पीछे पछताते हैं।

हिन्दुस्तानिओंको अपना देश नहीं दिखलायी देता। किन्हीं को देश दिखायी देता है तो उसका भविष्य नहीं दिखलायी देता इसलिये वे विदेशी वस्त्र पहिनना या देशके लिये बलिदान करनेसे बचना आदि देश-विघातक कृत्योंको बड़े आराम और बेफ़िकरीसे करते चले जाते हैं।

अत्याचारीको अपनी आने वाली मृत्यु नहीं दिखलायी देती अतः वह उन्मत्त हो अत्याचार करता चला जाता है और किसी की कुछ नहीं सुनता।

प्राणीको अपना आत्मा नहीं दिखलायी देता, वह अमृतको अपने पास रखते हुए भी संसारके दुःखसागरमें डुबकियाँ खाता जाता है।

इस प्रकार संसारके सभी दुःख और दुर्घटनायें हम अपने ऊपर इसलिये ले आते हैं क्योंकि हम दूर तक नहीं देख पाते। इसका क्या किया जाय? विषयोंमें मस्त पुरुषको अपने कर्मोंका परिणाम नहीं दिखायी देता। अदानीको दान देनेमें धन का सर्वोत्कृष्ट सदुपयोग नहीं दिखायी देता। विद्यार्थीको पढ़ाई

में कुछ लाभ नहीं दिखलायी देता। भीरू को देशके लिये मरनेमें कुछ आनन्द नहीं दिखायी देता। आलसीको दूरस्थ परिश्रमका मधुर फल नहीं दिखलायी देता। अंधेको रूप नहीं दिखलायी देता। इसका क्या किया जाय? इसमें इनका क्या दोष? यह सब तो केवल दृष्टिका दोष है।

❀ ❀

जिसको जहाँ तक दिखायी देता है वह उसीके अनुसार और उसी सीमा तक शुभ कार्य कर सकता है, अधिक नहीं। और अन्तमें जिन्हें सब संसार, संसारका सब तत्व, दृष्टिगोचर हो रहा है वे ही संसारका सब आनन्द लूटे जा रहे हैं।

जिन भारतवासिओंको स्वदेश दिखलायी देता है वे दासताकी बेड़ियोंको तोड़नेके लिये व्याकुल हो उठ खड़े होते हैं और अनायास बड़ी २ तपस्या कर उतना ही पुण्यार्जन करते हैं। जिन्हें अपने सूक्ष्म २ दोष भी दीखते रहते हैं वे वेगसे दिनों दिन ऊपर चढ़ते जाते हैं। जिन्हें 'धर्म' या 'आत्मा' दिखलायी देता है वे सुगमतासे मुमुक्षुके पदको प्राप्तकर जाते है। महाबली षड्रिपु भी दृष्टिवाले सुजानके सामने नहीं ठहर सकते। भला जिसे व्यापक सुख दिखलायी दे रहा है उसमें 'काम' कैसे पैदा होगा? जिसे संसारको हिलानेवाला बल सर्वत्र दिखाई देता है उसे क्रोध क्यों सतायेगा? जिसे संसारका परम ऐश्वर्य अनुभव होता है वह लोभ किस वस्तुका करेगा? इसी प्रकार जिसे संसारव्यापक प्रेम, संसारव्या-

पक ज्ञान और संसारव्यापक आत्मा (अपनापन) दिखायी देता है उसमें मोह, मद और मत्सर नहीं पैदा होते। यदि इस तरह दृष्टि सब संसारको देखने लगे तो सब भय दूर हो जाते हैं, सब झगड़े मिट जाते हैं।

पर इतनी दूरदृष्टि, इतनी दिव्यदृष्टि प्राप्त कैसे होवे? अरे, कोई सच्चा हकीम (वैद्य) नेत्राञ्जन दे देवे कि जो सब संसार, सब लोकलोकान्तर (जो कि तारे नक्षत्र दीखते हैं) साफ़२ दीखने लगे, अनुभव होने लगे। कोई कृष्ण (अपना मुंह खोल कर) हमारी आँखोंको दिखला देवे कि भविष्यमें क्या हुवा पड़ा है। आहा! आखें खुल जाँय। आँखोंका परदा हट जाय। दृष्टिकी सर्वत्र गति हो जाय।

❀ ❀

फिर वह आँखोंका अञ्जन कहाँसे मिलेगा? विना सद्गुरुके अन्तःचक्षुओंको और कौन खोल सकता है। यदि किसीको कोई मनुष्य-गुरु न मिलें तो भी कुछ डर नहीं, क्योंकि अन्तमें जो परमगुरु है वह तो एक २ मनुष्यको प्राप्त हुये हुवे हैं और जब चाहें मिल सकते हैं। परन्तु क्या बुद्ध, शङ्कर, दयानन्द, गांधी या किन्हीं अन्य गुरुने तुम्हारे आँखोंमें कुछ उजाला किया है? यदि किसीने भी किया तो केवल अब श्रद्धासे उनके पास बैठना (उपासना करना) ही शेष रहा है। उनसे मिला हुवा ज्ञानाञ्जन दिनोंदिन हमारी आँखोंमें इस तरह ज्योति विकसित करता जायगा कि हम भी आंखें खुल जाने

पर कभी कृतज्ञता भरे भावमें गद्गद हो हृदयध्वनिसे गुरुका स्मरण कर सकेंगे कि—

आचरणसुधामय्या ज्ञानाञ्जनशलाकया,
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

परन्तु यह सब श्रद्धासे ही साध्य है। श्रद्धाके बलसे तो ाष्य गुरुके ही नेत्रोंसे देख सकता है और एवं कभी इन वित्र उपनेत्रोंसे मार्ग देखते और फिर नये ज्ञानाञ्जन सेवनसे पने नेत्रोंको ज्योतिर्मय करते २ ही पूर्णदृष्टि प्राप्त हो जाती । इसलिये श्रद्धा उपासनीया है। यदि सद्गुरु दीख गया है फिर अपने संपूर्ण आपेको उसे सौंप दो, बस फिर बेड़ा पार यही श्रद्धाका मतलब है। श्रद्धासे तो गुरु शिष्यके क्रीत रीदे हुवे) हो जाते हैं। श्रद्धासे ही भगवान् भक्तोंके आधीन यह केवल कहने की बात नहीं है। यह सच है। श्रद्धाको ही ख खोलने वाला कहना चाहिये। जिस विचारेमें श्रद्धा नहीं तो कोई गुरु ही नही मिलते और उसके अन्दर हृदयमें ही 'पूर्वेषामपि गुरु' भगवान् भी उससे बहुत बहुत दूर है। लिये मैं कहता हूँ कि श्रद्धा ही आँख खोलने वाली है।

❀ ❀

पर श्रद्धा आँख मींचनेसे होती है। बाहिरी आंखें मींचनेसे रकी आँख खुलती है। अच्छा होता कि हम अंधे होते। संभवतः हम श्रद्धाकी ही शरण लेते। अब भी तो हमें आँख के जानबूझ कर अन्धा बनना पड़ता है। सब ख़राबी यही

है कि हम न तो पूरे अँधे हैं और न हमें पूरा दिखलायी देता है, किन्तु हमें थोड़ा २ दीखता है। जवानीकी उम्र इसीलिये बड़ी ख़तरनाक है। जवानीमें जब बन्द आँख खुलने लगती है तो वह बालकपनकी अपनी सहज श्रद्धाको छोड़ देता है और समझने लगता है कि मुझे सब कुछ दीखता है, अब मुझे माता पिता व गुरुकी क्या ज़रूरत। पर असलमें उसे बहुत थोड़ी दूर तक दीखता है। यह 'अदूरदृष्टि' की बीमारी जवानी (Young age) में ही हुआ करती है। डाक्टर भी इसमें साक्षी हैं। बुढापेमें तो आँखों की दशा उलटी हो जाती है, तब दूरकी चीज़ दीखती है और पासकी नहीं दीखती। बुड्ढे लोग चिट्ठीको दूर रखके पढ़ते हैं, परलोककी या दूर पुराने ज़मानेकी बातें करते रहते हैं। उन्हें पासकी चीज़ कम दिखलायी देती है। ये बुड्ढे जवानोंको कोसते हैं और जवान (दूसरी तरहकी आँखोंकी बीमारीसे ग्रस्त हुवे) इन बुड्ढों पर हँसते हैं। पर ये ही जवान जब बुड्ढे होते हैं तो उस समयके जवानोंको समझाने लगते हैं और वे जवान भी इनकी जवानीकी दशाकी तरह ही इनकी बातें नहीं समझते। इसी तरह यह आँखोंकी बीमारीका मारा हुवा अन्धा संसार लुढ़क रहा है। इसमें बिरले ही ठीक दृष्टिवाले हैं। इसलिये धन्य हैं वे जवान जिन्हें जवानीमें अदूरदृष्टिकी बीमारी नहीं होती क्योंकि बुढ़ापेमें भी उन्हें 'पास न दीखनेकी' बीमारी नहीं होती। धन्य हैं वे जवान जिन्हें जवानीमें श्रद्धा परित्याग नहीं कर जाती और इसीलिये

बुढ़ापेमें भी उनकी स्वस्थदृष्टि ठीक तर्क करने योग्य बनी रहती है। ऐसे स्वस्थदृष्टिवाले वृद्ध पुरुष ही संसारके सच्चे नेता होते हैं। और तो केवल अपने साथ औरोंको भी भटकाते रहते हैं। सच्चे नेताका लक्षण यही है कि जिसे अपनी जवानीमें 'अदूरदृष्टि' की बीमारी नहीं लगी, जिसने जवानीमें शिष्यता और श्रद्धाको नहीं छोड़ा। वह वृद्ध पुरुष सच्चा नेता है। वही गुरु है। वही स्वस्थदृष्टिवाला संसारको ठीक रास्ता दिखला सकता है।

❀ ❀

संसारके सब महापुरुष दूरतक देखने वाले हुवे हैं। उनकी दूरतक देखनेकी शक्तिने ही उन्हें स्वभावतः 'महान्' बनाया है। जो भविष्यको दूरतक देख सकते हैं वे इतने बड़े व्यापक कर्म करते हैं कि उतने भविष्यको वे अपने कर्मसे व्याप्त कर लेते हैं, अतः वे उतनी दूर तक जीवित बने रहते हैं। बुद्ध भगवान् आज भी ज़िन्दा हैं, त्रेता द्वापरके राम और कृष्ण आज भी जिन्दा हैं। इसलिये क्योंकि इन्होंने दूर तक देखा था और उसे कर्मसे व्याप लिया था। ये लोग और न जाने कब तक जीवित रहेंगे। इतना कहा जा सकता है कि ये वहाँ तक जीवित बने रहेंगे जहाँ तक कि इन्होने दृष्टिप्रसार किया था।

इसके विपरीत हम जैसे जो साधारण लोग हैं वे अपने आस पासके वर्त्तमानको ही देख सकते हैं (भविष्य दूरतक नहीं देख सकते और अतएव मुँह फेरकर भूत पर भी दूरतक

निगाह नहीं दौड़ा सकते)। वे जैसे तैसे अपने उस वर्तमानमें ही ज़िन्दा रहते हैं और आने वाला भविष्य उन्हें मार जाता है। इस तरह काल सब संसारको खाता जा रहा है। इसमें वे ही बचते हैं जिनकी दृष्टि दूरतक जाती है। यह ठीक है कि भविष्यके देखने वालोंको वर्तमान काल अपनी तरफ़से बड़ा कष्ट पहुँचाता है, परन्तु वह मुमूर्षु वर्तमान उन तपस्वियोंका क्या बिगाड़ सकता है? वह तो थोड़ी देरमें स्वयं ही अपनी मौत मर जाता है। और यद्यपि वर्त्तमानको ही देखने वाले आम लोग वर्त्तमानमें बड़े आनन्दसे रहते दीखते हैं परन्तु आने वाला कल उन भीरुओंको मार जाता है, वर्त्तमानके साथ वे भी समाप्त हो जाते हैं। इसलिये दूरतक देखना चाहिये। जितनी दूरतक होसके उतनी दूरतक देखना, सूक्ष्मतामें भी दूरतक देखना चहिये। काल यही कहता चला आ रहा है कि दूरद्रष्टा बनो। हे भारत वासियों! दूरद्रष्टा बनो, नहीं तो खाये जाओगे। हे मनुष्यों! हे समाजों और संघों! हे राष्ट्रों! अपने लक्ष्यको ऊँचा कर उतनी दूरतक देखो, अपने कार्यक्रम दूरतक देख कर बनाओ। दृष्टि को विशाल करो। यही संसारमें जीने की शर्त है। अमर होनेका मार्ग यही है। जो जितनी दूरतक देखेंगे वह उतनी देर जीयेंगें।

द्राघीयाँसमनुपश्येत पन्थाम्।

तरंग १६

निराले आदमी

यह कौन है जो कि दिन दोपहर सोया पड़ा है? अब जब कि 'सभ्यता' का दोपहर चढ़ा हुवा है, सब अपने अपने कार्यमें ज़ोर शोरसे लगे हुए हैं, तब यह कौन एक तरफ चुपचाप पड़ा है? संसारमें तो सब तरफ चहल-पहल है, बाज़ार भरे हुए हैं, लोग अपने २ दफ़्तरों और कारखानोंमें कार्यव्यग्र हैं; एंजिन शोर कर रहे हैं, मोटर दौड़ रहे हैं, तार खटक रहे हैं, टेलीफोन बोल रहे हैं, एवं अन्य सैकड़ों प्रकारकी अचेतन मैशीनें भी चल रही हैं (बल्कि लोगोंको चला रही हैं), तब यह कौन है जो कि एक तरफ निश्चेष्ट हो आंख मीच कर बैठा है?

कोई कहता है कि ये 'योगी' हैं और इनके पास इनके जागने की प्रतीक्षामें श्रद्धासे बैठ जाता है।

कोई कहता है कि ये 'महात्मा' हैं और इनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर चला जाता है।

कोई कह जाता है कि इन अकर्मण्य लोगोंने ही भारतवर्ष का नाश किया है।

कोई कहता है कि यह दुनियांमें व्यर्थ जीता है।

और कोई कहता है "ये निराले आदमी हुवा करते हैं। चलो आगे चलें"।

कोई इसे पागल समझकर छोड़ जाता है।

इस प्रकार भिन्न २ लोग अपनी दृष्टिके अनुसार ऐसे लोगोंको भिन्न २ भाव से देखते हैं और इनके भिन्न २ नाम रखते हैं। पर आओ, आज हम भगवद्गीताके शब्दोंमें सुनें कि ये लोग 'संयमी' हैं और 'पश्यन् मुनि' हैं। "ये लोग संयमी होकर वहां जागते जहां कि अन्य सब लोग पड़े सो रहे हैं और पश्यन् मुनि (अर्थात् देखते हुए चुप, चेतन होते हुए-पूर्ण चेतन होते हुए भी-जडवत् बने हुए) होकर ये लोग वहां सोते हैं जहांकी सब दुनियां जागती है"

(१) या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
(२) यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

परन्तु आश्चर्य यह है कि हम लोगोंको यह (दूसरी) पिछली बात ही दिखायी देती है कि ये सो रहे हैं जब कि हम जाग रहे हैं, किन्तु पहिली (मुख्य) बात नहीं दिखलायी देती कि जहां ये जाग रहे हैं वहां हम प्रगाढ़ सोये पड़े हैं। इसलिये व्यर्थ ही हम इनके सोने पर विस्मित या दुःखी होते हैं और उस लोकको जाननेका सौभाग्य नहीं पा सकते कि जिस उस लोकमें जागनेके लिये ये लोग इस लोकसे आंखें मीचे हुए हैं। हे संसारी पुरुषो! उस दिव्य-लोकको जाननेकी

इच्छा यदि तुम्हें कभी पैदा होगी तो याद रखो कि उसे पानेके लिये तुम्हें भी ठीक तरह सोना सीखना होगा और इन्हींको तरह सोना होगा।

❀ ❀

अस्तु! यह तो हुई पहिले दर्जेके निराले आदमियोंकी बात। इनकी लीला बहुत गहन है। हमारे लिये तो दूसरे, तीसरे दर्जेके मामूली 'निराले आदमी' ही निरालेपनमें काफी हैं। लक्षण सदा यही है कि जब सब सोते हैं तब ये जागते हैं और जब सब जागते हैं तब ये सोते हैं। देखिये। जब संसारी लोग रातके १२ बजे और दो तीन बजे तक नाटक खेल तमाशेमें जागते रहते हैं तब ये लोग 'पूर्वरात्रमें अधिकसे अधिक नींद ले लेनेके लिये' सोये पड़े होते हैं और जब ये संयमी लोग ब्राह्ममुहूर्त्तमें ईश्वराधनके लिये जागे होते हैं तब ये विषयी लोग सूर्योदयके पश्चात् तक भी पड़े सो रहे होते हैं। यह निद्रा—जागरणका एक अति स्थूल रूप हुआ। इसी तरह संसारी लोगका लड़कपन और जवानीके समय भर खेल और विषय भोगमें मस्त सोये रहते हैं जब कि संयमी पुरुष ज्ञानोपलब्धि और शक्ति-संचय करता हुआ इस समय संयमपूर्वक जागता है। इत्यादि प्रकारसे हर कोई ज़रा सूक्ष्मतामें भी देख सकता है कि प्रत्येक ही क्षेत्रमें विषयी और संयमीका निद्रा जागरण उलटा है। किन्तु सब जगह ही ढूंढ़नेसे इस उलटे निद्रा-जागरणका रहस्य यही मिलेगा कि संसारी पुरुष

विश्रामके समयमें (असली रात्रिमें) विषयों द्वारा सताया हुवा होनेके कारण अपने इन्द्रियोंके घोडोंको मार पीटकर चलाता जाता है (इसके बिना उसे चैन नही आती) जिससे कि ये घोड़े कार्यका समय आनेपर (असली दिनमें) इतने निर्जीव और बेदम हो चुके होते है कि बेबस सोजाते हैं और कार्य नहीं दे सकते। एवं सदैव ही ये संसारी लोग विश्रामके समयमें तो अपने आपको थकाते हैं और आगे बढ़नेके समयमें पड़कर सोते हैं, जब कि इससे विपरीत संयमी लोग विश्राम के समय (रात्रि) विश्रामकर पुष्टि और शक्ति प्राप्त करते हैं और दिन आने पर उस शक्ति द्वारा कार्य करते हुवे आगे बढ़ते जाते हैं। इसी क्रमसे संयमी तो दिनोदिन ऊँचे चढ़ते जाते हैं और विषयी लोग इन्द्रियादिकोंको सताकर भी उसी जगह चक्कर लगाते हुवे वहीके वहीं रहते हैं। इस प्रकार दोनों का लोक दिनोंदिन बदलता जाता है, यहाँतक कि इसी धरती पर फिरता हुवा संयमी धीरे २ जिस उन्नत दुनियामें रहने लगता है उस दुनियाँका विषयी पुरुष स्वप्न भी नही ले सकता। अतः इस लोकमें जागने वाला विषयी तो उस लोकके लिये सुषुप्त सो रहा होता है और उसे बिलकुल न जानता हुवा सोरहा होता है, किन्तु उसलोकमें जागने वाला संयमी जो इस लोकके लिये सोरहा होता है वह देखता हुवा—जागता हुवा (स्वप्न)—सोरहा होता है, क्योंकि वह इसलोकको भी जानता

है। यह संयमी और विषयीके सोनेमें अन्तर है। इसीलिये उस उस दुनियाके लिये अज्ञानपूर्वक सोनेवाले विषयीका वह दुनिया नाश कर देती है, पर इस दुनियाके लिये ज्ञानपूर्वक सोने वाले संयमीका यह दुनिया कुछ नहीं विगाड़ सकती। तो फिर 'पश्यन्' होकर विश्रामके समय सोना और कार्यके समय संयमपूर्वक जागना यही 'निराले आदमी' का सूक्ष्म लक्षण है। जो कि इतना संयम कर सकता है कि कार्य कालमें चाहें कितने ज़ोरका, मस्त और मूर्छित कर सुला देने वाला निद्रावेग आवे पर वह सोवे नहीं (उस वेगको रोक सके), और जो विश्रामकालमें ऐसा देखता हुवा सो सके कि निद्रामें भी अपने आपको न भूल जाय (अपनेसे नीचे उतर कर सोवे, निद्राका राज्य 'आतमा' पर न होने देवे) वही 'निराला आदमी' कहाने योग्य है। वही संयमी और पश्यन्मुनि है। अन्य लोग तो जो कि 'विषयी' होकर जागते हैं और 'जडमुनि' या 'मुग्ध मुनि' होकर वेहोश सोते हैं वे मामूली आदमी हैं। इन विषयी और जडमुनि लोगोंसे तो दुनिया भरी पड़ी है। क्या तुम इनसे निराला आदमी नहीं बनना चाहते ?

❁ ❁

तुम कहते हो कि आँखें खोलो और देखो, वे कहते हैं कि आँखें बन्द करो और देखो। तुम कहते हो कि 'आगे बढ़ो आगे बढ़ो', वे कहते हैं 'पीछे हटो और अपने असली केन्द्र पर पहुँचो'। तुम कहते हो 'अधिकार चाहिये, अधिकार', वे कहते

हैं कि जितना जल्दी हो सके 'अवसिताधिकार' होओ। तुम कहते हो 'गुणी बनो, गुणों का संग्रह करो', वे गुणोंके बन्धनों को छोड़ गुणातीत होते हैं। तुम कहते हो 'मिलो, मिलो, जितने अधिक आदमी मिलें उतना अच्छा है', वे कहते हैं 'अकेले-बिलकुल अकेले-होओ, केवलता (कैवल्य) पाना ही मनुष्य का परमोद्देश्य है'।

तुम वीर्यकी अधोगति (नीचे गिराने) में आनन्द समझते हो, वे वीर्यकी ऊर्ध्वगति कर ऊर्ध्वरेता होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त करते हैं। तुम सदा अपना ही स्वार्थ देखते हो, वे सदा दूसरोंका हित देखते हैं; अथवा वे सदा आत्मा (अपने आप) को ही देखते हैं, और तुम अपनेको भूल सदा दूसरोंको ही देखते हो। तुम अनगिनत इच्छायें रखते हो, वे अपनी सब इच्छायें त्यागना चाहते हैं। तुम्हारी आवश्यकतायें पूरी नहीं होने में आतीं, पर उनकी सब आवश्यकतायें ईश्वर पूर्ण करता है।

तुम जिधर जा रहे हो, वे उधरसे लौटे आ रहे हैं। तुम भोगको मीठा समझकर उसके पीछे पड़े हो, वे इसे फीका समझकर छोड़े बैठे हैं। तुम सुखकी तरफ दौड़ते हो, पर सुख तुम्हें मिलता नहीं, वे सुखको दुतकारते हैं और सुख उनके पीछे पूँछ हिलाता हुआ दौड़ा आता है। यही हाल लक्ष्मी, यश तथा सब ऐश्वर्यका है कि ये वस्तुयें उनके पास तो बिना बुलाये आती हैं, परन्तु तुम्हारी जिघृक्षा (पकड़नेकी इच्छा) से डर कर दौड़ती हैं।

तुम पश्चिमकी तरफ जाते हो, वे पूर्वकी तरफ जाते हैं। तुम कहते हो कि संसारका विकाश हुआ है, वे कहते हैं कि संसारका बड़ा ह्रास हुआ है। तुम कहते हो कि ये जो कुछ दिखायी देता है यही सब कुछ है, वे कहते हैं कि जो नहीं दिखायी देता वही सब कुछ है। तुम कहते हो कि संसारमें विना झूठके काम नहीं चलता, वे कहते हैं संसारकी एक २ वस्तु सत्यपर आश्रित है। तुम कहते हो कि खानेसे आयु बढ़ती है इसलिये खूब खाओ, वे कहते हैं खूब खानेसे आयु घटती है।

इस प्रकार यह निरालेपनकी कहानी बड़ी लंबी है। जितना कहता जाता हूँ उतनी बढ़ती जाती है। इसे और कहाँतक कहूँ? बस इतना कह देनाही काफी है कि उनकी और तुम्हारी दुनियाही बिलकुल भिन्न है। इसलिये स्वभावतः उनकी एक २ बात तुमसे निराली है।

❀ ❀

ये निराले आदमी प्रायः सब कालोंमें और सब देशोंमें पाये जाते हैं। पर ये विशेषतया तब प्रकट होते हैं जब कि कोई क्रान्ति आनेवाली होती है। क्योंकि आनेवाली क्रान्तिके सत्यको ये लोग सबसे पहले अपने जीवनमें लाते हैं और अतएव अन्य लोगोंकी दृष्टिमें निराले आदमी नज़र आते हैं। अपने देशमें देखें तो रामके अति प्राचीन कालमें शायद ये निराले लोग 'वानर' बन कर पैदा हुए थे और कृष्णके कालमें 'गोप'

बने थे। बुद्धके ज़मानेमें ये 'भिक्षुक' बनकर पैदा हुये थे और शंकरके साथ 'परिव्राजक' बने थे। अभी दयानन्दके साथ ये "आर्य" बनकर हुवे और आज गांधीके साथ खद्दर पहनने वाले "सत्याग्रही" वन पैदा हुवे हैं।

पहले दर्जेके निराले आदमी वे होते हैं जो अपनी अतुल मनःशक्तिसे सूक्ष्म संसारमें क्रान्ति पैदा कर देते हैं। दूसरे दर्जेके निराले आदमी इस क्रान्तिको पकड़नेवाले होते हैं और इसे चलाते हैं तथा तीसरे दर्जे के लोग इसमें नानाप्रकारसे सहायता देते हैं।

निराले आदमीकी पहिचान क्रान्तिके प्रारम्भमें होती है। क्रान्ति जब हो चुकती है तवतो कुछ भी निरालापन नहीं रहता—नये प्रवाहमें सभी बहने लगते हैं। तवतो सभी अपनेको 'बौद्ध' कहलानेमें अभिमान मानते हैं या 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। अवतो सब कहीं 'नमस्ते' सुनायी देती है और कुछ देरमें सभी दुनिया गांधीके अनुयायिओंसे भर जायगी। परंतु संसार जिन्हें 'निराला आदमी' देखता है और यह उपाधि देता है वे तो वे धन्य पुरुष होते हैं, वे शक्तिशाली ज़िन्दा पुरुष होते हैं जो कि क्रान्तिके प्रारंभके कठिन कार्यको करते हैं।

हे नारायण! यदि मुझे पैदा करना तो निराला आदमी बनाकर पैदा करना। यदि मैं पहिले या दूसरे दर्जेका भी निराला आदमी बननेके योग्य न ठहरूं, तो मुझे तीसरे दर्जेका

ही निराला बनाना, परन्तु मुझ द्वारा 'लकीर पीटनेवालों' की संख्या न बढ़ाना। नहीं तो न पैदा करना मेरी तो यही इच्छा है। हे निराले! मुझे तो निरालापन प्यारा है। दुनिया मुझे निराला कह कर चिढ़ावे यही प्यारा है। तेरी अखण्ड एक रसतामें जो अखण्ड निरालापन है मैं उसका उपासक हूँ। मुझे अपनी इस निरालेपनकी लीलामें ही खर्च करना।

तरंग १७

ज्ञान की प्राप्ति

'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति भूतले।'

मनुष्य, ज्ञानरसको पीनेके लिये लोलुप हो उठता है और प्याले पर प्याले चढ़ाने लगता है। किन्तु कब तक? केवल थोड़े समयके लिए जब तक कि अशक्त हो भूमि पर अचेत नहीं पड़जाता।

सचमुच मनुष्यमें दम नहीं है; रस पीनेकी ऐसी उत्कट इच्छा, जी की, जीमें ही रह जाती है और वह ख़तम हो जाता है; तथा रससे भरा हुआ भांडा वैसाका वैसा ही पड़ा रह जाता है।

❀ ❀

न जाने हम किस अनादिकालसे अपने अज्ञान शत्रुके विजय करनेमें लगे हुये हैं। यद्यपि नये २ सिपाही अपने चमकीले नवाविष्कृत शस्त्रोंको ले फूले नहीं समाते और 'यह लिया वह जीता' करते हुवे गर्वसे सिर ऊँचा कर कह उठते हैं कि 'हम अज्ञान वैरीकी संसारमें छाया तक न रहने देंगे'। किन्तु थोड़ा सा भी अनुभवी योद्धा अपने इन ढीले कमज़ोर

हथियारोंकी असमर्थता जानने लगता है और हारकर मुंहसे यही निकालता है "हम भूलमें रहे, शत्रुकी तो ऐसी अनन्त सेना है जिसका जीतना हमारे हाथमें नहीं है।"

❀ ❀

ज्यों २ कोई जन इस महासमुद्रको तरता है, त्यों २ इसकी अपारता और दुस्तरता बढ़ती जाती है। जितना कोई इसके परलेपारके समीप जानेका यत्न करता है, उतना ही यह सहस्रों गुना अनुपातमें दूर होता जाता है।

तब इसमें आश्चर्य ही क्या है कि संसार जिसे पारंगत या सिद्ध गोताख़ोर समझता है, वह अपने आपको वस्तुतः इस गम्भीर अविलोडित सागरके किनारेकी गीली कंकड़ियां ही चुगता हुवा पाता है।

❀ ❀

सचमुच ज्ञानकी उपलब्धिके लिये, हमारे ये दिन रातके अनथक घोर परिश्रम केवल इसी उद्देश्यसे हैं कि आख़िरकार हम जान सकें कि हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

हमें ये दो दो आंखें इसलिए मिली हैं कि हम प्रत्यक्ष देखलें कि हम अन्धे हैं।

और चारों ओरकी चीजें हमें इसीलिये अपना रूप दिखा रही हैं कि हम समझलें कि उनका वास्तविक आन्तरिक रूप कुछ और ही है।

❀ ❀

इस रात्रिमें हम अपने २ लैम्प, दीपक आदि जलाये बैठे हैं, (और बुझनेपर फिर २ जलाते रहते हैं) किन्तु इससे रात्रि नहीं मिट जाती। केवल दीपकके इधर उधर कुछ मलिन प्रकाश अवश्य हो जाता है, किन्तु शेष संपूर्ण अंतरिक्षमें तो वही अंधकारका अखण्ड राज्य है। यही हाल है और यही हाल रहेगा, हम चाहें कितने प्रतिभाशाली विद्युत् आदिके महालंपों का ज़ोर लगाकर देख लें।

❀ ❀

हमारे बड़ेसे बड़े बुद्धि-दीपकका उजाला परिमित ही है। हम अपनी चार दिवारीके आगे लेशमात्र भी कल्पना नहीं कर सकते। चारों ओर कुछ दूर ही चलकर, उस काले पर्देका घोर अंधकार आजाता है जिसके पार देखना हम मनुष्योंके भाग्यमें नहीं है। तर्क-धनुर्धर उस अंधेरेमें बड़े गर्वसे अपने Search-light के तीर छोड़ २ कर लक्ष्यवेधकी आशा करते हैं; किन्तु वे तीर टकरा २ कर भ्रष्टलक्ष्य होकर लौट आते हैं, और वहांकी कोई भी ख़बर नहीं लाते, सिवाय इसके कि सामने एक अभेद्य कठिन काला पर्दा है जिसे हम बींध नहीं सकते।

❀ ❀

क्या फिर हमारे हृदयमें उस प्रकाशकी अभिलाषा निष्फल ही आग रही है?। क्या इस अंधेरी भूल भुलैयांसे निकलनेका कोई भी मार्ग नहीं है?

नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। अवश्य कहीं न कहीं कोई प्रकाशमय महा-ज्योति विद्यमान है; नही तो बताओ कि किसकी आभासे हमारे दीपक अपने आपको प्रकाशित किया करते हैं और भला यह कैसे समझमें आसकता है कि जिस देवने हमारे अन्दर उस ज्योतिसे प्रेम पैदा किया है उसने उसकी प्राप्तिके लिए कोई रास्ता न खोल रखा होगा। नो निःसंदेह—बिल्कुल निःसंदेह—कुछ ऐसे सत्यनियम और विधियां हैं जिनके अनुसार फिरने और चक्कर लगानेसे हम इस भूल भुलैय्यांके बहिर्द्वारको पहुंच सकते हैं।

❀ ❀

धन्य हैं वे पुरुष जिनके लिये कि वेद-सूर्य सचमुच उदित होजाते हैं और उनके मार्गको सत्यके प्रकाशसे निर्भ्रान्त कर देते हैं। सौभाग्यशाली हैं वे पुरुष जिन्हें कि ऐसे सुजाखे गुरु मिलजाते हैं कि जिन्हें अपना बाहु पकड़ाकर वे निश्चिन्ततासे इस भूलभुलैय्यांके पार होजाते हैं। यदि मैं इन दोनों बातोंके योग्य न होऊं तो भी कुछ निराशाकी बात नहीं, अन्तमें एक आशा तो है ही कि यहांकी दीवारोंसे टकराते २ और असंख्यों वर्षों तक भूलते भुलाते कभी मुझे भी अकल आजायगी कि मार्गको जानकर प्रकाशको प्राप्त करूंगा। 'अनेकजन्मसंसिद्धिः ततो यान्ति परांगतिम्'।

❀ ❀

हम इस तमसावृत लोकमें कहांसे आये हैं और यहां

अपना कुटुम्ब पैदाकर, फैलाकर, बच्चों कच्चों सहित अब बस गये हैं तथा इसी प्रकार इन खेलोंमें समय बिताते हुवे अपने आपको ख़तम कर डालते हैं।

किन्तु दूसरे कुछ स्वस्थ होकर उठते हैं और संसारकी चीज़ोंको अब देखना शुरू करते है तथा विस्मित होने लगते हैं। उनके लिये संसार खिलौनेके स्थानपर अब एक आश्चर्य्यकर वस्तु बन जाती है। किन्तु आगे २ अधिक अधिक आश्चर्यसे आंखे फाड़े देखते देखते उनका भी अन्तकाल आपहुंचता है और उनके विस्फारित नेत्र पथराये हुवे ही रह जाते हैं।

फिर तीसरी वार उठते हैं और अब पदार्थोंको गम्भीरतासे देखने लगते हैं। 'यह क्यों यह क्यों' करते हुवे 'तत्व' की खोजमें मग्न होते है। किन्तु इस रहस्यमय कार्यकारण-भाव को कौन जानता है, 'ऐसा क्यों हुवा' 'यह इसका गुण क्यों है' इन बातोंको कौन बता सकता है। हम भले ही 'यह अज्ञेय है' या 'यह इसका स्वभाव है' आदि शब्द रचकर अपने मनको संतोष देलें; किंतु जिज्ञासुकी इससे तृप्ति नहीं होती। वे अपनी अल्पज्ञताको जान लेते और अपनी स्थितिको पहचान लेते हैं। ये ही हैं वे पुरुष जो उन सत्यनियमोंके जाननेकी तृष्णासे व्याकुल हो उठते हैं। किन्तु हा! उस जलकी तलाशमें इधर उधर विह्वल हो भटकते हुवे अन्तमें प्यासके मारे वे तड़फ तड़फ मर जाते हैं—और तृषाकी वेदना इस गहरी नींदमें भी व्यथित करती रहती है।

❀ ❀

किन्तु अभी फिर भी उठना है। और अबकी बार उठकर वह तपस्वी अपनेको योग्य पाता है। अब उसकी तृषाशान्तिका समय आगया है और वह इस सत्यज्ञानके रसको पीकर स्वस्थ और अमृत होकर इस भूलभुलैयाके जालसे मुक्त हो जाता है—और फिर इस जन्मके अन्धकारमें नहीं आता। सच है:—

"पुनरुत्थाय च वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते"।

घरका स्वामी

हम इस विशाल घरमें मुँदी आँखोंके साथ न जाने कहांसे आये। यहाँ ज्यों धीरे २ आंखे खुली तो नाना प्रकारके चामत्कारिक सुखभोगके समान पहिलेसे ही बड़ी तरतीवके साथ स्थान २ पर धरे हुवे हमने पाये और इन्हें हमने निःशंक भोगा। घरमें आये हुवे अन्य साथिओंके साथ इसी प्रयोजनसे तरह २ के संवन्ध जोड़े—अनेकोंसे घोर वैर किया तो अनेकोंसे गाढ़ मोह रक्खा, अपने मनमाने भोगमें बाधक जान वहुतोंको कष्ट दिया और सताया, तो बहुतोंसे हार खायी और पद-दलित हुवे। किन्तु अन्तमें फिर एक दिन आया जब कि आँखें एकदम मुँद गयी और हम यहाँका सब कुछ यहीं छोड़ न जाने कहाँ चले गये।

इस प्रकार हम इस घरमें आये और यहाँके ही पदार्थोंके संबन्धमें इतने झगड़े बखेड़े कर कराके जैसे ख़ाली हाथ और अंधे आये थे वैसे ही ख़ाली हाथ और अंधे चले गये; किन्तु यहाँ रहते हुवे यह कभी न जाना यह कभी न पूछा—कि यह घर है किसका, इन सब अनगिनत सामग्रिओं का स्वामी कौन है, यहां जो इतना सुख पाया वह किस स्रोतसे

प्रवाहित होता है, यहाँ जो दुःख भोगे उनका कारण क्या है? यह कैसी विचित्र अवस्था है कि हम विना जाने किसीके घर में, और न जाने कैसे, घुस आँय और फिर एक दिन बिलकुल वेवस वहाँसे निकल जाँय किन्तु हमें अपने और उसके संबन्धमें कुछ भी मालूम न हो? क्या यहाँ रहते हुवे हमें कभी आश्चर्य नही होता कि यह इतना विशाल [जिसमें हम जैसे असंख्यातों जीव बस रहे हैं] और अद्भुत वैभवमय गृह किस ऐश्वर्यशाली का है? क्या हृदयमें किसी अवसर पर भी प्रश्न नहीं उठता कि हम [जो यहाँ कुछ कालके लिये आये हैं] कौन हैं? किसलिये आये हैं? कहाँ जाँयगे?

ये प्रश्न वास्तवमें प्रत्येक जीवसे पूछे जा रहे हैं। अन्दर बैठा एक 'यक्ष' प्रत्येक संसारवासी को सावधान कर रहा है और कह रहा है "घरके इस रमणीय सरोवरमेंसे जीवन (जल) ग्रहण करनेसे पहिले इन प्रश्नोंका उत्तर देलो, नहीं तो इन्हें विना बूझे भोगाहुवा जीवन (जल) 'अमृत' की जगह मार डालने वाला हो जायगा'। किन्तु यक्षकी आवाज़ कोई नहीं सुनता, सब यूँही इसे पी रहे हैं और मरते जारहे हैं। कुछ हैं जिन्हें कि ये प्रश्न सुनायी देते हैं किन्तु वे इनका अभी उत्तर नहीं दे सकते। और बहुत ही थोड़े ऐसे हैं जो कि इनको सुनते हैं और इनका ठीक उत्तर देकर इस सरोवरके अमृत (जल) को पीते है और मृत्युरहित होजाते हैं।

❀ ❀

हे घरके स्वामी। लोग मुझे कहते हैं कि 'अब तुम जवान होगये हो कुछ काम करो'। किन्तु मुझे तो अब बालकपनके खेलोंसे जागने पर तेरे इस संसार का यह गोरखधंधा ऐसा जटिल दीखता है कि कुछ भी समझ नहीं पड़ता। इसे बिना समझे मैं यहाँके किसी 'काम' में कैसे हाथ डाल बैठूँ? कैसे किसी भीड़ भड़क्केमें घुसकर कुछ हल्ला गुल्ला करने लगूँ? तुम्हारी बिना आज्ञा पाये यहाँ की किसी वस्तुको कैसे छेड़ने लगूँ? इसलिये जहाँ तहाँ पता लगाता हुवा तुम्हारा ठिकाना पूछता २ आज तुम्हारी बैठकके दर्वाज़े पर आकर बैठा हूँ कि तुमसे भेंट करूँगा और आज्ञा लूँगा—पूछूँगा कि यह शरीर मन आदि संघात तुमने मुझे वरके किस विशेष कार्यके लिये दिया है। इससे पहिले मैं कैसे कोई 'काम' करूँ? और तुम्हें बिना पूछे यहाँके ऐश्वर्यको भोगना, हा! यह तो मुझसे कभी न होसकेगा। इसलिये मैं तो जब तक कि तुमसे भेंट न हो जाय, तुम्हारा आदेश न मिलजाय (जैसा कि सुना है बहुतोंको मिल चुका है) तबतक तुम्हारी ड्योढी पर ही धरना लगाकर बैठा रहूँगा—मैं यही कार्य करूँगा। क्या यह 'काम' नहीं है?

हे स्वामी! जब कि यह सत्य है कि तुम्हें जान पहिचान लेने पर और सब कुछ स्वयमेव जाना जाता है और तुम्हें बिना देखे यह दुनिया सचमुच अंधेरा कुँआ है और तुम्हें बिना बूझे यहाँके ऐश्वर्य-जलको भोगना विषपान करना है तब तुम्हारे साक्षात्कारके लिये बैठना ही क्या सर्व श्रेष्ठ कार्य नहीं है?

हम क्या खायें ?

यदि एक विदेशी कपड़ेके व्यापारीको समझाया जाता है कि उसका यह पेशा पापमय है तो वह सच पूछता है 'फिर हम क्या खायें ? ।' विदेशी सरकारके कर्मचारियोंको असहयोगका धर्म समझाया जाता है तो वे पूछते हैं, 'हम सरकारी नौकरी छोड़ दें तो क्या खायें ?' यहां तक कि भारत-के नवयुवकोंको देशके लिये जीवन वितानेको कहा जाता है तो वे भी घवड़ाकर पूछते हैं दि यदि हम देश सेवामें ही लग जायें तो हम खायेंगे कहां से। यह खानेका सवालही हमें खाये जा रहा है।

❀ ❀

यह यात नहीं कि इस सवालका कुछ हल नहीं। असलमें इसका हल बड़ा ही आसान है। 'हम क्या खायें' इस प्रश्नका उत्तर है "यज्ञशेष"। यज्ञसे जो कुछ बचे उसे खाओ और तृप्त होवो। लो, खाने का सवाल हल हो गया।

पर यज्ञका शेष क्या होता है ? अपनी यज्ञीय (यज्ञ-प्राप्त) कमाईमेंसे यज्ञको उसका हिस्सा दे लेनेपर जो कुछ बचे यह यज्ञ शेष है। यह (जैसे राष्ट्रयज्ञ) हमारे वैयक्तिक

भी जीवन होता है। अतः यज्ञके लिये उसका भाग न छोड़ कर यज्ञको भूखा मारना तो स्वयं पहले मरना है। और इसके विपरीत यज्ञशेष खाने द्वारा यज्ञको जीवित रखना, स्वयं सदा जीना है—अमर होना है। इसीलिये यज्ञशेषको अमृत कहा जाता है। जैसे 'यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्' यहाँ यज्ञशिष्टको अमृत कहा है।

यह यज्ञशेष खाना पुण्य है। और इसके विपरीत यज्ञका भाग भी न देना और उसे अपने लिये जोड़कर भोगना बड़ा पाप है। इस सत्यको सदा स्मरण रखनेके लिये भगवद्गीताके निम्न दो सुवर्ण वाक्योंका एक श्लोक तो हमें कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

(१) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः

अर्थात् 'यज्ञशेष' खाने वाले मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते हैं।'

(२) भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

'वे पापी तो पाप (अन्न) ही खाते हैं जो कि अपने लिये पकाते हैं (अपना ही पेट भरते हैं)।'

जहां यज्ञके शेषमें सब पापोंसे मुक्त करानेकी शक्ति है वहां यज्ञका ध्यान न करके अपना ही पेट भरनेवाला पाप का ही खानेवाला होता है। ऋग्वेदमें और भी स्पष्ट कहा है—

केवलाघो भवति केवलादी

अर्थात् 'अकेला खाने वाला केवल पाप खाता है'।

* *

परन्तु ऐसे बड़ भागको भी भोगनेवाले सेठ साहब या बाबू साहबको भोजन खाते देख कर आज यह कौन मानेगा कि वह भोजन नहीं खारहा है, पाप खा रहा है। हम लोगोंको तो यही दिखाई देता है कि वह पूरी पकवान और मिठाई मेवे खा रहा है। इस बातपर हमारी श्रद्धा जमे या न जमे, पर इतना तो सत्य है ही कि किसी भी चीज़को निगल जानेका नाम 'भोजन खाना' नहीं है। यदि कोई कंकर मिट्टी और राखको भोजनकी तरह निगल जावे, तो निश्चय है कि इससे उसका शरीर पोषण नहीं होगा, और ये वस्तुयें भोजन नही कहलायेंगी। इसी तरह पापकी कमाईसे प्राप्त भोजनाकार वस्तुयें भी भोजन नहीं है, क्योंकि उनसे भी पोषण नही प्राप्त होता। यह मान भी लिया जाय कि इससे शरीर पुष्टि हो जाती है, तो भी क्योंकि आत्मा कमज़ोर और निस्तेज होती जाती है, अतः यह शरीर (स्थूल-भाग) बढ़नेकी बीमारी है, पुष्टि नहीं है। जैसे शरीरमें केवल पेट बढ जाना बीमारी है, उसी तरह मनुष्यमें केवल स्थूल शरीरका अन्दरके शरीरोंकी अपेक्षासे बढ़ा होना बीमारी है। अतः ऐसा भोजन यद्यपि खाया जाता है तो भी यह भोजन नहीं है, वह पाप है। और इससे बना शरीर भी 'पापका पिण्ड' है। क्योंकि इसका असर शरीर पर हुये बिना नहीं रह सकता।

* *

हमारे देशमें एक राष्ट्रयज्ञ चल रहा है (इसे स्वराज्य आन्दोलन रूपमें देखें या राष्ट्रनिर्माण कहें या कुछ और) जो कि हमारे ज़िन्दा रहनेके लिये आवश्यक है। इस कार्यमें सहायक जो जो संगठन हैं वे भी यज्ञ हैं। सच्चे धर्मको जीवनोंमें लाने वाली और प्रचार करनेवाली सब संस्थाएं यज्ञ हैं। इन यज्ञों को खिला कर खाना—इनके लिये सब कुछ देकर फिर जो अपने हिस्सेमें बचे उसे खाना, यज्ञशेष खानेका धर्म है जो कि प्रत्येक भारतवासीको पालना चाहिये। हमें पाप खानेवाले 'चोर' नहीं बनना चाहिये। जो लोग यज्ञको भुलाकर, अन्य लोगोंका विचार छोड़कर अपनेको ही देखते हैं और इसलिये अन्योंका हिस्सा भी खाजाते हैं, उन्हें गीतामें 'चोर' भी कहा है।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।

अर्थात् 'उन (यज्ञदेवों) से दिये हुवे (पदार्थोंको) उन्हें विना दिये जो भोगता है वह चोर ही है'। चोर ही नहीं, किन्तु यदि और गहराईमें जाकर देखें तो भगवान् हमें ऋग्वेद द्वारा कहते हैं।

'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य'

(० १०. ऋ११७.६)

'सत्य कहता हूँ कि वह (धन) उस (त्याग न करनेवाले) की मृत्यु है।' परन्तु सच बात तो यही है कि हमलोग यज्ञभाग के न त्यागनेको अपनी मृत्यु कहां समझते हैं, हम तो इसे चोरी भी कहां समझते हैं। मनुष्यको ऊपरसे देखने पर

यह बात सच नही प्रतीत होती है कि मेरा पाप-धन मेरा वध (मृत्यु) है, इसीलिये तो वेदको भी कहना पड़ा है 'सत्यं ब्रवीमि'। मैं सच कहता हूँ, इसे सच मान। यद्यपि यह तुम्हारी भोगसामग्री ही दिखायी देती है, पर सच यह है कि यह तुम्हारी मौत है।

तो क्या अब समझमें आया कि हम भारतवासियोंको क्या खाना चाहिये ? क्या यज्ञकी चोरी करके खाना चाहिये ? क्या हमें पाप खाना चाहिये ? क्या हमें मृत्यु बुलानी चाहिये अथवा 'अमृत' खाना चाहिये ?

❀ ❀

पर वे कहते हैं 'इससे खानेका सवाल तो हल नहीं हुवा। इन (Idealistic) बातोंसे तो पेट नहीं भरेगा। पेट भरनेके लिये तो कहींसे खाना होगा। भूखकी चिन्ता जब लगी होती है तब पाप और पुण्यकी सुध कुछ नहीं रह सकती।' इस बातको विश्लेषण कर यदि ठीक २ कहा जाय तो असलमें यों कहना चाहिये कि खानेका सवाल तो हल हुआ हुआ ही है परन्तु आवश्यकतासे अधिक खानेका सवाल बेशक हल नहीं हुआ है, (और न हो सकता है और न होना चाहिये)। हमारी बहुत सी अस्वाभाविक भूखे बढ़ी हुई हैं। हमें भूख प्रतीत होनेका 'भस्मक' रोग हो गया है। परमेश्वरके थोड़ेसे भोजनसे हमारी ये अस्वाभाविक भूखें पूरी नहीं होंगी। यही असलमें डर है जो कि हमें सता रहा है,

सच्ची भूख हमें ऐसी नहीं सता रही है। और ये आदर्शवादकी (Idealistic) बातें हमारे हृदय तक नहीं पहुँचती हैं इसी लिये हमें यह वास्तविक (Realistic) नहीं जंचती हैं। परन्तु जब ये बातें हमारी समझमें आवेंगी, हमारे हृदयमें अनुभूत होंगी, तब हमारे मन इतने स्वच्छ हो जायंगे कि हमसे ये हमारी झूठी भूखें स्वयमेव हट जायंगी और असली स्वाभाविक भूख चमकेगी। हम अपनेको भारतवासी समझ कर स्वेच्छासे गरीबीका जीवन व्यतीत करते हुवे बादशाहकी तरह रहनेको उद्यत होंगे। यही स्वाभाविक भूखका लक्षण है।

परन्तु सब बात तो यहाँ अटकती है कि ये Idealistic बातें समझमें कैसे आवें? इन्हें मैं और किस तरह समझाऊँ? वेद और गीताके क्रान्तदर्शी वचनोंको सुनानेसे बढ़कर मुझ पामर के पास और क्या शक्ति है जिससे कि इसे समझा सकूँ? मैं तो बोल सकता हूँ, चिल्लाता हूँ, और चिल्ला २ कर कहता हूँ कि यज्ञशेषसे अतिरिक्त खाना पाप है, चोरी है, अपना नाश है।

* *

कहते हैं कि गुरु नानकदेवके पास एक बार दो मनुष्य भोजन लेकर आये। उनमेंसे एक बड़ा साहूकार धनाढ्य था जो कि बड़ा बढ़िया हलुवा पूरी का भोजन लाया था, और दूसरा एक ग़रीब था जो कि अपनी रूखी सूखी मोटी रोटियाँ लाया था। परन्तु नानकदेवने इस ग़रीबका भोजन ही स्वीकार किया। बिनती करने पर उस अमीरको उत्तर दिया कि तेरा

भोजन खूनसे भरा हुआ है। आगे कहानी है कि अन्तमें गुरु साहिबने दोनोंका भोजन मुट्ठीमें लेकर निचोड़ा तो उस अमीर के भोजनमेंसे खून चुआ और उस गरीबके भोजनमेंसे दूध निकला।

हे भारतवासियो! क्या वर्त्तमान कालके सन्तोंने तुम्हें निचोड़ कर नहीं दिखला दिया है कि खूनभरी कमाई कौनसी है और अमृतभरी कमाई कौनसी है और कितनी है? अब क्या प्रतीक्षा है? यदि अशक्त मैं निचोड़ कर नहीं दिखला सकता हूँ तो क्या यह समझ लोगे कि हमारी पापकमाइयाँ 'खूनसनी' नहीं हैं। ज़रा देखो सन्तोंने एक बार नहीं कई बार निचोड़ निचोड़ कर साक्षात् करा दिया है कि विदेशी वस्त्र बेच कर कीगई कमाई, शराब बेचकर की गई कमाई, गरीबोंसे धन चूसकर की गई कमाई, अर्थात् राष्ट्रयज्ञका घात करके की गई प्रत्येक कमाई लहूसनी है, पाप है, मृत्युका द्वार है?

❀ ❀

क्या ये बातें अब भी वास्तविक (Realistic) नहीं हुई हैं? क्या दादाभाई, दत्त, गोखले, तिलक और गांधी आदि सन्तोंने तरह २ से यह स्पष्ट नहीं दिखा दिया है कि भारतवर्ष का देह बहुतसे पर्वोंसे एक यन्त्रकला (Machinery) द्वारा चूसा जा रहा है। यह तो इतना स्पष्ट दिखलाया गया है कि बहुतसे निष्पक्ष विदेशी भी (अंग्रेज़ भी) खून निचुड़ता हुआ देखरहे हैं। तो क्या उस यन्त्रकलाके कारण होने वाली कमाई

'खूनसनी' कमाई नही है। एक देशके खूनको इससे अधिक प्रत्यक्ष रूपमें और क्या दिखलाया जासकता है।

यदि यज्ञभाग चुरानेकी दृष्टिसे देखें तो हर कोई जानता है कि हमारे देशमें अपने धनको यज्ञसे बचानेवाले 'स्तेन' कितने अधिक हैं और यज्ञशिष्टामृत-भोगी कितने विरले है। इस प्रकार जो हम (यज्ञकी) सबकी सामुदायिक संपत्तिको न बढ़ाकर एक दूसरेकी संपत्ति चुरानेमें लगे हुवे है क्या यही कारण नही है कि हमारे देशका सब जीवनरस चुपके २ चुराये जानेका बड़ा पाप बड़ी आसानीसे हो रहा है। पापको इससे अधिक आंखोंके सामने प्रत्यक्ष क्या दिखलाया जासकता है।

और इस मरते हुवे (यहाँके लोगोंके शरीर नष्ट हो रहे हैं, मनकी शक्तियाँ बिगड़ गयी है और आत्मिक शक्तिका भी दिनों दिन ह्रास होता गया है) देशको देखकर क्या यह समझने के लिये कि यह यज्ञभागको भी खा खाकर बुलायी गयी मृत्यु-का लक्षण है, किसी ऋषिके उतरने की ज़रूरत है ? और क्या अब भी अपने देशकी निस्तेज निश्चेष्ट और मुर्दोंकी सी अवस्था देखकर स्वयमेव ही कानोंमें गूँजने लग पड़ने वाला यह वेद-वचन 'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य' अपने अर्थको वास्तवमें वास्तविक (Realistic) करनेमें असमर्थ रहता है ?

इसलिये इन बातोंको तो आदर्शवाद (Idealism) कह कर टालना उचित नहीं है, अपनी अस्वाभाविक झूठी भूखोंको हटा देना ही उचित है।

❀ ❀

यह भी समझ लेना चाहिये कि इन झूठी भूखोंकी पूर्त्ति हम इस समय यदि करना चाहें तो भी नहीं कर सकते हैं। क्या तुम्हें मालूम है कि हमारे देशकी औसत आमदनी क्या है? उदारतासे हिसाव करे तो भी ४) माहवार पड़ती है। यह भारतवासिओं की आमदनी की औसत है। ४) से कम कमाने वाले भी करोड़ों आदमी है। तो जव तक यह औसत आमदनी नहीं वढ़ती तव तक (सिवाय इसके कि हम आपसमें ही एक दूसरेकी चोरी करें) ४) से अधिक कहाँसे खा सकते हैं? ४) में हम क्या क्या करेंगे? तो भूख वढ़ानेसे क्या लाभ? सच पूछो तो इस दृष्टिसे प्रत्येक भारतवासी का यज्ञशेष ४) से अधिक नहीं है। एक अस्तेयव्रतका पालने वाला यदि आज ईमानदारी से कमाकर ४) माहवारसे अधिक प्राप्त करता है तो वह सव अधिक धन उसे देशके कार्यमें ही लगा देना चाहिए और ४) में अपना गुज़ारा करना चाहिये। फिर जो वेईमानीसे खूनखनी कमाई करते हैं उनका क्या कहना है! अपनी दशा जानने वाला कितना दुःखी होता है जव कि भारतके नवयुवक (कुछ लोगों को ज़्यादा भोगते देख कर) स्वयं अपने लिये २०) २५) ४०) तक व्यय करते हुवे भी अपनेको ग़रीब समझते हैं। भाई! इस हतभाग्य देशमें तो ग़रीब वह है जो कि ४) माहवारसे भी कम आमदनी कर पाता है। इसलिये भारतपुत्रोंको चाहिये कि वे अधिक भोगने वालोंका विचार न करें, उनकी रक्तरंजित

पापकमाई पर दृष्टिपात न करें, किन्तु अपने सीधे सादे आवश्यकीय भोजनको अमृत समझ कर खायें, तभी यह देश 'वध' से बच सकता है। इसीलिये देशभक्त तो अपने आप (अपने तन मन धनसे) देशके लिये ही बिक जाते हैं और फिर जो कुछ शरीरधारणके लिये मातासे मिलता है उसे खाकर काम करनेके लिये जीते हैं। इसके सिवाय इस समय इस देशमें धर्मपूर्वक जीनेका और कुछ उपाय नही है, और कुछ उपाय नहीं है।

❀ ❀

भारतदेशके जीवनरसको चूसने वाली 'विदेशी राज्य' के रूपमें जो एक बड़ी मैशीनरी चल रही है, उसमें साधारणतया थोड़े बहुत सहायक तो शायद् सभी भारतवासी कहे जासकते हैं, परन्तु विशेषतया बिदेशी कपड़ोंके व्यापारी और पहिनने वाले, मुक़द्दमेबाज़ और वकील, सरकारी नौकर और बड़े २ तालुकेदार आदि जाने अनजाने इस रक्तशोषक यन्त्रके अङ्ग बने हुये हैं। यन्त्रके अङ्गभूत ये हमारे भाई अपने खानेका सवाल हल करनेके लिये ही नीचेके लोगों का खून चूसते हैं, और उस मॅसे कुछ अपना भाग पाकर इस चूॅसको ऊपर पहुँचा देते हैं। इस प्रकार दिनरात यह यन्त्र चल रहा है और इस देश-देहके कोने कोनेसे रुधिर खिच २ कर बहिर्गत हो रहा है। इस शोषणसे यहाँके लोगोंका केवल धन नहीं छिन रहा है किन्तु इसके साथ २ भारतपुत्रों के वैयक्तिक शरीर दुबले होरहे हैं,

मन निर्वीर्य और दास होते जा रहे हैं तथा आत्मिक धन भी दिनों दिन लुप्त होता गया है। इस शोषणप्रक्रियाको देख लेने पर हृदय स्तब्ध हो जाता है; जी चाहता है कि इससे तो इस देशका एकदम मर जाना अच्छा है। पर न तो यह शोषण-चक्र बन्द होता है और न इस शरीरकी समाप्ति होती है। इस चक्रको चलता देखकर भी क्या कोई इस वास्तविकतासे इन-कार कर सकता है कि इस देशके हज़ारों लाखों आदमी पाप ही खा रहे हैं भोजन नहीं खा रहे हैं। यह पाप भोजन ही तो कारण है कि जिससे यह पापचक्र अभी तक शानके साथ सिर ऊँचा किये चलता जा रहा है।

❀ ❀

परन्तु आख़िर संसार पर 'दीनोंकी आह सुनने वाले' का राज्य है। इसलिये इस देशमें कुछ ऐसे धीर पुरुष भी हैं जो कि इस जटिल और अदम्य प्रतीत होने वाले पापचक्रके मुकाबिले-में अपना यज्ञ संगठित कर रहे हैं, और इसे अपना सर्वस्व अर्पण कर चला रहे हैं। यह दृश्य एक बार प्रत्येक भारतवासीको दीख जाना चाहिये कि किस तरह एक तरफ़ अमृत-भोगी थोड़ेसे लोग अपने जीवनप्रद यज्ञसे भारतको जीवित करनेपर तुले हुये हैं, जब कि शेष सब लोग यज्ञको छोड़ उस पापचक्रके अधीन 'अघायु' और 'इन्द्रियाराम' जीवनवाले इस देश-शरीरका मृतभाग बनकर पड़े हुये हैं और आकाशमें कोई गीताकी वाणीमें बोल रहा है—

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

गी० ३—१६

"इस प्रकार चलाये हुवे इस यज्ञ चक्रको जो (यज्ञभाग देने द्वारा) नहीं चालू रखता है, वह अघायु अर्थात् जिसका कि जीना ही पाप है और इन्द्रियोंमें रमने वाला मनुष्य, हे अर्जुन! व्यर्थ ही जीता है।"

जिनका कि जीना व्यर्थ है ऐसे हम अर्धमृत लोगोंको प्रकृति अधिक देर तक भूमिका भार नहीं रहने देगी। इसलिये इस श्लोकका मतलब वही है जो कि 'वध इत् स तस्य' यह वेदवचन बतलाता है। हम मृत्युकी तरफ क्यों न जायें जब कि हमारा जीना ही पाप हो गया हो, हम अघायु हो गये हों। निश्चयसे हम गुलामोंका जीना ही पाप है। जितनी देर जी रहे हैं संसारमें पाप बढ़ा रहे है। हम गुलाम है और जी रहे है, इसीलिये हिन्दुस्तानी सिपाहियोंने चीनके विद्यार्थिओंपर गोली चलायी है या चलानी पड़ी है। अन्य कई देशोंको पराधीन रखने या हक छिनानेमें हमारी गुलामी साधन होती रही है। हमारा इस गुलामीमें जिन्दा रहना संसारमें इतना पापका कारण होरहा है कि बहुतसे पोड़ित लोग कह उठते होंगे 'यह व्यर्थ ही जी रहा है' और हमारी मृत्यु मनाते होंगे।

परन्तु हम अघायु इसलिये होगये हैं क्योंकि हम 'इन्द्रियाराम' है। इन्द्रियोंकी भूख हमें सता रही हैं अतः यज्ञशेषके

शुद्ध सात्विक भोजन पर हमारा गुज़ारा नहीं होता और हम यज्ञभाग खानेके पापमें प्रवृत्त होजाते हैं। इसलिये खानेके सवालका हल यह है कि इन्द्रियोंमें रमना छोड़दो, अस्वाभाविक भूखोंको मिटादो। फिर शेष स्वाभाविक भूखकी निवृत्ति तो बड़ी आसान है। यह सर्वथा सत्य है कि जो पशु पक्षियों को रोज खानेको देता है (जो भारतके ही लाखों नरकङ्कालोंको जीवित रखता है) वह तुम्हारा पेट भी भरेगा। इसीलिये मैं कहता हूँ कि खानेके सवालका हल बड़ा आसान है। केवल पेचीदगी यह है कि हमें इन्द्रियोंकी भूखें लगी होती हैं। ये ही भूखें हैं, जो कि इस इतने आसान सवालको कठिन बना देती हैं।

❀ ❀

और इन अस्वाभाविक भूखोंको तो एक संकल्पसे, एक हार्दिक अनुभवसे हटाया जा सकता है। यही समझमें आना कठिन है कि हम भारतवासियोंको इस समय अस्वाभाविक भूखें लग कहांसे सकती हैं। जिस देशमें कि अपने करोड़ों भाइओंको एक वक्त ही खाना नसीब होता हो, जहां कि करोड़ों भाई चार पैसे रोज़पर गुज़र करते हों और एक दुष्काल आनेपर मृत्युके ग्रास होजाते हों, उस देशके लोगोंको क्या अतिरिक्त भोजनकी सूझेगी? तुम कहते हो कि इन Idealistic बातोंसे पेट नहीं भर सकता, पर मैं पूछता हूँ कि दुर्भाग्यसे तुम्हारे किसी प्रियका कभी अचानक देहान्त होजाता है, तब तुम्हारी भूख कहां चली जाती है? तब तुम्हारा पेट किस तरहसे भर

जाता है। रिवाज तो यह है कि जब तक मोहल्लेमें लाश पड़ी रहती है तब तक किसीके घर चूल्हा नहीं चढ़ता। तो आज इस श्मशान बने हुवे अपने भारत देशमें हमारे लिये भूख लगाने वाली चीज़ कौनसी है? क्या अपनी वर्तमान दशाका स्मरण हमारी भूख रोकनेको पर्य्याप्त नहीं है? ज़रा अपनी स्वदेशमाताका सच्चा स्वरूप देखो। गुलामीकी हालत, सदा पैरों तले रौंदे जानेकी हालत, इस समय क्या भोगोंकी इच्छा पैदा होगी? क्या इस समय तुम इन्द्रियाराम बन सकोगे?

यह भी एक बड़ा भ्रम है कि जीनेके लिये खाना सदा आवश्यक है। कई बार तो भोजन विष होता है। महात्मा गांधीने २१ दिन वाला उपवास करके बतला दिया कि ज़िन्दा रहनेके लिये भी खाना छोड़ा जाता है। उन्होंने उपवासके बाद कहा 'यदि मैं यह उपवास न कर लेता तो मैं ज़िन्दा न रह सकता'। यह कुछ विचित्र बात नहीं है। ऐसे बहुत लोग मिल जायँगे जिन्हें कि उपवासने मरनेसे बचाया है। इसलिये इस समय भारतका जीवन भी भोग-त्यागमें ही है, यह जान कर एक दम ही सब झूठी भूखोंका बहिष्कार करदो।

❀ ❀

हे भारतके नवयुवको! (विशेषतया राष्ट्रिय विद्यालयोंके स्नातक भारतपुत्रो!) अब देर लगानेका समय नहीं है। अपनी आवश्यकतायें कम करके यज्ञमें लग जाओ। इस प्रवर्तित यज्ञचक्रको चलाते चलोगे तभी यह भारी पापचक्र

बन्द हो सकेगा। यह तुम्हारा काम है। इसलिये लड्डूसने, देश को मृत्युकी तरफ़ लेजानेवाले, पापभोगोंकी तरफ़ कभी दृष्टि न उठाओ। यदि कभी उधर दृष्टि चली जाय तो देशकी दशाका चिन्तन करलो। अपनी दुखिया माताके रक्तशोषणका ध्यान आते ही सब झूठी भूखें मिट जाया करेंगी। यह याद रक्खो कि विदेशी शासनके इस पापचक्रका उद्घोषित उद्देश्य है कि एक एक भारतवासीको ग़रीब बनाते बनाते हमें 'लकड़हारे और पानी भरनेवालोंकी क़ौम' बनाकर नाश कर दिया जाय। इसका स्पष्ट एक ही इलाज है कि हम स्वेच्छासे ग़रीब बनकर इस देशको ज़िन्दा करदें। स्वेच्छासे करनेमें ही सब भेद है। संसारसे ज़बरदस्ती छुड़ाया जाना मृत्यु है, किन्तु संसारको स्वेच्छासे छोड़ना 'संन्यासी' पद प्राप्त करना है। जब ज़बर दस्ती ग़रीब बनाये जाकर मरना है तो स्वेच्छासे ग़रीब बन कर ज़िन्दा क्यों नहीं बन जाते। पापचक्र द्वारा ग़रीब तो सब बनाये ही जारहे हैं (जो आज नहीं है कल हो जायेंगे) तो पापविरोधी पुण्य यज्ञचक्रको चलानेके लिये आवश्यक ग़रीबी को ही क्यों न स्वेच्छासे स्वीकार कर लिया जाय।

इसलिये अब यह मत पूछो कि हम क्या खायेंगे। इससे निश्चिन्त होकर पापनाशक यज्ञमें लग जाओ। शेषके रूपमें जो कुछ रूखा, सूखा, चनाचबेना मिले उसे अमृत समझकर खाओ। यह पवित्र भोजन तुममें पर वीर्य और ओज पैदा करेगा। और यदि कभी यज्ञशेष कुछ भी न मिल सके ऐसा हो,

तो भी कुछ परवाह नहीं है। उस अवस्थामें बेशक भूखे मर जाना, पर इस पवित्र यज्ञको न मरने देना और लहुसनी कमाईका ख़्याल तक न करना। परन्तु अब तो तुम्हें भूखे मरनेका सौभाग्य कहां मिल सकेगा। अब वह शुभ ज़माना तो बीत चुका। नींवकी खाईमें अपने आपको भरनेवाले भरकर माताकी गोद प्राप्त कर चुके। वह प्रारम्भ करनेवालोंका ज़माना था, वीरोंका ज़माना था, बिना जाने हुए चुपचाप बलिदान होनेका ज़माना था। वह प्रायः बीत चुका। अब तो यज्ञ इतना बढ़ चुका है—इतना वितत हो चुका है कि लोग तुम्हें ज़रा भी देशका सेवक देखेंगे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा करेंगे, तुम अपनी आवश्यकतायें नहीं बतलाओगे तो भी वे उन्हें जान कर पूरा करेंगे। पर ऐसे कुछ क्षेत्र अब भी हैं जहांकी नीवें भरनेकी आवश्यकता है। यदि बहादुर हो तो उन क्षेत्रोंमें जाकर अपने 'अमृतभोजन' का बल दिखलाओ और अपना भारतजन्म सफल करो। इस देशके उद्धारके सभी कार्योंके चलानेके लिये आवश्यक है कि यहांके नवयुवकोंकी एक भारी फौज इतनी कम आवश्यकताओं वाली बन सके कि उसके सामने खानेका सवाल कभी न ठहर सके। यह देशकी एक भारी आवश्यकता है जिसको कि बिना पूरा किये आगे बढ़ना असंभव है। और यह एक सत्य है जिसके कि सामने तुम्हें अवश्य अवश्य झुकना पड़ेगा।

तरंग २०

कृष्ण की बंसी

सदाकी भांति इस जन्माष्टमी पर भी लोगोंने 'कृष्णकी बंसी' को याद किया। कवियोंने उनको उनकी यह प्रतिज्ञा स्मरण दिलाई कि 'अधर्मकी वृद्धि होनेपर मैं पुनः जन्म लूंगा'। परन्तु कुछ कालसे मुझे तो सदा ही कृष्णकी बंसी याद आया करती है और बहुधा मेरा दुःखित मन अकुलाकर पूछा करता है। "इससे अधिक धर्मकी ग्लानि और क्या होगी, अधर्मका अभ्युत्थान और कितना होगा जो तुम अभी तक भी प्रगट नहीं होते हो।"

परन्तु मेरा रोना यह नहीं है कि इस समय 'कृष्णकी बंसी' ही विद्यमान नहीं है। बंसी तो अब भी है, पर उसके बजाने वाले कृष्ण नहीं है। पर जब कृष्ण ही नहीं तो इसे 'कृष्णकी बंसी' कैसे कहूं। यह बंसी तो भगवद्गीतामें अब भी रखी हुई है। बंसीके विद्यमान होते हुवे भी बजाने वालेका न होना ही हमें विशेष दुःख पहुंचा रहा है।

फिर फिर याद आता है कि भारतका उद्धार तो अब केवल बजती हुई 'कृष्णकी बंसी' ही कर सकती है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि कृष्णकी बंसी बजनेपर अब भारतवासी उसके

अनुसार वेसुध होकर नाचेंगे तो वे अवश्य अपना उद्धार कर लेंगे। इसलिये हे बंसीवाले कृष्ण! जन्मो। यही इस दरिद्र भारतके सब पृथिवी और आकाशकी मौन इच्छा है, भूखे मरते हुए और पराधीनतासे ग्रस्त भारतवासियोंकी आहें यही कह रही हैं तथा उठना चाहते हुए पर उठनेमें अपनेको असमर्थ पाते हुवे सब अशक्त भारतवासिओंकी यही पुकार मच रही है। "कृष्ण भगवन् जन्मो। मोहन अपनी मुरलीसे मोहित करदो। तभी हमारे प्राण बच सकते हैं।"

❀ ❀

भगद्गीतामें रखी हुई यह वंसी—यह मुरली 'कर्मयोग' के रूपमें है। यही वास्तवमें गीतावाले कृष्णकी वंसी है। आओ मैं तुम्हें वतलाऊं कि यह कर्मयोग रूपी कृष्णकी बंसी कैसी है।

'कर्मयोग' एक योग है जिसे कर्म द्वारा किया जाता है। इसकी महिमा तो इतनी वड़ी है कि तिलक महाराज जैसे पण्डित अपने वड़े भारी पोथेमें इसका व्याख्यान करते करते हार मानते हैं। परन्तु वनावटमें यह वहुत सीधी सादी है, जैसी कि हमारी प्राचीन सभ्यताको प्रत्येक वस्तु होती है। आज कलके 'हारमोनियम' और 'प्यानो' आदिके समान इसकी वनावट कोई जटिल नहीं है। यह और वात है, कि यह मोहन द्वारा निकले अपने स्वरसे लोगोंको मोहित करनेमें इन आधुनिक यंत्रोंकी अपेक्षा हज़ार गुना अधिक समर्थ हो पर यह वंसी है वड़ी सीधी सादी वस्तु। इसे समझना कुछ

भी कठिन नहीं है। मेरे जैसा पामर प्राणी भी बतला देगा कि यह कर्मयोगकी बंसी क्या है।

❀ ❀

यह कर्मके काष्ठसे बनी है। कर्म देखना हो तो पाश्चात्य देशोंमें देखलो। वहां पूरा कर्मका राज्य है। लोग दिन रात कर्ममें लगे हैं। ज़रा देरको भी उन्हें चैन नहीं है। उन्हें यह विचारनेकी भी फुरसत नहीं, कि यह कर्म मैं क्यों कर रहा हूँ। योरोप, अमेरिकाके लोग इतने कर्मरत हैं कि बस यही जानते हैं कि अगले क्षण हमें यह करना है। अन्दरकी अदम्य इच्छायें उन्हें आगे आगे कर्ममें ढकेलती जाती हैं और वे नये नये कर्म प्रवाहमें बहते जाते हैं। वहांका वायुमण्डल ही रजोमय है। रजोगुण प्रति क्षण उन्हें कर्ममें प्रवृत्त कराता रहता है। यदि वे क्षणभर कर्म न करें तो व्याकुल हो जाते हैं। उनके अन्दर रहने वाला रजोगुणका भूत क्षणभरमें बड़े बड़े भारी काम पूरा करके फिर सामने आ खड़ा होता है कि और कर्म बतलाओ। वहांके लिये मैं एक कहावतके शब्दों में कह सकता हूँ, कि वहां बुनी बुनाई खाट उधेड़ दी जाती है कि बुनने वालेको कर्म मिले। उनपर कर्मका भूत सवार है। इसका उतरना दुष्कर है, कर्म करते करते मर जानेपर ही यह भूत उतरता दीखता है। यह उतरे भी क्यों? जब कि इस भूतको प्रवृत्त करानेवाली अन्दरकी कामनायें, इच्छायें अतर्पणीय हैं। न ये कामनायें कभी तृप्त होंगी और न यह भूत

कभी उतरेगा। परन्तु यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि कर्मके इस अतियोगसे उनका जो नाश हो रहा है उसके होते हुवे भी कर्म ही से उन्होंने जो बड़े २ लाभ पाये हैं उन्हें सब दुनिया जानती है। वे कर्मके बलसे इस समय दुनियाके राजा हैं, प्रभु हैं, चाहें जो कर सकते हैं। उन्होने समुद्रको भी वश कर रखा है। अग्नि, वायु आदि देवोंको अपना नौकर बना रखा है। यह सब कर्मको ही विभूति है।

❀ ❀

परन्तु 'कर्म' का 'योग' क्या होता है इसे बतलानेसे पहिले अपने भारतवर्षकी कर्मके विषयमें जो पश्चिमसे बिलकुल विपरीत अवस्था है, जरा उसपर भी एक दृष्टि डाललें। यहां क्या है? हमारे देशमें योरोपसे विपरीत तमोगुणका राज्य है। लोग आलस्यमें पड़े हुवे, झूठे आरामकी सदा चाह करते हुए निरन्तर कर्मसे जी चुराया करते हैं। हम भारतवासी कुछ भी नहीं करना चाहते। केवल आदतके अनुसार हम कुछ थोड़ेसे कर्म किया करते हैं (बल्कि यों कहना चाहिये कि ये कर्म हमसे न जाने क्यों होते जाते हैं)। इनमें सबसे मुख्य है बातें करना, बात बनाना। दूसरा है तमाखू पीना या खाना। ऐसे ही दो चार कर्म हैं जो कि हम अपनी आदतके वश किया करते हैं। इनके अतिरिक्त यदि हम कुछ कर्म करते हैं तो वह मजबूरन अंग्रेजोंकी तोपों और जेलोंके भयसे या किसी लालचसे। ये हमारे विदेशी शासक ज़रूर (भय दिखलाते

हुवे या कहीं २ लालच देकर) हमें जिधर चाहते हैं हांका करते हैं और इस प्रकार थोड़ी देरके लिये हमारे तमोगुणका भंगकर देते हैं। परन्तु इन दो बातोंके (स्वभाववश, और अंग्रेजोंके भयवश, जो हमें करनी पड़ती हैं) अतिरिक्त हम कुछ नहीं करना चाहते। अपने भलेके लिये भी अपने आप कुछ कर्म करना हमारे लिये अति कठिन है। हम ऐसे जड़ हो गये हैं कि हमारे कई पूज्य नेता देशके लिये कुछ कर्त्तव्य करनेका उपदेश देते चिल्लाते २ मर गये, कई अनेता हो सावित होगये; पर हम किसी तरह करवट नहीं बदलते—हिलते तक दिखाई नहीं देते। हमारा रजोगुण यदि कभी बहुत ज़ोर करता ही है तो हम नींदमें ही अपने भाइयोंको मारनेका कर्म अधिकसे अधिक कर डालते हैं। और कुछ नहीं। हां जैसा कि ऊपर कह चुका हूं कि हमें बातें बनानेकी आदत है, तदनुसार (उदाहरणार्थ) यदि गांधी हमें चर्खा चलानेका सहजसा काम भी करनेको कहता है तो हम यह बात कह देते हैं 'यह तो औरतोंका काम है' पर असलमें हमें यह औरतोंका काम भी इतना भारी प्रतीत होता है कि सचमुच इसे करनेकी अपेक्षा तो हमें मरनेमें ही आराम मालूम पड़ता है। फिर हममें से कोई कह देते हैं, कि 'चर्खेसे क्या होता है हम तलवारसे स्वराज्य प्राप्त करेंगे।' परन्तु यदि कभी तलवारका वास्तवमें समय होगा तो ये लोग या तो कहेंगे कि तलवारकी धार टेढ़ी है या कुन्द और इसमें त्रुटि निकाल देंगे, नहीं तो बहुत सम्भव है भगकर अपने

धर्मशास्त्रका हवाला देकर कह देंगे 'अहिंसा परमो धर्मः'। ऐसी हमारी हालत है। चर्खा तो दूर रहा खद्दर पहिननेके विषयमें कहें जो इससे भी आसान है तो हम इससे भी बढ़िया बात बनाकर टाल देते हैं। मतलब यह कि हमसे छोटेसा छोटा काम भी अपने आपसे कराना लगभग असंभव है। अंग्रेज लोग अपने कोडोंसे हमसे कर्म करवालें यह और बात है, पर अपनी इच्छासे अपनी जड़ताका कभी भंग करना नहीं चाहते। हमारी नस नसमें आलस्य भरा हुवा है।

❀ ❀

अपने देशकी इस दशाको देखकर कई बार क्रोध आता है और कई वार रोना आता है। रोना आने पर प्रायः श्रीकृष्ण याद आते हैं और उनका 'कर्मयोग' याद आता है। योरोपकी इस उपर्युक्त कर्मरतिको भी देखकर कृष्णका कर्मयोग ही याद आता है। क्योंकि कर्मयोगका मतलब है ठीक तरह कर्म करना। एक तरफ पश्चिमकी घोर कर्मण्यता है और दूसरी तरफ भारतकी घोर अकर्मण्यता; इन दोनोंके मध्यमें कर्म-योगका परम कल्याणकारी मार्ग चलता है। यह कर्मयोग क्या है? कर्मका योग करना, कर्मको योगकी तरह साधना। अपने लिये नहीं किन्तु कर्त्तव्य जानकर कर्म करना। कर्म भी करना है पर इच्छाओंसे (कामनासे) प्रेरित होकर नहीं। इसे ही निष्काम कर्म कहते हैं। गीताके शब्दोंमें कहें तो 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कुशलतासे कर्म करना ही कर्मयोग

है। यह कुशलता, निःस्वार्थता, निष्कामतामें ही है। रवीन्द्र ठाकुरने बड़ा अच्छा कहा है, कि कर्मको निष्काम बनाकर हमारे ऋषियोंने मानों सर्पिणीके मुँहसे दांत निकाल दिये हैं। इस कर्म सर्पणीसे खेलना भी पर काटे न जाना इस कौशलका नाम ही कर्मयोग है। यह कामना ही हमें डस लेती है। यह पहिले हमें आसक्त करती है, फँसाती है और फिर हमें काटती (दुःखी करती) है और नाश कर देती है अतः अगले जो बड़े २ श्रेष्ठ कर्म हैं उन्हें करनेसे भी हमें वञ्चित रखती है। इस आसक्ति व कामके हटते ही हम निर्द्वन्द्व और सम हो जाते हैं, निर्भय होजाते हैं अतः हमसे बड़े भारीसे भारी काम बड़ी आसानीसे हो जाते हैं। इसलिये भारतवासियोंकी जड़ता, अकर्मण्यताको हटानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि उन्हें कोई कर्मयोग सिखादे, यह सिखादे, कि 'कर्म करो, बिना स्वार्थके बिना फल प्राप्तिकी इच्छाके कर्म करो' इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं। जो सुधारक यह समझते हैं कि भारतकी अकर्मण्यता हटानेके लिये भारतवासियोंको योरोपका अनुकरण करना चाहिये-अपनी आवश्यकतायें, कामनायें बढ़ानी चाहिये और फिर उनकी पूर्तिके लिये बड़े बड़े भारी कल कारखाने खड़े करके कर्म करना चाहिये, वे सुधारक न केवल घोर कर्मण्यताकी हानियोंसे अभी अपरिचित हैं पर वे यह भी नहीं देख पाते हैं कि भारतवासियोंको योरोपकी तरह घोर कर्मण्य बनाना यदि अभीष्ट हो तो भी कर्म शुरु करानेके लिये तो उन्हें कर्मयोग

ही कराना होगा, क्योंकि वे अभी कर्म तो करना ही नहीं चाहते। यह ठीक है कि उन्हें योरोपके कर्मरत कार्लाइल और कार्लमार्क्स दिखायी देते हैं और हमारे कर्मयोगी कृष्ण नहीं दिखायी देते, इसलिये उन्हें योरोपकी घोर कर्मण्यता प्रिय लगती है। पर उन्हें यह तो देखना चाहिये कि जड़ भारतवासियोंका उद्धार प्रारम्भ ही कैसे हो सकता है। बिना कर्मयोगके इन अनिच्छुकोंसे कर्म कैसे कराया जाय। इसलिये हर हालतमें भारतवासियोंका उद्धार कर्मयोगके बिना नहीं हो सकता। जब तक कि उन्हें यह न सिखाया जाय कि 'तुम्हारी इच्छा है या नहीं यह मत देखो, केवल कर्त्तव्य है इसीलिये कर्म करो' तब तक वे कोई भी कर्म नहीं प्रारम्भ कर सकते। परन्तु यदि इसके बाद भी हम भारतवासी निष्काम कर्म कर सकें तब तो बहुत अच्छा है, हमारा कल्याण ही कल्याण है। यही एकमात्र कर्मका सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

❀ ❀

इसलिये जब भी भारतके पुनरुद्धारके लिये चिन्ता होती है तब यह कर्मयोग ही एकमात्र उपाय सामने दिखाई देता है। पर साथ ही प्रश्न उठते हैं कि हमसे इस कर्मयोगको करवावें कौन ? इस वंशीको बजावे कौन ? वे कृष्ण कब जन्मेंगे जो कि कर्मयोगकी इस वंसीमें फूँक लगाकर इसकी तानपर नाच करनेवाले सैकड़ों अन्य कर्मयोगियोंको भी कर्मक्षेत्रमें खड़ा कर देंगे ? ऐसे प्रश्न शायद सैकड़ों हृदयोंसे उठकर इस

भारतीय आकाशमें लुप्त हो जाते हैं, मानो उत्तर लानेके लिये आनेवाले कृष्णको ढूढ़ने चले जाते हैं।

वास्तवमें यह वंसी बजानेवालेका प्रश्न ही मुख्य है। इस वंसीको तो जो कोई भी गीता पढ़नेका यत्न करे देख सकता है। मैं समझता हूँ मैंने ही यह वंशी पाठकोंको बता दी है और यह इतनी सादीसी वस्तु है, कि मैंने इसकी रचना भी पाठकोंको समझा दी है। पर क्या वंशी इतनेहीसे समझमें आसकती है? यह तो तब समझमें आवेगी जब कि कोई इसे भारतवर्षमें बजाकर दिखला दे। बस इसे बजा सकनेवाले विरले आदमीका नाम ही कृष्ण है, जो उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर है। वह चाहे किसी नामसे प्रकट हो, पर जो भारतवासियोंसे कर्मयोग करवादे वही हमारा आनेवाला कृष्ण है। कृष्णका अर्थ है अपने कर्मयोगसे सैकड़ों कर्मयोगियोंको बना सकनेवाला महाकर्मयोगी। इसीकी कर्मयोगकी वंसी हमें बचा सकती है।

❀ ❀

पर शायद हमने यह समझा नहीं है कि इस कर्मयोगके बिना हमारा किसी तरह भी उद्धार नहीं हो सकता। ज़रा अलंकारको छोड़कर भी यह मूलकी बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। हमारी हालत क्या है? हम दरिद्रतामें इतने फँसे हुये हैं और हम इतने निर्बल हो गये हैं, कि रुपयों-का और आरामका ज़रासा भी प्रलोभन हमारे लिये बहुत अधिक पर्याप्त है। और ये प्रलोभन हमारे विदेशी शासक सदा

हमारे सन्मुख प्रस्तुत रखते हैं, जिसका फल यह होता है कि इनके सामने उद्धारके सब उपाय निष्फल रहते हैं, क्योंकि इन उद्धारके उपायोंमें तो कोई प्रलोभन नहीं, बल्कि कुछ न कुछ आराम या पैसेका त्याग ही करना आवश्यक होता है। अतः प्रलोभनकी जीत होती है और हम इस दलदलमें और फँस जाते हैं, इस तरह कोई भी कार्य्यक्रम सफल नहीं होता। सफलता का तो एकमात्र उपाय यही है, कि किसी तरह अपने वैयक्तिक हानि लाभको बिलकुल बिना देखे देशके लिये कर्तव्य कर्म करते जाँय। यही है कर्मयोग। चर्खेके कार्य क्रममें हमें कोई प्राण देनेको नहीं कहा गया है। खद्दर पहिनना और चर्खा चलाना, क्या इससे भी आसान कोई कार्यक्रम स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये बताया जा सकता है। पर हम इतना थोड़ा सा भी त्याग नहीं कर सके, इससे स्पष्ट है कि हम कितने फँसे हुए हैं। क्या स्वाधीनताके लिये इससे भी कम त्यागके उपायकी आप आशा करेंगे। इसलिये यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी कार्यक्रम हो बिना कर्मयोगके हम उसे इस हालतमें कभी नहीं चला सकते। किसी तरह हमें केवल कर्त्तव्य समझ कर (और सब बातोंसे आँख मीचकर) कर्म करना होगा तभी हम इस दलदलसे निकल सकते हैं, नहीं तो इसमें और फँस-कर संसारसे अपना नाम ही मिटा देना होगा। ज़रा अपनी इस हालतको अच्छी तरह अनुभव कीजिये, तब आपके मुख-से यही निकल पड़ेगा 'कर्मयोग' 'कर्मयोग'। हम स्वयं कर्म-

योग नहीं कर सकते। कोई कृष्ण आकर हमसे निष्काम कर्म करवावे, हमसे कामनायें छुड़वावे और शुद्ध कर्म करवावे, तभी-केवल तभी-हम बच सकते हैं। नहीं तो हम दिनों दिन नीचे ही जा रहे हैं जहाँसे कि निकलना दिनों दिन असम्भव होता जाता है।

❀ ❀

तो क्या हमारी यह चरम पतनकी अवस्था, हमारे ये गुलामीके क्लेश, हममें यह अधर्मका अभ्युत्थान तथा उससे होनेवाले ये घोर दुःख अब भी हमारे लिये कृष्णका जन्म न करा सकेंगे? भारत माताकी यह वेदना प्रसववेदना ही क्यों न साबित हो? नहीं, अब अवश्य कृष्ण प्रकट होंगे। केवल हमें उनके स्वागतके लिये तैयार हो जाना चाहिये। भारतवासियो! अपने इन कष्टोंकी अग्निमें तप कर अब जल्दी अपनेको जितना हो सके कर्मयोगी बना लो। यही उनके स्वागतकी तैयारी है। और तप (कष्टोंका सहन, इनमें सम रहना) यही कर्मयोगी बननेका साधन है। जब इस देशमें तपस्वी कर्मयोगियोंकी संख्या पर्याप्त हो जायगी, तभी उनके बीचमें महाकर्मयोगी कृष्ण भी प्रकट हो जायँगे। सावधान रहना, यह विषम अवसर है। यदि हमने तैयारी न की तो सम्भव हो सकता है, कि यह वेदना प्रसववेदनाकी जगह माताकी मृत्यु-वेदना हो जाय। इसलिये अपनेको कर्मयोगी बनानेमें (तपस्यामें) कोई कसर न उठा रखोगे तो ज़रूर कल्याण होगा।

❀ ❀

कई बार मनमें आता है कि वर्त्तमान 'मोहनदास कर्मचन्द्र' ही वे हमारे अभिलषित कृष्ण क्यों न निकले। यह तो भविष्य बतलायेगा, कि इस ज़मानेमें उद्धारके लिये उत्पन्न हुए कृष्ण कौन थे, पर यदि गांधी भी हमारा उद्धार करनेमें असमर्थ रहें तब या तो हमारा उद्धार ही नहीं होना है या इनसे भी बड़े कर्मयोगी कोई पैदा होंगे। नहीं, उद्धारक कृष्ण तो प्रकट होवेंगे ही, केवल हमें पहिले इन कष्टोंसे अपने आपको तपाकर तैयार रखना चाहिये। ऐसा तपाना चाहिये कि बहुत से छोटे कर्मयोगी बन जाँय, कुछ मध्यम दर्जेके कर्मयोगी बन जाँय और थोड़े से पूरे कर्मयोगी बन जाँय। बस फिर मोहन प्रकट होंगे और सबको मोहित करनेवाली मोहनकी मुरली भारतमें गूँजेगी और एक नृत्य शुरू होगा। जेल जानेसे पहले महात्मा गाँधीने एक पतंगनृत्य (Death Dance) का वर्णन किया था जो कि भारतमें हो रहा है। इसीकी प्रतिक्रियामें यह आनेवाले कृष्णकी मुरलीकी तान पर होनेवाला 'कर्मयोग महानृत्य' भारतमें चलेगा। जब वंसी बजेगी तो उसकी मस्तीमें आकर छोटे छोटे लाखों कर्मयोगी खद्दर पहननेके कर्तव्यके लिये खद्दरका मोटापन, इसकी महँगी, इसका जल्दी मैला हो जाना, यह सब भूल जायँगे, चर्खा चलानेके लिये आरामकी इच्छा और समयाभावको भूल जायँगे, मस्तीमें नाचनेवाले वकील अपनी वकालतकी आमदनी भूल जायँगे और मुकदमेबाज अपनी डिग्रियाँ करानेकी चाह भूल जायँगे। बस

केवल अपना कर्तव्य दीखेगा, शेष उन्हें कुछ भी न दीखेगा। यही नहीं, बल्कि बड़े बड़े नचैय्ये न केवल जेलोंके कष्टोंमें रसका आस्वादन करेंगे अपितु हँसते हँसते फाँसी भी चढ़ेंगे और गोलियोंके आगे छाती खोलकर खड़े होंगे। आहा! यह मोहन की मुरली पर चलनेवाला क्या ही अलौकिक देवोंका महानृत्य होगा। उस दिन भारतके जन्म जन्मान्तरोंके पाप क्षण भरमें धुल जायँगे।

एक ऐसा छोटा सा नृत्य गांधीने भी गत वर्षोंमें करवाया था, जिसमें कि त्यागशूरोंने लाखोंकी आमदनियाँ भुला दी थीं और वीरोंने जेल भर दिये थे। पर ईश्वर करे कि अबकी बार का महानृत्य एक पूर्ण नृत्य हो। 'वंसीवाले कृष्ण'की वंसी ऐसी बजे कि सारा भारत हिल जाय और उसकी पराधीनताकी सब बेड़ियाँ कटकट कर गिर जांय।

हे कृष्णके प्यारो! तैयार हो जाओ।

तरंग २१

कुलिओं की माता

क्या तुम जानते हो कि जिस तरह अंग्रेज लोग 'दुकानदारोंकी कौम' (Nation of Shoh-keepers) कहलाते हैं और जिस तरह जर्मन लोग 'सिपाहिओंकी कौम' (Nation of Soldiers) कहलाने लगे थे वैसे हम भारतवासी क्या कहाते हैं ? हमारा नाम है 'कुलिओंकी कौम' (Nation of Coolies)। हम तीस करोड़ बोझा उठाने वाले कुली हैं। हमने ३०००००००० होकर क्या किया ? क्या हम इतनी बड़ी संख्या में भार ढोनेके लिये ही पैदा हुवे हैं ? ओह ! कुलिओंकी माता, कुलिओंकी दुखिया दीन माता, जो कि तीस करोड़ बालक रखती हुई भी उनके साथ दिनरात 'भार ही वहन करती' है। अच्छा होता कि हम संख्यामें इससे आधे, चौथाई बल्कि दसवां हिस्सा होते—तीस करोड़की जगह केवल तीन करोड़ ही होते—किन्तु कुली न होते; 'मनुष्य' होते, मांके (पौरुष-युक्त) 'पुरुष' सन्तान होते, वीर (पुत्र) होते। तब हमारी माता हमारे भरोसे रात भर निश्चिन्त हो सो तो सकती। सच है:—

सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी।
एकेनैव सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया॥

❀ ❀

वास्तवमें हमने अपनी माताको 'सिंही' के स्थानपर 'गर्दभी' ही साबित किया है। सचमुच संख्यावृद्धि वृथा है। जहां 'गुण' (quality) होता है वहां 'संख्या' (quantity) की आवश्यकता नहीं होती। शेरका बच्चा एकही पर्याप्त है। भारत माताके इतने पुत्रोंकी जगह तिलक गांधी जैसे थोड़ेसे ही 'वीर' पुत्र रहते तो उसके सब दुःख मिट जाते। इसलिये आओ अब अपना सब ध्यान, सब सामर्थ्य, सब वीर्य 'संख्या' बढ़ानेके स्थान पर 'गुण' बढ़ानेमें ही खर्च करें। ठीक कहा जाता है 'गुलामोंकी संख्या मत बढ़ाओ'। स्वामी रामतीर्थ ने तो अपने प्रसिद्ध 'ब्रह्मचर्य' व्याख्यानमें कहा था कि 'क्या भारतवर्षको कालकोठरी ही बनाकर छोड़ोगे'। स्वामी सत्यदेवने 'राष्ट्रीय संध्या' में एक प्रार्थना यह भी लिखी थी 'मैं देशके लिये ब्रह्मचारी रहूंगा'। यह प्रार्थना प्रतिदिन करो और ब्रह्मचर्य द्वारा माताके 'शेर' बालक बनो।

❀ ❀

हम 'भार वाही' कुली क्यों हो गये हैं? क्योंकि हम अपना बोझ अपने आप नहीं उठा सकते। जो मनुष्य अपना बोझ अपने आप (स्वेच्छासे) उठाता है वह तो 'स्वाधीन पुरुष' है और दूसरोंका भी बोझ अपने आप स्वेच्छासे उठाता है

वह 'परोपकारी' है ॥ किन्तु जो दूसरोंका बोझ दूसरोंकी इच्छासे उठाता है वह 'कुली' है। और मनुष्य दूसरेकी इच्छाके अधीन तब होता है जब कि उसमें इच्छाको स्वाधीन रखनेकी शक्ति नहीं रहती। इसलिये मैं कहता हूं कि हमारे कुली होजानेका कारण यह है कि हममें अपना बोझ अपने आप उठानेकी शक्ति नहीं रही।

अपने राज्यका अपना बोझ हम स्वयं नहीं उठा सकते इसीलिये हम कुली बनकर नानातरहसे दूसरोंका बोझ उठा रहे हैं। हम तीस करोड़ कुली बनकर मांचेस्टरकी मिलोंका बोझ उठा रहे हैं, (यदि हम 'कुली लोग' आज विदेशी वस्त्र पहिननेसे हड़ताल करदें तो कल ही इन मिलोंमें ताले पड़जांय)। ब्रिटिश हितके लिये हिन्दुस्तानमें रखी हुई बड़ी फौजके महाव्ययका भारी बोझ कर (Tax) देदेकर हम ही गरीब भारतवासी 'कुली' उठा रहे हैं। एवं और नाना प्रकारके कर देते हुवे, सरकारी नौकरियां करते हुवे तथा अन्य सैकड़ों तरहसे सहयोग करते हुवे—'विदेशी नौकर शाही' के इस सब बड़े भारी बोझको उठानेकी कुलीगिरी हम भारतवासी समूहरूपसे कर रहे हैं और अपना कुली जीवन बिता रहे हैं।

ऐ मेरे कुली भाइयो! मैं रोकर कहता हूं कि अब यह कुलीगिरी बस करो। यह अच्छा नहीं। पराई इच्छासे (पराधीनतासे) दूसरोंका बोझ उठाना छोड़, अपना बोझ

स्वयं उठानेवाले बनजाओ और किसी तरह अपनी माताको 'कुलिओंकी माता' की जगह वही 'वीरोंकी माता' बना लो।

सबसे पहिले अपने खद्दरका थोड़ासा किन्तु खुरदरा भार अपने कन्धों पर स्वेच्छासे उठाकर मांचेस्टरकी मलमलका मुलायम बोझ अपने शरीर पर ढोनेकी कुलीगिरी तुरंत त्याग दो (कुलीगिरीकी इस दासतासे मिलनेवाले दो पैसे भी इसी के साथ जाने दो)। अपना यह एक बोझ स्वयं उठाकर देखो। यदि इसे उठालोगे तो थोड़े दिनोंमें ही देखोगे कि अपने राज्यका अपना बड़ा भारी बोझ भी स्वयं उठानेकी शक्ति तुममें है और तब तुम सब कष्ट सहन करना स्वीकृत करलोगे, पर दूसरोंके दासतापूर्वक दिये इस नौकरशाहीके बोझको आगे घड़ी भर भी उठानेकी कुलीगिरी न कर सकोगे।

❀ ❀

आओ हम फिर 'कुलिओं' की जगह सचमुच 'वीर' बन जांय। अपना बोझ स्वयं उठालें। इसमें क्या है?

गुरुगोविन्दसिंहने कहा था 'चिड़ियोंको मैं बाज़ बनाऊं'। और उन्होंने 'चिड़ियों' से 'बाज़' बना दिये थे। हम यहां भारतवासी आज भी फिर चिड़ियोंसे बाज़ बन सकते हैं, गदहोंसे सिंह बन सकते हैं, कुलिओंसे वीर बन सकते हैं, गुलामोंसे मज़बूत बन सकते हैं और हमारी माता 'कुलिओं की माता' की जगह 'वीर माता' बन सकती है, 'रोनी' की जगह रानी बन सकती है।

वह 'परोपकारी' है ॥ किन्तु जो दूसरोंका-बोझ दूसरोंकी इच्छासे उठाता है वह 'कुली' है। और मनुष्य दूसरेकी इच्छाके अधीन तब होता है जब कि उसमें इच्छाको स्वाधीन रखनेकी शक्ति नहीं रहती। इसलिये मैं कहता हूं कि हमारे कुली होजानेका कारण यह है कि हममें अपना बोझ अपने आप उठानेकी शक्ति नहीं रही।

अपने राज्यका अपना-बोझ हम स्वयं नहीं उठा सकते इसीलिये हम कुली बनकर नानातरहसे दूसरोंका बोझ उठा रहे हैं। हम तीस करोड़ कुली बनकर मांचेस्टरकी मिलोंका बोझ उठा रहे हैं, (यदि हम 'कुली लोग' आज विदेशी वस्त्र पहिननेसे हड़ताल करदें तो कल ही इन मिलोंमें ताले पड़जांय)। ब्रिटिश हितके लिये हिन्दुस्तानमें रखी हुई बड़ी फौजके महाव्ययका भारी बोझ कर (Tax) देदेकर हम ही ग़रीब भारतवासी 'कुली' उठा रहे हैं। एवं और नाना प्रकारके कर देते हुवे, सरकारी नौकरियां करते हुवे तथा अन्य सैकड़ों तरहसे सहयोग करते हुवे—'विदेशी नौकर शाही' के इस सब बड़े भारी बोझको उठानेकी कुलीगिरी हम भारतवासी समूहरूपसे कर रहे हैं और अपना कुली जीवन बिता रहे हैं।

ऐ मेरे कुली भाइया! मैं रोकर कहता हूं कि अब यह कुलीगिरी बस करो। यह अच्छा नहीं। पराई इच्छासे (पराधीनतासे) दूसरोंका बोझ उठाना छोड़, अपना बोझ

स्वयं उठानेवाले बनजाओ और किसी तरह अपनी माताको 'कुलिओंकी माता' की जगह वही 'वीरोंकी माता' बना लो।

सबसे पहिले अपने खद्दरका थोड़ासा किन्तु खुरदरा भार अपने कन्धों पर स्वेच्छासे उठाकर मांचेस्टरकी मलमलका मुलायम बोझ अपने शरीर पर ढोनेकी कुलीगिरी तुरंत त्याग दो (कुलीगिरीकी इस दासतासे मिलनेवाले दो पैसे भी इसी के साथ जाने दो)। अपना यह एक बोझ स्वयं उठाकर देखो। यदि इसे उठालोगे तो थोड़े दिनोंमें ही देखोगे कि अपने राज्यका अपना बड़ा भारी बोझ भी स्वयं उठानेकी शक्ति तुममें है और तब तुम सब कष्ट सहन करना स्वीकृत करलोगे, पर दूसरोंके दासतापूर्वक दिये इस नौकरशाहीके बोझको आगे घड़ी भर भी उठानेकी कुलीगिरी न कर सकोगे।

❀ ❀

आओ हम फिर 'कुलिओं' की जगह सचमुच 'वीर' बन जांय। अपना बोझ स्वयं उठालें। इसमें क्या है?

गुरुगोविन्दसिंहने कहा था 'चिड़िओंको मैं बाज़ बनाऊं'। और उन्होंने 'चिड़िओं' से 'बाज़' बना दिये थे। हम वीर भारतवासी आज भी फिर चिड़िओंसे बाज़ बन सकते हैं, गदंभोंसे सिंह बन सकते हैं, कुलिओंसे वीर बन सकते हैं, गुलामोंसे राजपुत्र बन सकते हैं और हमारी माता 'कुलिओं की माता' की जगह 'वीर माता' बन सकती है, 'चेरी' की जगह रानी बन सकती है।

और बनना क्या है? यह राम और कृष्णकी माता, ऋषिओं मुनिओंकी माता, भीष्म और अर्जुनकी माता, सीता और सावित्रीकी माता, अभी गुज़रे प्रताप और शिवकी माता क्या यह कभी 'कुलियोंकी माता' कहानेके योग्य है? केवल 'स्मृति' होनेकी देर है। जब दासी रानी होसकती है तो रानी को ही फिर रानी बनानेमें क्या घबराहट है, क्या मुश्किल है? क्या विलंब है?

❀ ❀

हे भारतवासी! ज़रा देख हम कुली बने हुवे कुपुत्रोंने अपनी माताको बंधवा रक्खा है और अपनी कुलीगिरीकी कमाईमें मस्त हैं। यदि तेरा ध्यान इस तरफ नहीं जाता ता तेरा पूजापाठ किस कामका? माताके इस मोक्षके लिये तू प्रतिदिन कितना यत्न करता है? अपने चौबीस घंटोंमें से कितना समय माताकी पूजा, माताकी सेवामें खर्च करता है? क्या तू समझता है कि माताको (और फिर इस हालतमें!) भुलाकर—विमुख रहकर—तू ईश्वरको प्राप्त होजायगा? अरे भाई! झूठे धर्मके आडम्बर और पाखण्डको दूर हटाकर, भय और पक्षपातके गाढ़ मलोंसे हृदयको शुद्ध करके, पवित्र अन्तःकरणसे देख कि अपनी माताकी सेवा करना ही धर्मोंका सबसे पहिला धर्म है। यही ईश्वरप्राप्तिका मार्ग है, यही जगन्माताकी सेवाका सच्चा साधन है।

इति जगन्मात्रर्पणमस्तु।

कुछ निर्देश

[आशा है इस पुस्तक के निम्न स्थलों को स्पष्ट करने के लिये दिये गये ये कुछ निर्देश पाठकों के अध्ययन में सहायक होंगे। प्रत्येक निर्देश के प्रारम्भ में जो तीन संख्यायें दी गयी हैं उनमें से पहिली **तरंग** की संख्या है, दूसरी संख्या उस तरंग की **भंग** की (जहां एक भंग समाप्त हो दूसरी भंग प्रारंभ होती है उसे सर्वत्र ❀ ❀ ऐसे दो फूलों से प्रकट किया गया है) गिनती बतलाती है तथा तीसरी संख्या उस भंग की **पंक्ति** को सूचित करता है।]

१—२—११ **'इक्कीस हज़ार छ सौ'** एक दिन रात में मनुष्य के श्वास हैं। अर्थात् २१६०० श्वास चलते हैं। (इस हिसाब से प्रतिमिनट १५ श्वास एक स्वस्थ पुरुष के चलते हैं।)

३—३—८ **'यच्च काम... कलाम्'** 'संतोषादनुत्तमसुखलाभः' इस योगसूत्र (२-४२) पर भाष्य करते हुए व्यास जी ने केवल यह उपर्युक्त श्लोक लिख देना ही पर्याप्त समझा है। इस श्लोक का अर्थ है 'संसार में जो काम का सुख है और जो महा भारी दिव्य (देवताओं का, अलौकिक) सुख है, वे सब तृष्णाक्षय के सुख के सामने एक कला (सोलहवीं कला) के भी बराबर नहीं हैं।'

४—१—१ इस भंग में अपक्व, क्षणिक वैराग्य की दशा का वर्णन है।

५—४—३ **'पिंडोरानामी कहानी की लड़की'** देखो हाथर्न 'वंडरबुक' की कहानियाँ।

५—७—७ **बाहर से सुन्दर और मनोहारी** कहानी में इस सन्दूक का ऐसा ही वर्णन है।

५—१३—२ **शिकंजे में कस वाले... तलवाले** ये सब दण्ड पुराने अत्याचारी राजा दिया करते थे ऐसे वर्णन मिलते हैं।

५—१६—६ **'उस बंगाली'** अर्थात् खुदीराम बोस।

५—१६—८ **'दयानन्द का मुख'** प० गुरुदत्त जी ने वर्णन किया है कि स्वा० दयानन्द का

चेहरा मरते समय ऐसा आल्हादित था कि जैसे किसी बिछुड़े हुये परम-मित्र को मिल कर स्वभावतः मुख आनन्द से खिल जाता है।

५—१६—१० **'काले भैंसे पर......लिये'** पुराणों में यम देवता का ऐसा ही चित्र है।

५—१७—४ **'प्रकाशसुधा'** संस्कृत में 'सुधा' शब्द का अर्थ पोती जाने वाली सफेदी, कलई, ऐसा भी होता है। यहाँ यही अर्थ है।

६—२—४ **'अपमानामृत के पिपासु'**। देखो मनु २—१६२ अमृतस्येव चाकांक्षेदपमानस्य सर्वदा।

६-४-१५ **'कामिनी और कांचन'** यह रामकृष्ण परमहंस के प्रसिद्ध शब्द हैं। तीन एषणाओं में से पुत्रैषणा और वित्तैषणा ही क्रमशः कामिनी और कांचन हैं। तीसरी लोकैषणा यही प्रतिष्ठा और यश की इच्छा है। इन तीनों एषणाओं को संन्यासी त्यागता है।

६-६-१५ **'अचल प्रतिष्ठ'** देखो गीता २-७०

६-८-१- **'मलिनजल'** जब कि ईश्वर प्राप्त प्रतिष्ठा दिव्य वृष्टि है तो मनुष्य दत्त प्रतिष्ठा मलिन जल है।

६-९-११, १२ **'वाढ, वाढं'** संस्कृत के इन शब्दों का अर्थ है 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'।

६-१०-१६ **'जलसेक'**= पानी से सींचना।

७-१-६ **'महाव्रत'** देखो योगदर्शन २—३१।

७-१-१५ **'बड़े प्रलोभन का समय है'** यह उस प्रलोभन का वर्णन है जो कि प्रायः सब महात्माओं को सिद्धि से पूर्व प्राप्त हुआ है।

७-२-१४ **'कोठी'** अंग्रेज व्यापारियों ने प्रारंभ में एक कोठी ही बनायी थी।

७-४-८ **'महायुद्ध'** जैसे महाभारत का युद्ध।

७-५-५ **'उसके महाराज की'**=नैपोलियन की।

८—२-१०, ११, १२ **सत्य, रज, तम**। देखो गीता १४ अध्याय के ५,६,७,८,९ श्लोक।

८—२—२३ **'उठो, देखो

यह है' इसके परिचायक दो प्रसिद्ध वाक्य यह हैं।

(I) अपना Standard of life ऊचा करना चाहिये।

(II) Necessity is the Mother of inveution.

११–९–२ **'कपिलमुनि के शासन में जाओ'** साख्य शास्त्र पढो। शासन, अनुशासन करने से ही शास्त्र का नाम 'शास्त्र' है।

११–९–३ **'तीन प्रकार के ताप'** = आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक॥ साख्य **प्रथम** कारिका।

११–९–४, ५ **एकान्त और अत्यन्त**। देखो साख्य की प्रथम कारिका।

११–९–१२, १३ **'अवश्य'** = एकान्त। 'फिर कभी ··रहता' = अत्यन्त।

११–९–२० 'औषधि' शब्द का यही अर्थ है।

११–११–५ **जो जैसी··· देते हैं'** = आन्दोलनपेशा लोग।

११–१३–१ देखो १४–४–२९ में उद्धृत मनु श्लोक और गीता २–७· का चौथा पाद।

११–१६–९ **'अनिकेत:'** देखो गीता १२–१९।

११–१६–१५ **'पैदा की हुई'** जैसे पुत्र प्यारा होता है।

११–१६–१८ **'कोई दूसरा न आ सके'** यह स्वार्थ, अहंकार, 'अपना आपा' का स्वरूप है।

१–१६–४० **'सुख की वर्षा करो···और'** यह एक गीत की टेक है जो कि गुरुकुल कागडी में प्रति दिन वारी २ से पढाई के प्रारंभ में मिल कर गाये जाने वाले ८ गीतों में एक है।

१२–२–४ **सूत्रों**। सुत्रात्मा वायु की तरफ इशारा है।

१२–४–१२ **प्रेयमार्ग**। कठ उप. २–१, २।

१२–६–२४ **'हिरण्मयपात्र'** ईश उप. का १५ वा मत्र।

१३–३–६ **(खोल) कोश**। अन्नमय आदि प्रसिद्ध पाच कोश।

१३–४–१२ **'पांच प्रकार के सूत्र'**। पीला, सफेद, लाल, हरा और श्याम रंग के पृथ्वी जल तेज, वायु और आकाश के सूत्र

१३–४–१२ **'लाखों प्रकार'** चौरासी लाख।

१३–६–१ यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि यदि विद्युत्पिण्ड पर एक ओर पृष्ठ लगाया जाय तो विद्युत् उस पृष्ठ पर आ जायगी।

१३–६–२ **आत्मा** = मिथ्यात्मा या गौणात्मा।

१३–७–४ **'असली आत्मा'** मुख्यात्मा।

१३–७–६ **'गुफाओं'**। उपनिषद में इनके लिये 'गुहा' आता है

१५—१—११ **'पश्चिमी विद्वान्'** = डा. हेन।

१५–६–१७ **'उपनेत्र'** = ऐनक।

१५–६–२६ **'पूर्वेषामपिगुरु'** योगसूत्र १–२६

१५–८–३३ देखो ऋग्वेद १०-११७–५ १६–१–२९, ३०। गीता ३–१९।

१६–२–७ **'पूर्व रात्र में… लिये'**। प्राकृतिक चिकित्सा में यह स्वास्थ्य सिद्धान्त है तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये भी नियम है कि रात्रि के पहिले आधे में जितना सोद लें वह इसके उतना अच्छा है।

१६–२.५ **अवसिताधिकार** देखो योग शास्त्र।

१६–३–७ **'गुणातीत'** देखो गीता अध्याय १४ श्लोक २० से २५

१६–३–२९ **'बड़ा ह्रास'** देखो कुसुमांजली स्तवक २, कारिका ३

१६–३–२४,३५ **आयु घटती है**। यह मनु का वचन है।

१७–३–७, ८ यह 'न्यूटन' ने अपने विषय में कहा है।

१७–८–९ 'अनेकजन्म संसि……' देखो गीता ६–४५

१८–१–२०, २२ **'जीवन' 'अमृत'** संस्कृत में जीवन और अमृत ये दोनों जल (पानी) के नाम हैं।

१८–२–१९ **'और सब कुछ …जाता है'**। मुण्डक उप० १–२। छान्दोग्य ६–१–२।

१९–२–१९ गीता २–१३।

१९–२–२८ ऋग्वेद १०-११७-७

१९–४–१२ गीता ३–१२

१९–८–० यह आठवां भंग १९–५–८ से लिखे 'और न हो सकता है' इस वाक्य की व्याख्या

है। 'न होना चाहिये' इसकी व्याख्या अब तक हुई है।

१९-११-४ **'करोड़ो भाई'** इग्लैंड के स्वतंत्र मजदूर दल ने हा लिखा है 'सर विलियम हंटर जैसे ऐंग्लोइंडियन की अधिकार युक्त गिनती के हिसाब स कोई चार कराड़ मनुष्य दिन म एक ही मरतबा खाकर जावन बिताते हैं। सर चार्ल्स इलियट की एक और गिनती के हिसाब से भारत के किसान लोगों में से आधे लोग, जिन्हे मि० जि० के० गोखले ने सात करोड़ के लगभग माना था, हमेशा भूखे रहते हैं। वर्ष में कभी उन्हें एक बार भी पेट भर कर खाना नहीं मिलता है—इसमें पेट भर कर खाने की खुराक भारतीय कैदियों को जो खुराक दी जाती है उससे अधिक नही गिनी गयी है'।

१९-१२-११, १२ 'ये लार्ड सेलिस्बरी के शब्द हैं।

२१-१-११ **'भार ही वहन करती'** श्लोक के 'भारं वहति' शब्द स्मरण कराने के लिये लिखा है।

२१-१-१५ **'वीर'** (पुत्र) संस्कृत में वीर शब्द का अर्थ 'पुत्र' होता है।

२१-१-१७, १८ गधी अपने दसों पुत्रों के साथ भार ही ढोती है सिंही अपने एक ही सुपुत्र के कारण निर्भय होकर सोती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूंकि प्रत्येक पुस्तकें वी० पी से भेजनेमें पोस्टेजके अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंका पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च। वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई दो रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक ।।

(१) जो सज्जन मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तके लेना चाहें वे ऊपर लिखे नं० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें।

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म० गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ।।।) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ।=) (४) भारतके स्त्री-रत्न पृष्ठ ४०२ मूल्य १=) (५) व्यावहारिक सभ्यता पृष्ठ १०८ मूल्य ।)।। (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तके (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग पृष्ठ १५२ मूल्य ।=) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२४ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ९६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मूल्य ।।-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेकस्विनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ।।) (६) तरंगित हृदय-पृष्ठ १७० मूल्य ।≡)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्ठपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार ही मूल्य लिया जायगा।

पता—सस्ता साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

भारत के हिन्दू सम्राट्

लेखक

चन्द्रराज भंडारी 'विशारद'

प्रकाशक—
जीतमल लुणिया,
हिन्दी साहित्य मंदिर, बनारस।

मुद्रक—गणपति कृष्ण
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रे
बनारस सटी। १९९

श्रीयुत डा० अम्बालालजी शर्म्मा वैद्यशास्त्री

वणिक प्रेस, कलकत्ता ।

समर्पण

श्रीमान् डा० अम्बालालजी शर्मा,

वैद्यशास्त्री की

पुनीत सेवा में—

उनके अखंड प्रेम, महती कृपा एवं सरल स्नेह
के उपलक्ष्य में लेखक का यह कृति [illegible]
श्री [illegible] की तरह मित्र के
उपहार का भार,

[illegible]

सादर समर्पित
है

चन्द्रराज भंडारी

प्रस्तावना

का अभाव भी कहें तो अनुचित न होगा। ऐतिहासिक युग में भारतवर्ष के अन्दर बहुत से राजा महाराजा और महापुरुष हुए, पर उनका क्रमबद्ध इतिहास न मिलने से, कइयों के तो नाम भी विस्मृति सागर मे विलीन हो गये।

ईरान के बादशाह दारा और यूनान के सिकन्दर ने भारत-वर्ष पर आक्रमण कर उसके कुछ अंश पर अधिकार कर लिया परन्तु उनका नाम निशान तक हमारे किसी इतिहास में नहीं मिलता। यह तो बहुत पुरानी बात रही पर महमूद गजनवी की चढाइयों और सोमनाथ पर के प्रसिद्ध आक्रमण का हमारे यहाँ नामोल्लेख तक नहीं मिलता। हमारे हिन्दू सम्राटों का इतिहास भी इसी प्रकार अन्धकार के गर्भ में विलीन है। उसके लिए पुरानी संगृहीत सामग्री कुछ भी नही है। प्राचीन शोध के प्रभाव ने इस विपय पर कुछ २ प्रकाश अवश्य डाला है पर वह भी सन्तोपजनक नही है। यह निश्चय है कि समय २ पर अनेक ग्रन्थ ऐतिहासिक विवेचन पर लिखे गये थे, पर दैव दुर्वियोग से वे सुरक्षित न रह सके। जो कुछ इस समय उपलब्ध होते हैं उनसे तथा बौद्ध, जैन, यूनानी, चीनी, तिब्बती एवं लंका के विद्वानों के द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों से और प्राचीन शिलालेखों से इस विषय में कुछ २ सहारा मिल सकता है।

मौर्य्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध मंत्री कौटिल्य का लिखा हुआ अर्थशास्त्र उपलब्ध न होता तो हमें उस समय की देश स्थिति, समाज स्थिति, राज्य प्रबन्ध, सैनिक प्रबन्ध, कृषि विभाग, सिंचाई, सड़कें, मर्दुमशुमारी, वाणिज्य, औषधालय, न्याय और खुफिया विभाग आदि विषयों

का कुछ भी ज्ञान प्राप्त न होता। मेगास्थनीज का लिखा हुआ भारतवर्ष का वर्णन भी इस विषय में बड़ा सहायक होता, पर दुर्दैव ने उसे भी नष्ट कर दिया, केवल उसमें से उद्धृत किये हुए अवतरण मात्र अन्य विद्वानों के ग्रन्थों में मिलते हैं। अशोक की धर्म लिपियाँ और अन्य शिलालेख यदि प्राप्त न होते अथवा पढ़े न जाते तो अशोक का वृत्तान्त भी हमारे लिए तो अन्धकार में ही था। अशोक के पश्चात न मालूम कितने सम्राट् ऐसे हुए होंगे कि यदि उनका इतिहास भी सुरक्षित होता तो कितनी ही नई बातों का और उस समय की परिस्थिति का हमें ज्ञान कुछ पता लग जाता। यदि फाहियान का लिखा हुआ यात्रा का विवरण चीन में सुरक्षित न होता तो हमें गुप्तवंशीय सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) के समय की देशस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का साधन ही न रहता। यदि महाकवि बाणभट्ट थानेश्वरी महाराजा हर्षवर्द्धन का चरित्र लिखित न करता, और हुएनसंग के समान विद्वान चीनी यात्री अपने पन्द्रह वर्ष इस देश में व्यतीत न करता तो हर्ष के दिग्विजय, [illegible], धर्म संबंधी विचार, लोगों के आचरण तथा भारतवर्ष के तत्कालीन वृत्तान्त का भी पता न चलता। इस प्रकार हमारे यहाँ के शिलालेखों, ऐतिहासिक ग्रन्थों, तथा विदेशियों के लिखे हुए ग्रन्थों से हमारे यहाँ के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है, और भविष्य में भी और ऐसी बातों के प्रकाशित होने की आशा है।

स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा इसका भी कुछ वृत्तान्त ज्ञात होने लगा है। परन्तु ये सब बातें बहुधा अंग्रेजी भाषा में लिखी गई हैं हिन्दी साहित्य प्रेमियों को उससे बहुत कम अशंका रसास्वादन करने को मिला है। देश और जाति के उत्थान के लिये ऐसे अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों की साहित्य में आवश्यकता होती है। श्री चन्द्रराजजी भण्डारी ने बड़े परिश्रम से हिन्दू सम्राटों के सम्बन्ध की एक पुस्तक लिखी है। उन्होने अपनी सारी पुस्तक मुझे सुनाई। इस पुस्तक को सुनकर मुझे विशेष प्रसन्नता इस बात की हुई कि इस प्रकार के ग्रन्थों की हमारे साहित्य में बड़ी आवश्यकता है। इस शैली के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में यदि प्रकाशित हों तो उनसे इतिहास के एक अपूर्ण अंग की कुछ पूर्ति हो सकती है। चारित्र्य गठन, देशानुराग और जाति तथा देशोन्नति के लिए ऐसी पुस्तको की वृद्धि तथा उनके घर २ प्रचार की कितनी आवश्यकता है यह प्रत्येक स्वदेशप्रेमी भली प्रकार समझ सकता है। मैं इस पुस्तक को कुछ त्रुटियां होते हुए भी बड़े महत्व की समझता हूँ और चूकि इतिहास विषय मे इन युवा लेखक की यह पहली कृति है, इसलिए इसका और भी अधिक आदर करता हूँ।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह ग्रन्थ उच्च कोटि का है। इसमें देश की तत्कालीन स्थिति, राज्यों के और धर्मों के उत्थान और पतन, प्रजा की उन्नति तथा अवनति होने के कारण-जो कि दैशिक शास्त्र, समाज शास्त्र एवं राजनीति शास्त्र के आधार पर बतलाये गये हैं—मनन करने योग्य हैं। एक गुण और इस ग्रन्थ में पाया जाता है वह यह कि परम्परागत दन्त कथाओं पर अन्ध-

विश्वास न कर इतिहास का वास्तविक और प्रमाणिक रूप बत-लाने का यत्न किया गया है। जैसे कि—मौर्य्य चन्द्रगुप्त का शूद्र होना, पुष्यमित्र के द्वारा बौद्धों का हत्याकाण्ड, कुमारगुप्त पर पुष्यमित्रीय जाति का आक्रमण, सम्राट् पृथ्वीराज का दिल्ली के तोमर राजा अनङ्गपाल के यहां गोद जाना, तथा संयोगिता के लिए कन्नौज के प्रतापी गहरवारवंशी राजा जयचन्द्र से लड़ना आदि भ्रममूलक बातों में-जिनका कि कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है और जिनके भ्रम में पड़े बड़े २ लेखक भी पड़ जाते हैं-इस लेखक बच गये हैं। ये सब विषय इस पुस्तक में बहुत छानबीन के साथ लिखे गये हैं। आशा है हिन्दी संसार इसका उचित आदर करेगा।

अजमेर
ता० ३०-९-२४ } गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
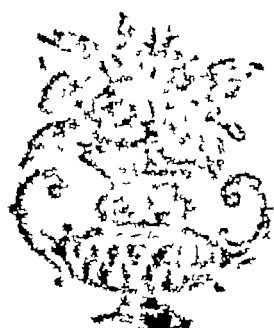
पुस्तक-प्रेमियों के हित की बात
हिन्दी पुस्तकों
की जब कभी आपको आवश्यकता हो
तो
हमारे यहाँ पत्र भेज दीजिये
अब आप इधर-उधर बीसो जगह से पुस्तकें मँगाकर व्यर्थ समय और रुपया मत बिगाड़िये
क्योकि
हिन्दुस्थान में हिन्दी पुस्तकों की हमारी
बड़ी दुकान है
हमारे यहाँ हिन्दी की सब प्रकार की, सब विषयो की पुस्तकें मिलती है। साहित्य सम्मेलन परीक्षा की भी पुस्तकें मिलती हैं। एक पत्र भेज कर
बड़ा सूचीपत्र मुफ्त
मँगा लें। व्यापारियों और लाइब्रेरियों को काफी कमीशन दिया जाता है। पत्र देकर पूछ लें।
पता:—हिन्दी साहित्य मन्दिर,
बनारस सिटी।

भूमिका।

सुधारणा शास्त्र की योजना के निमित्त भौतिक शास्त्रादि जिन भिन्न भिन्न शास्त्रों की आवश्यकता होती है इतिहास भी उनमें से एक प्रधान शास्त्र है। बिना भूतकाल का प्रकाश वर्तमानकाल पर पड़े हम उन वास्तविक तत्वों के जानने में असमर्थ रहते हैं जिनके द्वारा भूतकालिक जातियों की उत्क्रान्ति या अपक्रान्ति होती थी और इस कारण बिना इतिहास ज्ञान के सुधारणा-तन्त्र का एक अंश बिल्कुल खाली रह जाता है। इतिहास सुधारणा-तन्त्र की इसी कमी को पूरी करता है। यह बिल्लौरी शीशे की तरह भूतकाल का प्रतिबिम्ब वर्तमान काल पर डालता है वह भूतकालिक जातियों के उत्थान और पतन का हूबहू चित्र हमारे सम्मुख रख देता है जिसका अध्ययन कर हम लोग वर्तमान-समाज की उन्नति और प्रगति के मार्गों का ज्ञान सहज ही में हासिल कर सकते हैं।

भौतिकशास्त्र में प्रगति होने लगी ज्यों ज्यों मनुष्य अपनी कर्तृत्व शक्ति को पहचानने लगा और ज्यो ज्यों यह अनुभव में आने लगा कि समाज उन्हों कर्तृत्व शक्ति से युक्त मनुष्यों का एक समुदाय है त्यों त्यों इतिहास शास्त्र के जन्म के साधन बनने लगे। जब मानव जाति के अन्तर्गत विचारों की क्रान्ति होने लगी-जब समाज में राज सत्ता और अधिकारी सत्ता के प्रचण्ड तूफ़ान उठने लगे तब समाज को इन सब बातों का ज्ञान कराने वाले और उनकी भविष्यद्‌गति को नियमन करनेवाले एक शास्त्र की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

इस आवश्यकता की पूर्ति करने के निमित्त समाज के नेताओं ने इतिहास-शास्त्र नामक शास्त्र की नीव डाली। इस शास्त्र का महत्व शीघ्र ही लोगों के ध्यान में आ गया, उन्होंने जान लिया कि यह शास्त्र भूतकाल की अतीत स्मृति पर और भविष्य की अदृष्ट सृष्टि पर ज्ञान की किरणें डालकर उन्हें प्रकाशित करता रहता है।

वास्तव में देखा जाय तो इतिहास से मनुष्य जाति का बहुत कुछ उपकार सम्पन्न होता है। इतिहास मनुष्य जाति के छिपे हुए रहस्यों को प्रकट करने का एक अमोघ साधन है। सुप्रसिद्ध लेखक फ्रेडरिक हैरिसन् अपने "meaning of history" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

"उन्नति के तत्वों का ज्ञान उन तत्वों के पूर्व परिणाम पर अवलम्बित है, और उन पूर्व परिणामों के जानने का एक मात्र साधन इतिहास है।"

हिगेलस लिखते हैं कि—"इतिहास शिक्षक की तरह जगत् में होने वाली अशुभ घटनाओं को संगृहीत कर उनके द्वारा समाज को बतलाता है कि ये घटनाएं प्रकृति का अमुक नियम उल्लंघन करने से हुई हैं। यदि अब समाज को इस प्रकार की घटनाओं से बचाना है तो प्रकृति के अमुक नियम का पूर्णतः पालन करना चाहिए। वह बायस्कोप की तरह अतीत काल की सम्पूर्ण शुभाशुभ घटनाओं का चित्र आखों के सम्मुख खींच देता है। केवल स्थूल रूप से ही नहीं प्रत्युत बहुत सूक्ष्म रूप से इतिहास

तत्कालीन समाज की रहन सहन पद्धति, आचार विचार, धार्मिक कल्पना, राजकीय संस्था आदि सभी बातों का चित्र अन्तर्दृष्टि के सम्मुख उपस्थित कर देता है।"

जिन परिस्थितियों के फेर में पड़कर जातियाँ गुलाम हो जाती हैं, समाज नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, सिंहासन उलट जाते हैं, और साम्राज्य बिखर जाते हैं उन सब का सूक्ष्म विवेचन करना इतिहास शास्त्र का काम है केवल सन और तिथियों के बतला देने से अथवा अरेबियननाइट्स की तरह प्राचीन किस्सों को सुना देने ही से उसका काम पूरा नहीं हो जाता। वास्तविक इतिहास वही है जिसके अन्तर्गत समाज शास्त्र, मानस शास्त्र और राजनीतिशास्त्र का निचोड़ आ गया हो।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि भूतकालिक घटनाओं के प्रकाश विना वर्त्तमानकाल प्रकाशित नहीं हो सकता। राज संस्था, धर्म संस्था आदि जगत् की संस्थाएं भूतकालिक घटनाओं से रहित यदि हमें दृष्टिगोचर हों तो उन संस्थाओं की स्थिति का अन्तर हमारी दृष्टि से बिलकुल अज्ञेय रहेगा और कुछ समय के पश्चात् जब कि वर्त्तमानकाल भी भूतकाल होजायगा तब उसकी भी स्मृति नष्ट हो जायगी और मानवीय बुद्धि ज्यों की त्यों कोरी रह जायगी। इसलिए उपरोक्त सब घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध दिखलाने के लिए इतिहास शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष को ही लीजिए। इसकी स्थिति आज ही के समान पहले भी थी या नहीं, यदि नहीं थी तो कैसी थी? और उसमें किस प्रकार परिवर्त्तन होते होते यह स्थिति प्राप्त हुई। वह परिवर्त्तन किन कारणों से हुआ और किन तरीकों से पुनः वही स्थिति लाई जा सकती है आदि बातों का ज्ञान बिना इतिहास शास्त्र का अध्ययन किये नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त बिना इतिहास ज्ञान के यह भी नहीं जाना जा सकता कि जगत् की राजसंस्थाएं, धर्म संस्थाएं, किस प्रकार उत्पन्न हुई किस प्रकार इस रूप में आई और किस प्रकार भविष्य में इनका रूप होगा। तथा सम्पत्ति के जोर से प्रबल होने वाली राजसत्ताएँ और अभिजन सत्ताएं गरीबों के पैसे से पलकर दिन पर दिन अधिक प्रबल होती जायँगी अथवा कृषक लोगों की सतत चोटों से जर्जरित हो अन्त में अतीत के गर्भ में लीन हो जायँगी।

इन सब बातों के बतलाने का काम इतिहास शास्त्र का है। इसी कारण समाज के जीवन निर्माण में अथवा देश का भविष्य सुधारने में इतिहास शास्त्र की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

उपरोक्त सब दृष्टियों को सम्मुख रख कर यदि इतिहास शास्त्र पर कोई पुस्तक लिखी जाय तो वह बहुत लाभप्रद हो सकती है। हमें सन्तोष है कि हिन्दी साहित्य में भी आजकल इस प्रकार की कुछ पुस्तकें

प्रकाशित हो रही हैं। भारत के हिन्दू सम्राटों पर भी कुछ छोटी छोटी फुटकर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं पर वे बहुत ही कम संख्या में दृष्टिगोचर होती हैं। इस विषय की अभी बहुत पुस्तकें हिन्दी संसार में वांछनीय हैं।

भारतवर्ष के ज्ञात इतिहास में यदि अभिमान करने योग्य कोई स्थान पाया जाता है तो वह बौद्धकाल का दृश्य ही है। हमारी राय में बौद्धकाल के समान स्वर्णयुग भारतवर्ष ने अपने ज्ञात इतिहास में कभी नहीं देखा और भविष्य में भी कुछ शताब्दियों तक देखने की आशा करने का दम हमारे छोटे से मस्तिष्क में तो नहीं है।

प्रकाश डाला उसे भी वह हड़प गया। यदि मेगास्थनीज़ का पूरा विवरण हमारे आगे होता तो हमारी कितनी ही उलझनें सुलझ गई होतीं।

पर अब हमारे सौभाग्य से या पुरातत्व वेत्ताओं के प्रयत्न से पुराना इतिहास प्रकाश में आ रहा है। कुछ वर्ष पूर्व मैसूर के शाम शास्त्री ने कौटिल्य के अर्थ शास्त्र की खोज कर उसे प्रकाशित किया है। जब से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है तभी से ऐतिहासिक जगत् में एक प्रकार की हलचल सी मच गई है। मौर्य्य साम्राज्य से सम्बन्ध रखनेवाली कई नवीन नवीन बातें प्रकाश में आगई हैं।

हिन्दी संसार की आवश्यकता को देखकर इसी सब नवीन और पुरातन सामग्री के आधार पर इस छोटी सी पुस्तक की रचना की जारही है। इसमें बहुत ही संक्षिप्त रूप से भारत के हिन्दू सम्राटों का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक को ठीक इतिहास ग्रन्थ कहना तो दुस्साध्य है। इतिहास के ढङ्ग से यदि यह पुस्तक लिखा जाती तो शायद एक हजार पृष्ठ भी इसके लिए पर्य्याप्त न होते। पर न तो हममें इतनी योग्यता ही है और न इतना अवकाश ही। इस कारण यह पुस्तक सर्वाङ्ग सुन्दर न हो सकी फिर भी जैसा कुछ होसका हिन्दी संसार की सेवा में भेंट है।

एक बात और कहना है वह यह कि इसमें कई बातें ऐसी हैं जो बड़े बड़े इतिहासज्ञों के लिखे हुए वर्णन से मतभेद रखती हैं। इन बातों की सूचना हमें पूजनीय पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा ने दी हैं। उनका कथन है कि इन बातों में बहुत से इतिहास लेखकों ने गलती खाई है। पण्डित जी का कथन अधिक प्रमाणयुक्त और मान्य होने के कारण हमने पुरानी परिपाटी की परवाह न करते हुए वे बातें नवीन खोज के अनुसार दी हैं। आशा है इतिहासज्ञ इन बातों को ध्यान के साथ पढ़ कर अपनी राय कायम करेंगे।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मुझे प्रधान सहायता तो पूज्य पण्डित जी से ही मिली है अतएव उनका तो यह लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है पर हाँ,

इनके अतिरिक्त निम्नाङ्कित ग्रन्थों से भी मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है अतएव इनके विद्वान् लेखकों को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ—

(१) कौटिल्य अर्थशास्त्र (अनुवादक पं० प्राणनाथ विद्यालङ्कार)।

(२) भारतीय सभ्यता का इतिहास (रमेशचन्द्र दत्त)।

(३) भारतवर्ष का इतिहास (लाला लाजपतराय)।

(४) अशोक अनुशासन (बङ्गला) (श्रीचारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय और ललित मोहन कर)।

(५) मनुस्मृति (जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा से प्रकाशित)।

(६-७-८-९) मैगास्थनीज, फाहियान, सुंगयुन और इत्सिङ्ग के यात्रा विवरण।

(१०) सोलंकियों का इतिहास (रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा)।

हिन्दी साहित्य को शुभसन्देश!   संसार की भाषाओं में अपूर्व!!

भगवान् महावीर

का बृहद् जीवन चरित्र छप गया। जिस ग्रन्थ का हिन्दी साहित्य में बड़ा अभाव था वह पूरा होगया।

यदि आप—आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का प्रमाणिक इतिहास पढ़ना चाहते हैं।

यदि आप—उस समय के कुल मतमतान्तरों का वर्णन, जैन, बौद्ध, आजीविक आदि मतों का तुलनात्मक विवेचन पढ़कर यह जानना चाहते हैं कि बौद्ध और आजीविक सम्प्रदाय भारत से क्यों नष्ट होगये और जैन सम्प्रदाय क्यों अब तक स्थिरता पूर्वक चल रहा है।

यदि आप—भगवान् महावीर के जीवन का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करना चाहते हैं, उन पर आये हुए उपसर्गों का दार्शनिक अर्थ जानना चाहते हैं एवं पौराणिक दृष्टि से उनके पूर्व सत्ताइस भावों का वर्णन आदि बातें पढ़ना चाहते हैं और

यदि आप—जैन तत्वज्ञान के प्रधान २ तत्वों जैसे अहिंसा, स्याद्वाद, आचारशास्त्र सात तत्व छहद्रव्य आदि का खुलासा वर्णन पढ़ना चाहते हैं तो आज ही इसकी एक प्रति मंगवालीजिए।

यह ग्रन्थ, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक पौराणिक और दार्शनिक ऐसे चार खण्डों में विभक्त है।

न्याय विशारद न्यायाचार्य्य मुनि न्यायविजय जी इस पर लम्बी सम्मति देते हुए लिखते हैं "इसके लिखने में लेखक ने अनेकानेक ग्रन्थों आधार पर गवेषणा पूर्ण दृष्टि से जो काम लिया है वह इस पुस्तक की प्रशंसनीय विशेषता है"

ऐसे सर्वांगपूर्ण ५०० पृष्ठ के सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मूल्य ४॥) है।

पता—हिन्दी साहित्य मन्दिर बनारस।

पृष्ठ

१९ विवाह सम्बन्धी नियम ५४
२० चन्द्रगुप्त के समय में ग्राम रचना ५६
२१ राज्य की आमदनी और उसका प्रबन्ध ५७
२२ दण्ड विभाग ५९
२३ सम्राट् चन्द्रगुप्त और जनता का चरित्रिक विकास ... ६१

सम्राट् बिन्दुसार

सम्राट् बिन्दुसार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ६६

सम्राट् अशोक

१ सम्राट् अशोक का जन्म ६९
२ अशोक का राज्यारोहण ७१
३ एक भ्रम मूलक घटना ७१
४ कलिंगदेश का युद्ध ७२
५ देवताओं का प्रियदर्शी ७३
६ सम्राट अशोक के विवाह ७४
७ सम्राट् अशोक का शासन विभाग ७५
८ आयुर्वेदीय विभाग ७७
९ पथिकों के विभाग का प्रबन्ध ७७
१० ललित कलाओं की उन्नति ७७
११ सम्राट् अशोक का व्यक्तित्व ८२
१२ सम्राट् अशोक के सिद्धान्त ८३
१३ अशोक का साम्राज्य ८४
१४ सम्राट् अशोक की तीर्थ यात्रा ८५
१५ उस समय के शिलालेख ८६
१६ अशोक कालीन साहित्य ८७

पृष्ठ

३ सम्राट् चन्द्रगुप्त और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध ... १५३
४ साहित्य की उन्नति १५५
५ द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में धार्मिक स्थिति ... १५६
६ जीवन निर्वाह की सुलभता १५७
७ सम्राट् चन्द्रगुप्त का शासन १५९
८ फाहियान की भारतयात्रा १६०
९ सम्राट् चन्द्रगुप्त का अवसान १७१

सम्राट् कुमारगुप्त

१ सम्राट् कुमारगुप्त का वृद्ध विवाह १७३
२ पुष्यमित्रीय जाति का आक्रमण १७४
३ संसार मे ईश्वरीय महादण्ड १७५
४ हूण जाति का संक्षिप्त इतिहास १७५

सम्राट् स्कन्दगुप्त

१ गुप्त साम्राज्य का पतन १७९
२ गुप्त साम्राज्य पर एक दृष्टि १८१

सम्राट् हर्षवर्द्धन

१ उस समय का भारत १८९
२ धार्मिक स्थिति १९१
३ हर्षवर्द्धन का जन्म १९२
४ हर्षवर्द्धन का राज्यारोहण १९४
५ हर्षवर्द्धन की मृत्यु २०२
६ सम्राट् हर्षवर्द्धन का शासन २०४
७ प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन सङ्ग २०६
८ हुएन सङ्ग का वर्णन २०९

पृष्ठ

महाराणा संग्रामसिंह

१ उस समय की परिस्थिति २५४
२ संग्रामसिंह का जन्म और राज्यरोहण २५६
३ संग्रामसिंह का स्वेच्छा से शासनाधिकार छोड़ने का पोषण करना २५८
४ भारतवर्ष पर मुग़ल आक्रमण २६०
५ राणा सांगा और बावर २६२
६ खानवा का युद्ध २६४
७ यवनिका पतन २७१

भारत के हिन्दू सम्राट्

भारत के हिन्दू सम्राट्

(१)

भूमण्डल में सबसे सुन्दर, देश-शिरोमणि भारतवर्ष।
स्वर्ण अक्षरों में है अंकित, जिसका गौरवमय उत्कर्ष॥
जिसका वैभव भूतकाल का, सचमुच में है अकथ अपार।
स्मरण मात्र से ही हो जाता, रग रग में शोणित सञ्चार॥

(२)

प्रजा-नीति के सच्चे पालक, हुए यहीं हिन्दू सम्राट।
शासन किया धर्म-सेवा हित, कला-कुशलता को उद्घाट॥
दुष्ट-दोषियों को देते थे, समझ बूझ करके ही दण्ड।
निरपराधको नहीं ठूँसते, कारागृह में हो उद्दण्ड॥

(३)

जिनके दान-मान की अब भी, होती चर्चा चारों ओर।
भयसे जिनके दबे हुए थे, व्यभिचारी-कटुकारी-चोर॥
चन्द्रगुप्त की विजय-प्रतिष्ठा, राज्य प्रबन्धक अद्भुत ज्ञान।
तत्कालीन व्यवस्था का है, परदेशी करते गुण-गान॥

(४)

धर्म-घोषणायें अशोक की, जीव-दया सिद्धान्तिक मूल।
मत-प्रचार की उत्तम शैली, कभी नहीं सकते हम भूल॥
वीर समुद्रगुप्त की गरिमा, राष्ट्ररक्षिणी पूरी शान्ति।
और दूसरे चन्द्रगुप्त की, साहित्योन्नति मे उत्क्रान्ति॥

(५)

शिक्षा-कर न्यायादिक निष्ठा, हर्षवर्द्धन का उग्र प्रताप।
बाहुवीरता पृथ्वीपति की, सुनते ही उठता उर काँप॥
नहीं ढूँढने से मिलते हैं, बाहर उदाहरण दो चार।
इसी भूमि पर नर-सिंहों का, होता है प्रायः अवतार॥

जगन्नारायण देव शर्मा (फरिदपुरकर)

सम्राट् चन्द्रगुप्त

का आधिक्य होने लग गया था। जन समाज व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे जातिगत स्वार्थों की उपेक्षा करने लग गया था। और यही कारण था कि, जिससे मकदूनिया का बादशाह सिकन्दर पंजाब के राजा पोरस को हराने में समर्थ हुआ। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य्य होगा कि, उस समय तक्षशिला प्रभृति के राजाओं ने पोरस को पराजित करने के लिये सिकन्दर की सहायता की थी। कहने का तात्पर्य्य यह है कि, चन्द्रगुप्त के पहले के भारतवर्ष का राजनैतिक इतिहास अधिक सन्तोषप्रद नही है।

अब उस समय की धार्मिक अवस्था को लीजिये। चन्द्रगुप्त के समय मे भारतवर्ष के अन्दर बौद्ध और जैन धर्म का अधिक प्रचार था* क्योकि उन दोनो धर्मों के आचार्य्यों को—अर्थात महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर को उदय हुए उस समय बहुत ही थोड़ा समय अर्थात् केवल दो सौ वर्ष के लगभग हुए थे। इन दोनो धर्मों का प्राबल्य तो था ही, पर इन दोनो धर्मों के अन्दर भी उस समय कुछ थोड़ी बहुत विशृंखलता उत्पन्न होने लग गई थी। क्योकि, जब समाज के अन्दर स्वार्थ की भावनाएँ प्रबल होने लगती हैं तो धर्म में भी कुछ न कुछ विशृंखलता का आना अनिवार्य्य है। यद्यपि बहुत से स्वार्थत्यागी महात्मा उस समय भी इन दोनो धर्मों में पाये जाते थे, पर साधारण जनता के अन्दर बहुत सी धार्मिक प्रवृत्तियें नष्ट होने लग गई थीं, और उनके कारण कई स्वार्थी और पाखण्डी लोगों

---

* रायबहादुर पं० ओझा जी का मत है कि वैदिक धर्म भी उस समय पूर जोर पर था। —लेखक।

के हाथ में भी धार्मिक सत्ता चली गई थी। इसके अतिरिक्त इन दोनों—बौद्ध और जैन-धर्मों में भी उस समय बहुत भयङ्कर संघर्षण चल रहा था। और इसी कारण एक दूसरे को परास्त करने की क्षुद्र भावनाएँ उस समय की जनता और आचार्यों में भयङ्कर रूप से काम कर रही थीं।

मतलब यह है कि, क्या राजनैतिक दृष्टि से, क्या सामाजिक दृष्टि से और क्या धार्मिक दृष्टि से महाराज चन्द्रगुप्त के पहले से, भारतवर्ष में बहुत विशृंखलता उपस्थित हो गई थी। और यही कारण था कि, विदेशी लोगों को उस समय के भारत पर बुरी निगाह डालने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन सम्राट् चन्द्रगुप्त के सिंहासनासीन होने के पश्चात् ही ये खराबियां क्रमशः दूर होने लगीं। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने केवल भारतवर्ष से ही नहीं वरन्, सेल्यूकस इत्यादि विदेशी राजाओं से भी [illegible] राज्य स्थापित कर भारतवर्ष के इतिहास में युगान्तर उपस्थित कर दिया। भारतवर्ष के सम्पूर्ण इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त का साम्राज्य [illegible] होने से, [illegible] है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त कौन थे ?

वंश "मौर्य्यवंश" नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु आजकल कुछ विद्वान् इसके विरोध में कई प्रमाण देकर यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि, वास्तव मे चन्द्रगुप्त शूद्र स्त्री से उत्पन्न नहीं हुए थे। इसके लिए जो प्रमाण दिये जाते हैं वे निम्न-लिखित हैं:—

(१) मुद्रा राक्षस के अन्दर चंन्द्रगुप्त को "वृषल" कह कर लिखा है। "वृषल" शब्द का मतलब पुराणो मे उस द्विज से लिया जाता है जो वैदिक नियमो से भ्रष्ट हो गया हो। अतः प्रमाण से चन्द्रगुप्त वैदिक आचारो से भ्रष्ट ठहरते है। शूद्र नहीं।

(२) कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे लिखा है कि, उस काल मे असवर्ण विवाह नहीं होते थे। इस नियम के अनुसार मुरा नामक शूद्राणी का महानन्द की स्त्री होना सिद्ध नहीं हो सकता।

(३) गिरनार पर्वत पर एक शिलालेख पाया गया है। उस शिलालेख मे चन्द्रगुप्त के साले पुष्पपुत्र को वैश्य लिखा है। जैसे—

"मौर्य्यस्य राष्ट्रीये न वैश्येन पुष्प गुप्तेन कारित."

इसी आधार से इतिहास के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् ने चन्द्र-गुप्त को वैश्य सिद्ध करने की कोशिश की है।

(४) जैन और बौद्ध शास्त्रों मे जितना भी वर्णन इस सम्बन्ध का आया है, उससे सम्राट् चन्द्रगुप्त क्षत्रिय वंशोत्तपन्न ठहरते हैं। यथा—

(१) बौद्ध साहित्य में महावंश नामक एक ग्रन्थ है। उसकी टीका में एक स्थान पर लिखा है कि भगवान बुद्ध के

में शूद्र नहीं थे तो ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान २ पर उन्हे शूद्र क्यो कहा गया ? इसका उत्तर देते हुए एक विद्वान कहते हैं कि, उस समय जैन और ब्राह्मण धर्म में एक भयङ्कर विरोध पैदा हो रहा था। उस समय के जैन ग्रन्थो में ब्राह्मणों की और ब्राह्मण ग्रन्थो में जैनियो की खूब ही निन्दा की गई है। सत्य और असत्य के विचार को एक दम भुला कर उन्होने झूठ सच किसी भी प्रकार अपने विरोधी की निन्दा करने मे कसर नहीं रक्खी। यह बात निर्विवाद है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म अङ्गीकार कर लिया था। * सम्भव है इसी कारण सम्राट् चन्द्रगुप्त भी ब्राह्मणों के कोप भाजन हो गये हो और ब्राह्मणो ने उन्हे बद-नाम करने के लिये झूठमूठ ही यह स्वांग रचा हो।

कुछ भी हो, इनमें से एक भी मत अभी तक स्थिर नहीं हुआ है। कुछ लोग उन्हे शूद्र सिद्ध करते हैं, कुछ भ्रष्ट ब्राह्मण, कुछ क्षत्रिय और कुछ वैश्य। पर राय बहादुर पं० गौरीशंकर जी ओझा के मत मे उनका क्षत्रिय होना ही अधिक प्रामाणिक है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यकाल।

पाश्चात्य इतिहासकारों ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का समय ईसवी सन् से ३२२ वर्ष पूर्व बतलाया है। मेगस्थनीज ने अपनी भारत-यात्रा के विवरण मे जिस (Sandracotts)

---

* लेखक के मत से अवश्य चन्द्रगुप्त ने सम्राट् होने के कुछ समय पश्चात् जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया था, इसके प्रमाण मे लेखक श्रवण बेल गोला के शिलालेख का प्रमाण दे सकता है। पर रायबहादुर गौरीशङ्कर जी ओझा इसके विरुद्ध हैं। उनके मतानुसार चन्द्रगुप्त अन्त तक वैदिक धर्मावलम्बी थे।

में शूद्र नहीं थे तो ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान २ पर उन्हे शूद्र क्यों कहा गया ? इसका उत्तर देते हुए एक विद्वान कहते हैं कि, उस समय जैन और ब्राह्मण धर्म मे एक भयङ्कर विरोध पैदा हो रहा था। उस समय के जैन ग्रन्थो में ब्राह्मणों की और ब्राह्मण ग्रन्थों में जैनियो की खूब ही निन्दा की गई है। सत्य और असत्य के विचार को एक दम भुला कर उन्होने झूठ सच किसी भी प्रकार अपने विरोधी की निन्दा करने मे कसर नहीं रक्खी। यह बात निर्विवाद है कि सम्राट्र चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म अङ्गीकार कर लिया था। * सम्भव है इसी कारण सम्राट्र चन्द्रगुप्त भी ब्राह्मणो के कोप भाजन हो गये हो और ब्राह्मणो ने उन्हे बद-नाम करने के लिये झूठमूठ ही यह स्वांग रचा हो।

कुछ भी हो, इनमे से एक भी मत अभी तक स्थिर नहीं हुआ है। कुछ लोग उन्हे शूद्र सिद्ध करते है, कुछ भ्रष्ट ब्राह्मण, कुछ क्षत्रिय और कुछ वैश्य। पर राय बहादुर पं० गौरीशंकर जी ओझा के मत मे उनका क्षत्रिय होना ही अधिक प्रामाणिक है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यकाल।

पाश्चात्य इतिहासकारो ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का समय ईसवी सन् से ३२३ वर्ष पूर्व बतलाया है। मेगस्थनीज ने अपनी भारत-यात्रा के विवरण मे जिस (Sandracotts)

* लेखक के मत से अवश्य चन्द्रगुप्त ने सम्राट् होने के कुछ समय पश्चात् जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया था, इसके प्रमाण में लेखक श्रवण बेल गोला के शिलालेख का प्रमाण दे सकता है। पर रायबहादुर गौरीशङ्कर जी ओझा इसके विरोधक है। उनके मतानुसार चन्द्रगुप्त अन्त तक वैदिक धर्मावलम्बी थे।

सेन्ड्रेकोट्स का वर्णन किया है, (एवं जिसने प्रख्यात् यूना
वीर सेल्यूकस को रणाङ्गण में परास्त किया था) उसी
पाश्चात्य इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त माना है। लेकिन यह सम
ईसा से पूर्व ३२३-प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थों में लिखे हु
चन्द्रगुप्त के समय से बहुत अन्तर रखता है। जैन ग्रन्थों में भद्रब
संहिता नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उससे पता चलता है वि
भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त समकालीन थे। क्योंकि, चन्द्रगुप्त को अ
हुए सोलह स्वप्नों का उसमें उल्लेख है और जब हम भद्रबाहु
समय का अनुमान करते हैं तो वह लगभग ३७५ वर्ष ईसवी
पूर्व का ठहरता है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध जैन मुनि हेमचन्
चार्य ने भी चन्द्रगुप्त का समय महावीर निर्वाण संवत् १५५
बतलाया है। अर्थात् वह भी ईस्वी सन् से ३७२ वर्ष पूर्व हो
है। मतलब यह है कि, पाश्चात्य विद्वानों ने चन्द्रगुप्त के लिये
समय निर्द्धारित किया है उससे लगभग ५२ वर्ष का अन्त
इस समय में पड़ता है। इतना अन्तर क्यों पड़ता है? पाश्चा
विद्वानों का आधार मेगास्थनीज स्वयं एक इतिहास लेखक था
उसके लिखे हुए समय में सत्य का अधिक अंश सम्भव
सकता है। पर प्रश्न यह है कि, मेगास्थनीज ने जिस सेन्ड्रेकोट

का वर्णन किया है क्या वही वास्तव में चन्द्रगुप्त है ? एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार बहुत अन्वेषण के बाद यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि, जिस सेन्ड्रेकोट्स का वर्णन मेगास्थनीज ने अपनी यात्रा में किया है, वह वास्तव में चन्द्रगुप्त नहीं, प्रत्युत उसके पौत्र अशोक हैं। इस पक्ष को साबित करते हुए वे निम्नलिखित दलीलें पेश करते हैं:—

ग्रीक इतिहासकारों ने सेन्ड्रेकोट्स का जो उल्लेख किया है, वह जैन और बौद्ध ग्रन्थो मे वर्णित चन्द्रगुप्त के वर्णन से बिलकुल मेल नहीं खाता। चन्द्रगुप्त के जीवन की सबसे बड़ी बातें दो है। एक तो यह कि, उसने सारे भारतवर्ष को एक छत्री साम्राज्य के अधीन कर दिया। और दूसरी उसकी विशेषता मंत्री चाणक्य थी। ऐसे मंत्री संसार के इतिहास में बहुत ही कम पाये जाते हैं। पर आश्चर्य्य यह है कि ग्रीक इतिहासकारों ने इन दोनो ही बातो का विवेचन नहीं किया। न तो उन्होंने यह लिखा कि चन्द्रगुप्त ने सब छोटे २ राज्यों को अपने अधीन कर एक विशाल साम्राज्य का सूत्रपात किया। और न उनके सेन्ड्रेकोट्स के वर्णन मे कहीं चाणक्य का ही नाम आया है। यदि सेन्ड्रेकोट्स ही वास्तव में चन्द्रगुप्त होता तो यह सम्भव नहीं है कि, ग्रीक इतिहासकार उसका वर्णन करते हुए इन दो महती बातों को भूल जाते। ❀

❀ राय बहादुर गौरीशंकर जी ओझा इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि, यूनानी लेखकों का पूरा विवरण अब बिलकुल अप्राप्य है। उनके इधर उधर के टुकड़े ही पाये जाते हैं। अतः पूरे ग्रन्थ के मिले बिना यह कैसे कहा जा सकता है कि, यूनानी लेखकों ने इन घटनाओं का वर्णन नहीं किया।

(२) सिकन्दर ने फिजियास के द्वारा सुना था कि, सिन्धु नदी के उस पार चन्द्रमसी नामक राजा का राज्य है। उसके पास बीस हजार घुड़सवार, दो लाख पैदल, दो हजार रथ और चार हजार हाथी हैं। इस कथन का राजा पोरस ने भी समर्थन किया था। साथ ही उसने यह भी कहा था कि, वह राजा संकरवर्ण में उत्पन्न है। ग्रीक इतिहासवेत्ताओं ने सिकन्दर के समकालीन इस राजा को चन्द्रगुप्त के पूर्ववर्ती नन्द होने का अनुमान किया है। पर जैन और बौद्ध शास्त्रों में केवल नौ ही नन्दों का वर्णन पाया जाता है। इनके अतिरिक्त किसी भी दसवें नन्द का पता इतिहास में नहीं मिलता। अतएव यह सम्भव नहीं है कि वह राजा नन्द हो। बल्कि उसको चन्द्रगुप्त स्वीकार करना ही अधिक युक्ति सङ्गत होगा।

(३) ग्रीक इतिहासकारों ने सेन्ड्रेकोट्स और सेल्यूकस का युद्ध, सेन्ड्रेकोट्स की विजय, हेलेन के साथ सेन्ड्रेकोट्स का विवाह आदि अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है। यदि वह वास्तव में चन्द्रगुप्त ही होता तो यह कभी सम्भव नहीं कि, जैन और बौद्ध ग्रन्थों में, जिनमें कि, चन्द्रगुप्त के जीवन की मामूली घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है ये घटनायें छूट जातीं। हां, इन बातों का अशोक के जीवन के साथ कुछ सामञ्जस्य भी हो सकता है। गिरनार पहाड़ पर एक शिलालेख ऐसा मिला है जिसमें अशोक के साथ यवन-राज-कन्या के विवाह का उल्लेख है।

किया है वह वास्तव मे चन्द्रगुप्त नहीं प्रत्युत अशोक है। वास्तव मे यदि देखा जाय तो ये दलीलें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। और सम्भव है इनके द्वारा भविष्य मे इतिहास का भी कुछ काया पलट हो जाय। पर अभी तक अधिकांश पुरातत्त्व वेत्ताओं ने मुक्त कण्ठ से मेगास्थनीज द्वारा वर्णित सेन्ड्रेकोट्स को ही चन्द्रगुप्त माना है। और इसी आधार पर हम भी इन पुरातत्त्व वेत्ताओं के ही अनुकरण पर चन्द्रगुप्त का संक्षिप्त विवेचन कर देना उचित समझते हैं।

चन्द्रगुप्त के पूर्व भारतवर्ष मे महानन्द नामक राजा का राज्य था। उसके नौ पुत्र थे। आठ उनकी सजातीय रानी सुनदा से और एक जिसका नाम चन्द्रगुप्त था मुरा नाम की नाइन स्त्री से उत्पन्न था। * किसी कारणवश चन्द्रगुप्त नन्द का कोप भाजन होकर वहां से भाग गया। सिकन्दर ने जिस समय भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी उस समय वह पंजाब मे था। जस्टिनस ने लिखा है कि, सिकंदर की प्रशंसा सुन कर वह सिकन्दर से मिला भी था। पर किसी कारणवश सिकन्दर उससे रुष्ट हो गया और चन्द्रगुप्त को वहां से भी भागना पड़ा। और अन्त में उसे चाणक्य नामक एक ब्राह्मण से भेट हुई। यह ब्राह्मण बहुत कुटिल, बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ था। इसकी सहायता से चन्द्रगुप्त ने बहुत सी सेना इकट्ठी की। और उसके द्वारा सिकन्दर

---

* यह कथा प्रचलित नहीं है। प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता राय बहादुर गौरीशंकरजी ओझा का मत है कि इस कथा को मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढीराज ने सन् १७१? मे गढ़ा था। इसके पूर्व इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। —लेखक।

के चले जाने पर इसने उसके जीते हुए तमाम प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। और अन्त में इसी कुटिल ब्राह्मण की सहायता से उसने नंद वंश का भी नाश करके मगध प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया। इस समय चन्द्रगुप्त की उम्र २५ वर्ष से अधिक न थी।

मगध विजय करने पर नंद राजा की विशाल सेना इसके हस्तगत हुई। चाणक्य की कुशाग्रबुद्धि और इस विराट् सेना के अपरिमित बल की सहायता से अब इस उत्साही सम्राट् ने अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। साथ ही साथ उसने सैनिक शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न भी न छोड़ा। इस विराट् शक्ति की सहायता से उसने अपने साम्राज्य का विस्तार बंगाल की खाड़ी से अरब समुद्र तक कर लिया।

इधर तो भारतवर्ष में सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने साम्राज्य के विस्तार करने में लगे हुए थे। उधर सिकन्दर के सेनापति-सीरिया के राजा-सेल्यूकस नेकटार ने सिकन्दर द्वारा अधिकृत भारतीय प्रदेशों पर पुनराधिकार प्राप्त करने के लिये खूब सजधज के साथ भारतवर्ष पर चढ़ाई कर दी। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भी खूब ही सजधज के साथ यूनानी सेनापति का मुकाबिला किया। और पहली मुठभेड़ में इस गर्वित यूनानी सेनाध्यक्ष को पराजित कर दिया। अन्त में सेल्यूकस एक बहुत ही अपमान पूर्ण सन्धि करने को बाध्य हुआ। उसने अपने साम्राज्य से काबुल, कंधार, हिरात और मकरान के चार मूल्यवान प्रदेश चन्द्रगुप्त को अर्पण किये। इतना ही नहीं, उसने सम्राट् चन्द्रगुप्त से प्रसन्न होकर अपनी बेटी हेलेन का विवाह भी उसके साथ कर दिया। सम्राट्

चन्द्रगुप्त ने भी ५०० हाथियों की भेंट देकर अपने श्वसुर का सत्कार किया। इस महती विजय से सम्राट् चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार भारतवर्ष से बाहर भी फैल गया। और वे भारत वर्ष के प्रथम ऐतिहासिक चक्रवर्ती कहलाने के भी अधिकारी हुए।

केवल १८ वर्षों में जिस व्यक्ति ने सारे भारतवर्ष पर, नहीं नहीं! बहुत से विदेशी प्रान्तों पर भी एक दफा साम्राज्य स्थापित कर दिया, जिसने बिखरी हुई हिन्दू शक्ति को इतने थोड़े समय में सूत्रबद्ध कर दिया और सिल्यूकस के समान विजयी वीर को भी अपने लोहे से परास्त कर दिया, वह सम्राट् कितना वीर, कितना उद्योगी और कितना कर्मशील होगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मेगास्थनीज का वर्णन।

विजयी सेनापति सेल्यूकस सम्राट् चन्द्रगुप्त से पराजित होकर अपने देश को चला गया। वहां जाकर उसने अपने राजदूत मेगास्थनीज को चन्द्रगुप्त की राजसभा में भेजा। मेगास्थनीज बड़ा ही विद्या व्यसनी था। उसने अपनी भारतयात्रा का बहुत ही सुन्दर वर्णन लिखा है। *उस वर्णन में उसने भारत के रीति रिवाज, रहन सहन, उस समय की शासन प्रणाली आदि सभी बातों का विवेचन किया है।

मेगास्थनीज लिखता है कि, तत्कालीन भारतीय राजा का

---

* मेगास्थनीज का लिखा हुआ मूल ग्रंथ तो नष्ट हो गया, परन्तु उसमें से जिन ग्रन्थकारों ने जो २ अंश अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है वही मात्र मिलता है। उसी प्रकार [illegible] ग्रन्थ में मेगास्थनीज का वर्णन लिखा गया है—

शासन बहुत ही सुसंगठित और सुदृढ़ है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के पास छः लाख पैदल सेना, तीस हजार घुड़ सवार, नौ हजार हाथी और सहस्रों रथ हमेशा तैय्यार रहते है। पाटलिपुत्र नगर एक बड़ा ही सुन्दर और सुदृढ़ शहर है। यह शहर करीब नौ मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा है। लकड़ी का एक विशाल शहर पनाह से जिसके ६४ फाटक, ५७० बुर्ज, है नगर सुरक्षित है। उसके बाद २०० गज चौड़ी और पन्द्रह गज गहरी एक खाई है जो सोन नदी के जल से भरी रहती है।

राजमहल का वर्णन करते हुए मेगास्थनीज लिखता है कि, यह महल सुन्दरता और वैभव की दृष्टी से संसार में अपनी सानी नहीं रखता। इसके खम्भे मुलम्मेदार सुनहरी बेलो और रुपहरी चिड़ियो की नक्काशी से बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे। महल के चारों ओर बड़ी ही विशाल वाटिका थी। जिसके अन्दर जगह २ पर सुरम्य सरोवर में खेलती हुई रङ्ग बिरङ्गी मछलियां, सुललित वापियें, वापियों के जलमें पड़ती हुई प्रातः—कालीन सूर्य्य की किरणें, हरे २ छोटे २ वृक्ष, वृक्षों पर मधुर नाद करती हुई भांति २ की सुन्दर चिड़ियाएँ, रमणीय कुंज कुंजों में पड़ती हुई पानी की छोटी २ बूंदें, दर्शकों के चित्त को मोहित करती थी।

से शिकार करते थे। कभी २ सम्राट् हाथी पर बैठ कर शिकार किया करते थे।

दिन में एक बार सम्राट् राजसभा मे उपस्थित होकर प्रजा की प्रार्थनाएँ सुनते तथा उन पर विचार करते थे। सर्व साधारण जनता को एक बार दर्शन देना सम्राट् अपना नित्य का कर्त्तव्य समझते थे।

चन्द्रगुप्त का राज्य-शासन।

सारे भारतवर्ष पर एकच्छत्री साम्राज्य स्थापित करनेवाले सम्राट चन्द्रगुप्त का राज्य प्रबन्ध कितना उच्च कोटि का होगा यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस विषय मे सम्राट् को उनके धुरन्धर मंत्री चाणक्य से—जिन्हे लोग विष्णुगुप्त, कौटिल्य आदि कई नामो से पुकारते हैं—बहुत ही सहायता मिलती थी। हम संक्षिप्त मे वहां पर उनकी शासन प्रणाली का कुछ विवेचन कर देना उचित समझते है।

सेना विभाग।

सम्राट् ने भिन्न २ विभागों के प्रबन्ध के लिये भिन्न २ समितियां नियुक्त कर रक्खी थी। सेना का प्रबन्ध करने के लिये ३० सदस्यो की एक समर—परिषद बना रक्खी थी। इस परिषद् को पांच २ व्यक्तियों की छः समितियो मे विभक्त कर रक्खा था। प्रत्येक समिति की देखरेख एक एक विभाग पर रहती थी। पहली समिति के अधिकार में नौ—सेना का कार्य्य था। वह नौ-सेनाध्यक्ष से मिल कर कार्य करती थी। दूसरी समिति के अधिकार में भोजन का प्रबन्ध, शस्त्रों की आयोजना, रणवाद्य बजाने

वाले, कारीगर—जैसे सुनार, लुहार आदि—साईस और घसियारों की पूर्ती का भार था। पैदल सेना की व्यवस्था के लिये तीसरी समिती नियुक्त थी, इसके अतिरिक्त चौथी समिति के अधिकार में घुड़ सवारों की. पांचवी के अधिकार में रथों की, और छठो के अधिकार में हाथियों की व्यवस्था का भार था।

नगर प्रबन्ध विभाग।

इसी प्रकार राजधानी पाटलिपुत्र के शासन के लिये भी तीस सदस्यों की एक परिषद् नियुक्त थी। यह परिषद् भी उपरोक्त परिषद की तरह पांच २ व्यक्तियों की छः समितियों में बटी हुई थी। पहली समिति के अधिकार में उद्योग धन्धे सम्बन्धी अनेक विभागों के निरीक्षण का, केवल शुद्ध पदार्थों के क्रयविक्रय का और कारीगरों की दर को नियत करने का भार था।

दूसरी समिति नगर के विदेशी निवासियों और दर्शकों की चेष्टाओं का निरीक्षण करती थी। विदेशी लोगों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खास आदमी नियुक्त रहते थे। उनके ठहरने का प्रबन्ध, उनके सामान की रखवाली, बीमार प्रवासियों की सेवा सुश्रूषा का भार, मृतक मनुष्यों के अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध, तथा उनकी सम्पत्ति को उनके वारिसों के पास पहुँचाने का भार इन लोगों के जिम्मे रहता था।

पूर्ण विभाग था। उस समय भी आज कल की तरह तौलने के बाँटो, और नापने के गजो पर सरकारी छाप लगी रहती थी। बिना छाप के बाँट और गज का जो व्यक्ति व्यवहार करता था वह राजकीय दण्ड का भागी होता था। व्यापारियों को व्यापार करने का अधिकार नियमित कर देकर प्राप्त करना पड़ता था। कर उगाहने आदि का भार भी इसी समिति पर था।

पाचवी समिति के अधिकार मे व्यापारिक वस्तुओ के निरीक्षण का भार था। यह समिति नई पुरानी वस्तुओ की छटनी करने के लिये नियुक्त थी। क्योकि उस समय नई और पुरानी चीजो का महसूल भिन्न भिन्न लगता था।

उस समय बिके हुए माल के मूल्य का दसवाँ हिस्सा राज्य-कोष मे जमा करना होता था। इस कर को उगाहने का कार्य छठी समिति के अधिकार में था। इस कर को जो आदमी चुराने की नीयत करता था उसे प्राणदण्ड की सजा दी जाती थी।

इसके अतिरिक्त नगर सम्बन्धी और और मामलो का प्रबन्ध तथा देवालयों, हाट, बाजारो आदि की सुव्यवस्था का भार भी इन्ही सब समितियो पर था। इनको अच्छी हालत मे रखना इसी सभा का एक कर्त्तव्य समझा जाता था।

दूर के देशो का प्रबन्ध करने के लिये सम्राट् के प्रतिनिधी नियुक्त रहते थे। उन प्रतिनिधियो मे से, अथवा इन समितियो मे से कोई व्यक्ति अन्याय तो नहीं करता है, उसकी देखरेख के लिये प्रत्येक व्यक्ति पर सम्राट् के जासूस लगे हुए रहते थे। ये जासूस स्त्री और पुरुष दोनों ही होते थे। इनकी व्यवस्था कितनी [illegible] थी, इसका वर्णन आगे किया जायगा।

अपराधियों को उस समय बहुत ही भीषण दण्ड दिया जाता था । यही कारण था कि उस समय अपराधों की संख्या बहुत ही कम रहती थी । चोरी करना, झूठी गवाही देना, आदि अपराधों के लिये प्राणदण्ड की सजा थी । इस कारण इस तरह के अपराध तो बहुत ही कम हुआ करते थे । यहाँ तक कि लोग विदेश जाते समय अपने घरों पर ताला तक नहीं लगाते थे । केवल साँकल लगा कर ही चल देते थे ।

उस समय राज्य की ओर से प्रजाहित पर कितनी निगाह रक्खी जाती थी इसका वर्णन करते हुए मेगास्थनीज लिखता है कि किसानों के सुभीते के लिये राज्य की ओर से सिंचाई के निमित्त नहरें आदि का प्रबन्ध था । इसकी व्यवस्था के लिए भी एक परिषद् नियुक्त थी । यह विभाग हर समय इस बात का ध्यान रखता था कि प्रत्येक व्यक्ति को जल का उचित अंश प्राप्त हो । दूरस्थ देशवासियों के लिए भी यह विभाग प्रबन्ध करता था । और इसी सुव्यवस्था के कारण रेल तार आदि सुभीताओं के न होते हुए भी दूरस्थित काठियावाड़ के गिरनार पर्वत के नीचे सुदर्शन नामक झील बनाई गई थी ।

राज्य की ओर से एक विभाग ऐसा भी नियुक्त था जो राजमार्गों तथा दूसरी सड़कों को सुगम और सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करे । उस विभाग की ओर से एक २ मील के अन्तर पर ऐसे साईनबोर्ड लगे रहते थे जिन पर शब्दों में फासले व उप-मार्गों के नाम का उल्लेख रहता था । पाटलिपुत्र से लेकर एक सड़क सीधी पश्चिमोत्तर प्रान्त तक गई थी । जिसकी लम्बाई का अनुमान लगभग पांच हजार मील का किया जाता है ।

कृषि विभाग ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के काल में कृषि का कार्य्य बहुत उन्नति पर था । आजकल के एग्रीकल्चर डिपार्टमेण्ट की तरह उस समय भी कृषि विभाग नियुक्त था । उसके प्रबन्ध कर्त्ता को "सीताध्यक्ष" कहा जाता था । "सीताध्यक्ष" कृषि विद्या का प्रकाण्ड पण्डित होता था । सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनो ही प्रकार की कृषि विद्याओ का उसे ज्ञान होता था । कृषि की पैदावार का छठा भाग राज्य मे कर स्वरूप लिया जाता था । कृषक लोग सैनिक सेवा से बिलकुल अलग रक्खे जाते थे । मेगास्थनीज बड़े ही आश्चर्य्य के साथ इस बात को लिखता है कि "जिस समय देश के अन्दर घोर संग्राम मचा हुआ रहता था उस समय भी कृषक लोग शान्ति पूर्वक अपने खेती के काम मे लगे रहते थे ।"

चन्द्रगुप्त के समय में कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई का भी बड़ा उत्तम प्रबन्ध था । इसके लिए भी एक स्वतंत्र विभाग नियुक्त था । उस समय सिंचाई चार प्रकार से होती थी (१) हस्त प्रावर्त्तिय अर्थात् हाथ के द्वारा (२) स्कन्ध प्रावर्त्तिय अर्थात् कन्धे पर पानी उठा कर (३) श्रोतो यन्त्र प्रावर्त्तिय अर्थात् यन्त्र के द्वारा (४) नदी सर स्तटाक कूपोद्घाटम् अर्थात् नदी, तालाब और कुए के द्वारा ।

उपरोक्त चारो प्रकार की सिंचाइयों में से पहली और दूसरी सिंचाई पर पञ्चमांश, तीसरी पर चतुर्थांश और चौथी पर तृतीयांश राजकर लिया जाता था । इस बात का पूरा ध्यान

रक्खा जाता था कि, यथा समय प्रत्येक मनुष्य को सिंचाई के लिए आवश्यकतानुसार जल मिलता रहे। जहां पर नदी, तालाब, कुँए, वगैरह नहीं होते थे वहां पर राज्य की ओर से तालाब, नहर, तथा कुंए खुदवाए जाते थे। गिरनार की झील का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। पुण्यगुप्त नामक वैश्य (जिनके लिए चन्द्रगुप्त के साले होने की कल्पना की जाती है) ने जो उस समय पश्चिमी प्रान्तों का शासक था गिरनार पर्वत से निकलने वाली दो नदियों के पानी को रोकने के लिये एक छोटा और एक विशाल बाँध बँधवाया था। जिससे वहां एक झील सी बन गई थी। इस झील का नाम "सुदर्शन" रक्खा गया था। चन्द्रगुप्त के पश्चात् सम्राट् अशोक ने इससे नहरें भी निकलवाई थीं। इसके पश्चात् सन् १५० में कुछ पूर्व एक भयङ्कर तूफान आने से वह झील नष्ट हो गई। तब क्षत्रिय नरेश रुद्रदामन ने इसे फिर बँधवाया था। उसके पश्चात् सन् ४५८ में स्कन्दगुप्त ने इसकी फिर मरम्मत करवाई। बाद में किस तरह यह झील नष्ट हुई इसका उत्तर देने में इतिहास चुप है।

आबकारी विभाग।

आजकल के "एक्साइज डिपार्टमेंट" की तरह उस समय भी नशीली वस्तुओं के लिए एक विभाग नियुक्त था। इसका अफसर "शुल्काध्यक्ष" कहलाता था। वह नगरों, गांवों और सैनिक कैम्पों में शराब की बिक्री का प्रबन्ध करता था। सर्व साधारण लोग शराब खरीद कर दुकान के बाहर नहीं ले जा सकते थे। केवल कुछ खास खानदान के व्यक्तियों को छोड़ कर सब

लोगों को दुकान में ही शराब पीना पड़ती थी। प्रत्येक मनुष्य को एक नियत मात्रा से अधिक तादाद में शराब देने की राज्य की ओर से मनाई थी। शराब विक्रेताओं का यह कर्त्तव्य था कि, वह आये हुए ग्राहकों के होश हवास की रक्षा करें। यदि नशे की धुन मे किसी की वस्तु गुम हो जाती तो उसका जिम्मेदार शराब विक्रेता समझा जाता था।

मर्दुमशुमारी विभाग।

सेन्सेस डिपार्टमेण्ट की ही तरह मर्दुमशुमारी करने के लिए उस समय एक मनुष्य-गणना विभाग भी था। इसका मुख्य प्रबन्ध कर्त्ता "समाहर्त्ता" (जिसके विषय मे पहले लिखा जा चुका है) नामक अधिकारी रहता था। समाहर्त्ता का अधीनस्थ प्रान्त चार भागो में विभक्त रहता था। उन चार भागो पर एक एक स्थानिक नियुक्त रहता था। स्थानिक के अधिकार मे बहुत से "गोप" मनुष्य गणना का काम किया करते थे। स्थानिक, प्रदेष्टा और गोप कर्मचारियो की गुप्त देख रेख करने के लिए समाहर्त्ता की ओर से गुप्त निरीक्षक नियुक्त रहते थे। लोग सब समाचारो को इकट्ठा कर समाहर्त्ता के पास पहुँचा देते थे।

गोप नामक कर्मचारियों के कर्त्तव्य निम्नोक्त थे। (१) व्यापारी, शिल्पी, किसान, दास, गोपाल आदि लोगों की गिनती करना। (२) प्रत्येक ग्राम मे बसने वाले चारो वर्ण के लोगों की अलग २ गिनती करना। (३) प्रत्येक घर के युवक और वृद्ध पुरुष और स्त्रियों की गणना करना एवं उनके चरित्र, कर्म, आय और व्यय का हाल जानना। (४) प्रत्येक घर के पालतू

पशु और पक्षियों की गणना करना। (५) कर देने वाले और कर न देने वाले मनुष्यों की संख्या का हिसाब रखना आदि।

प्रान्त की तरह प्रत्येक नगर की गणना करने वाला "नागरक" कहा जाता था। नगर भी प्रान्त की तरह चार भागों में विभक्त रहता था और प्रान्त की ही तरह उसमें भी स्थानिक, गोप, गुप्त निरीक्षक आदि लोग नियुक्त रहते थे।

न्याय विभाग।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त के शासन काल में भी आजकल की तरह दीवानी और फौजदारी की अलग २ अदालतें चलती थीं। दीवानी अदालत को उस समय "धर्म स्थीय" और फौजदारी को "कण्टक शोधन" कहते थे।

सब से छोटी अदालत संग्रहण नामक दुर्ग में बैठती थी। यह दुर्ग दस गांवों के बीच में था। यह अदालत द्रोणमुख नामक किले (जो चार सौ गांवों पर होता था) अदालत के ताबे में होती थी। द्रोणमुख की अदालत स्थानीय नामक दुर्ग की (जो आठ सौ गांवों पर होता था) अदालत के मातहत में रहती थी। इसके अतिरिक्त एक अदालत दो प्रान्तों के बीचवाले सीमास्थल पर और एक राजधानी में होती थी।

सब अदालतों के ऊपर सम्राट् की अदालत होती थी। सम्राट् धर्म शास्त्रों की सहायता से अभियोगों पर विचार करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय ग्राम पंचायतें भी नियुक्त थीं। इनमें गांव के मुखिया और वृद्ध लोग पंच के रूप में बैठते थे। ये लोग साधारण अपराधों का निपटारा करते थे।

धर्मस्थयी अदालतो मे उस समय तीन धर्मस्थ (जज) अथवा तीन अमात्य अभियोग सुनने के लिए बैठते थे। ये तीनो धर्मशास्त्र और राजनीति शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होते थे। कण्टक शोधन अदालतो मे तीन अमात्य या तीन प्रदेष्टा (न्यायाधीश) अभियोग सुनने के लिए नियुक्त रहते थे। दीवानी अदालतें अभियुक्तों पर केवल जुर्माना कर सकती थी। पर फौजदारी अदालतो को बहुत से अधिकार प्राप्त थे। ये अदालते भारी से भारी जुर्माना और प्राणदण्ड तक की सजाएँ दे सकती थीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे इन अदालतो के कर्तव्य, एवं धर्मस्थो और प्रदेष्टाओ के कर्त्तव्यों का विस्तृत रूप से वर्णन है। इसके अलावा कौन से अपराध के लिए कौन सा दण्ड देना चाहिए आदि बातो का भी विस्तृत विवेचन है। जिसका इस लघुकाय ग्रन्थ मे समाना बिलकुल असम्भव है।

आरोग्य विभाग

सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय मे आरोग्य रक्षा का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम था। इसके लिए भी एक परिषद् नियुक्त थी। उस मे भी छः उपसमितियाँ काम करती थी। स्थान २ पर औषधालय बने हुए थे जिस मे बड़े अनुभवी और विद्वान वैद्य रहा करते थे। सब बीमारो का उचित इलाज मुफ्त मे किया जाता था। कई स्थानों पर बड़े २ भैषज्यागार भी बने हुए थे जिन में शास्त्रोक्त विधि से औषधियां तैयार की जाती थीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे तीन प्रकार के वैद्यों का वर्णन आया है। (१) भिषज (२) जांगली विद् (३) गर्भ व्याधि

संस्था। भिषज साधारण वैद्य को कहते हैं। जो लोग विष की परीक्षा करना जानते हों उनको जांगली विद् कहते हैं। फौज में काम करने वाले सर्जनों अथवा सूतिकागृह में काम करने वाली दाइयों को गर्भव्याधि संस्था कहते हैं। आजकल की ही तरह सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में भी सेना के साथ फौजी डाक्टर रहा करते थे। इन लोगों के पास सब प्रकार के डाक्टरी यन्त्र, अगद स्नेह (Remedial oils) और घावों पर बांधने की साफ पट्टियां भी रहती थीं। सेना के साथ बीमारों के पथ्यादि की बहुत ही उत्तम व्यवस्था रहती थी। यहां तक कि, सेना के साथ हाथी, घोड़े, बैल आदि जो पशु जाते थे उन के लिए भी एक पशुचिकित्सा का जानकार अनुभवी वैद्य रहता था।

इस समय वैद्यकीय कार्यों में आने वाली औषधियों की खेती भी की जाती थी। जो लोग नई नई जड़ी बूटियों का आविष्कार करते थे उनको राज्य की ओर से सम्मान सूचक उपहार दिये जाते थे।

वैद्यों पर भी राज्य की ओर से कई गुप्तचर लगे हुए रहते थे। कोई भी मूर्ख वैद्य चिकित्सा नहीं करने पाता था। इसके अतिरिक्त वैद्यों के लिए इस बात का कानून बना हुआ था कि किसी मनुष्य को कोई भयङ्कर व्याधि हो जावे तो उसकी इत्तिला फौरन सरकार को दे। अगर किसी वैद्य की बेपरवाही से रोगी मर जाता तो उसे उचित सजा दी जाती थी।

चन्द्रगुप्त के समय में मुर्दे की आकस्मिक परीक्षा (Post mortem examination) अर्थात् चीरफाड़ का भी प्रबन्ध था। जिस मनुष्य की मृत्यु आकस्मिक हो जाया करती थी

उसके मृत शरीर को चीर कर उन बातो का निर्णय किया जाता था जिनके कारण उसकी मृत्यु हुई है।

तात्पर्य्य यह है कि, उस समय औषधालयों, डाक्टरों, वैद्यो आदि का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम ढङ्ग से था।

म्यूनिसिपल विभाग

उस समय शहर सफाई आदि बातों का भी पूरा ख़याल रक्खा जाता था। जनता के अन्दर किसी प्रकार की बीमारी न फैलने पावे इसका राज्य की ओर से पूरा प्रबन्ध किया जाता था। जो व्यक्ति घृत, तेल, नमक, सुगन्धित पदार्थ आदि वस्तुओं में खराब मिलावट करता था, उसे पूरी सजा दी जाती थी। सड़कों पर कूड़ा कर्कट फेंकना या गंदला जल डालना, जिस से दुर्गंधित कीचड़ हो जावे आदि कार्य्य भी सज़ा के योग्य समझे जाते थे। राजमहल, मन्दिर, गलियो, तालाब, नदी आदि स्थानों के आस पास मल मूत्र त्यागने की सख्त मनाई थी। मुर्दे गाड़ने अथवा जलाने का प्रबन्ध शहर से दूर एक नियमित स्थान पर कर दिया जाता था। उस स्थान के अतिरिक्त दूसरे स्थान पर जो मुर्दे जलाता अथवा गाड़ता उसे सजा दी जाती थी या उस पर जुर्माना होता था। छूत की बीमारी न फैले इसके लिए भी उचित प्रबन्ध था।

दैवी विपत्तियों से रक्षा

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आठ प्रकार की दैवी विपत्तियां मानी गई हैं। (१) आग (२) पानी (३) बीमारी (४) दुर्भिक्ष (५) चूहा (६) शेर (७) सांप तथा (८) राक्षस।

इन आठों प्रकार की विपत्तियों से रक्षा करने का भी उस समय पूर्ण प्रबन्ध था। पाटलिपुत्र में लकड़ी के मकान अधिकतर होनेसे आग लगने का डर अधिक रहता था। इसलिए आग से रक्षा करने के लिए राज्य की ओर से कई उपाय काम में लाये जाते थे। हर एक घर में घड़ा, सीढ़ी, रस्सी आदि दस प्रकार के यन्त्र जिन्हें कौटिल्य अर्थशास्त्र में "दशमूली संग्रह" कहा है रहते थे। ग्राम के लोगों के लिए रात को घर के बाहर सोने की आज्ञा थी। इसके अतिरिक्त शहर में घास, फूस, वगैरह के छप्पर बनाने की भी मनाई थी। हरएक मुहल्ले में राज्य की ओर से घड़ों का पानी जमा रहता था, जिससे आग बुझाई जाती थी।

पानी—नदी के किनारे वाले ग्रामवासियों को वर्षा की रातों में किनारे से दूर के मकानों में सुलाया जाता था। राज्य की ओर से हमेशा लकड़ी तथा बांस की नावें तैयार रहती थीं। जिन्हें बाढ़ के समय नदी में डाल कर लोगों की रक्षा की जाती थी। कोई भी मनुष्य जिसके पास नाव हो अथवा वह तैरना जानता हो, यदि बाढ़ के अवसर पर आफत पीड़ितों की सहायता न करे या भाग जाय तो उस पर १२ पण ([illegible]) जुर्माना किया जाता था।

[illegible]—राज्य की ओर से हमेशा [illegible] मौजूद रहता था। [illegible] के समय [illegible] को [illegible] मूल्य पर [illegible] किया जाता था। इसके अतिरिक्त [illegible] की ओर से [illegible] मनुष्यों [illegible] मकानों पर [illegible] किया जाता था, [illegible]

अमीर लोगों पर ऐसे समय में टैक्स बढ़ा दिया जाता था अथवा उनसे ग़रीब प्रजा को मदद दिलवाई जाती थी।

सांप—सांपों से रक्षा पाने के लिये मकानो पर कुछ ऐसी दवाइयां पोत दी जाती थीं, जिनकी गन्ध के मारे सांप विष रहित हो जाँय। अथवा मकान से बाहर निकल जॉय।

इसी प्रकार चूहों तथा हिंसक जन्तुओं आदि का भी यथोचित उपाय किया जाता था।

अनाथों की सहायता

निस्सहाय ग़रीबो, विधवाओ, लूली लंगड़ी स्त्रियों, अथवा ऐसे अनाथ बच्चों के लिये जिनके पालक मर गये है, राज्य की ओर से समुचित प्रबन्ध था। निस्सहाय ग़रीबो को राज्य की ओर से ऐसा काम दिया जाता था जिन्हे वे सुभीते पूर्वक कर सकें। विधवाओ और लूली लगड़ी स्त्रियो से राज्य की ओर से सूत कतवाया जाता था; और उसके बदले में उन्हे उचित मजदूरी दी जाती थी। एक स्वतन्त्र विभाग इस बात के लिए नियुक्त था कि वह विधवाओ के घर रुई पहुंचा दे। और उन्हे उचित मजदूरी देकर कता हुआ सूत वापस ले ले।

खुफिया विभाग

(C I D Department)

सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय मे खुफिया विभाग बहुत ही अधिक उन्नति पर था। कई लोगों का अनुमान है कि आजकल पाश्चात्य देशों में खुफिया विभाग का जैसा अच्छा प्रबन्ध है

वैसा पहले किसी भी देश में न था। पर यदि वे लोग सम्राट चन्द्रगुप्त के समय के खुफिया विभाग का वृत्तान्त पढ़ेंगे तो अवश्य उनका यह भ्रम दूर हो जायगा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में खुफिया विभाग का जो वर्णन किया गया है, उसी के आधार पर हम बहुत ही संक्षिप्त में इस विभाग का वृत्तान्त लिखते हैं।

उस समय खुफिया पुलिस के बहुत से अङ्ग थे। जिनमें से कुछेक निम्न लिखित हैं।—

(१) कापटिक (२) उदास्थित (३) गृहपतिक (४) वैदेहक (५) तापस (६) सत्री (७) तीक्ष्ण (८) रसद (९) भिक्षुक (१०) मुण्डा (११) वृषली।

(१) दूसरों के दोषों को जानने वाले चलते पुरजे विद्यार्थियों के वेष में रहनेवाले खुफिया को "कापटिक छात्र" कहते हैं। इन विद्यार्थियों की मंत्री वगैरह बहुत इज्जत करते थे। वे उनको बहुत सा धन देकर कहते कि तुमको राजा की और मेरी शपथ है। तुम प्रजा में जिस किसी का भी नुकसान होता देखो, फौरन ही मुझे बतलाओ।

(२) जो लोग सन्यासी तथा उदासी के रूप में रह कर खुफियागिरी करते थे उन्हें "उदास्थित खुफिया" कहा जाता था। यह बहुत से विद्यार्थियों को साथ लेकर खेती बाड़ी, पशु पालन आदि का कार्य करते थे। इनसे जो कुछ आमदनी होती थी उससे इनके अन्न वस्त्र का काम चलता था। ये चारों ओर, इधर उधर रह कर गुप्त समाचार प्राप्त करते थे और उन्हें अपने विभाग में पहुँचा देते थे।

(३) जो लोग ग़रीब तथा बेकार गृहस्थ किसानों के रूप

में रह कर खेती तथा अपने उद्योग धन्धों को करते हुए जासूसी कार्य्य करते थे उन्हें उस समय "गृहपतिक" कहा जाता था।

(४) गरीब बनियों के रूप में रह कर जो खुफिया आंटा, दाल, नोन, मिर्च आदि वस्तुएँ बेचते थे उन्हे "वैदेहक" कहा जाता था। ये लोग दीखने मे तो बड़े सदाचारी और बुद्धिमान दिखलाई देते थे, पर गुप्त रूप से जासूसी का काम किया करते थे। इस कार्य्य के बदले मे राज्य की ओर से इन्हें वेतन मिलता था।

(५) सिर मुण्डे तथा जटाधारियो के वेश में रहकर सरकारी काम करनेवाले लोग "तापस" अर्थात् तपस्वी कहे जाते थे। ये लोग समूह रूप से साथ रहकर सिद्ध और साधक का काम किया करते थे। प्रकट रूप से ये लोग एक या दो मास मे एकाध बार कभी २ थोड़ा सा शाक तथा एकाध मुट्ठी अन्न खा लिया करते थे। पर गुप्त रूप से ये भरपेट भोजन कर लेते थे। वैदेहक के रूप में जासूसी करनेवाले बनिये, और दूसरे जासूस अप्रत्यक्ष रूप मे इनसे खूब मिले हुए रहते थे। वे लोग सारी जनता में इस बात का प्रचार कर देते थे कि, अमुक बाबाजी बड़े सिद्ध और अलौकिक शक्ति सम्पन्न पुरुष हैं। इधर जो लोग उनके दर्शनार्थ आते, उनके विषय में बहुतसी बाते पहले ही ये लोग मालूम कर रखते थे। उनके आते ही उनका हाथ देख कर उन लोगो को वे बातें बतला देते थे। इसके अतिरिक्त किस स्थान पर आग लगने वाली है, किसको घाटा होनेवाला है, कहां चोरी होनेवाली है, किन २ लोगो को राज्य की ओर से इनाम मिलेगा, कौनसा राज्य कर्मचारी कहां बदला जायगा, आदि

थाने भी वे बतलाते थे। मंत्री लोग प्रायः इनसे मिले हुए होते थे। अतः वे कुछ कार्य्य इनकी कही हुई भविष्य वाणी के अनुसार कर देते थे। जैसे किसी को इनाम देना, किसी की बदली कर देना, आदि। इस तरह साधारण जनता की इन लोगों के प्रति बड़ी श्रद्धा हो जाया करती थी।

उपरोक्त पांच प्रकार के खुफिया विभाग वालों को राज्य की ओर से धन तथा सम्मान मिलता था। ये लोग राज कर्मचारियों के हृदय की भलाई बुराई का पता लगाने की कोशिश करते थे।

(६) जो अनाथ लोग राज्य की ओर से खाना कपड़ा पाते थे वे "सत्री" कहलाते थे। ये लोग लोगों के हाथ देख कर फल बतलाना, बाजीगरी और जादूगरी करना, फलित ज्योतिष करना, आदि काम करते थे। और दूसरे लोगों से मिल कर रहने का प्रयत्न करते थे।

(७) जो क्रूर, निडर तथा रुपये के निमित्त हाथी, शेर आदि जानवरों को लड़ाते थे ये लोग तीक्ष्ण कहे जाते थे।

(८) बन्धु, बान्धवों के प्रति उदासीन तथा द्वेष रखनेवाले क्रूर और आलसी लोग ज़हर देने के लिए नियुक्त किये जाते थे। इन्हें उस समय "रसद" संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था।

(९) ऐसी दरिद्र विधवा ब्राह्मणियाँ जो बहुत साहस रखनेवाली हों, और नौकरी की तलाश में हों, परिव्राजिकाएँ (सन्यासिनि के वेष में जासूसी करनेवाली) बनाई जाती थीं। ये रानी, अमात्य आदि बड़े २ राजाधिकारियों के घरों में आती जाती थीं। और वहां से जो गुप्त समाचार मिलते हों उन्हें राजा के पास पहुँचाती थीं।

(१०–११) मुण्डा (सिर मुण्डी हुई औरत) तथा वृषली (जो दासी के वेष मे खुफिया का काम करे) इनके कार्य भी परिव्राजिका की ही तरह होते थे।

ये सब जासूस भिन्न २ देशों के रीति रिवाजों, और तरह २ की भाषाओं के जानकार होते थे। सब प्रकार की कारीगरी और कुलीनों के रहन सहन से वाकिफ, राजभक्त, कार्य्य पटु, तथा शक्तिशाली लोग ही इस विभाग में नियुक्त किये जाते थे।

मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढ़ीदार अन्त पुर रक्षक समाहर्ता (कलक्टर) कोषाध्यक्ष, हवल्दार, नगराध्यक्ष व्यवसायाध्यक्ष, मन्त्रीसभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, सीमारक्षक, तथा जंगल–रक्षक आदि सभी उच्च राजकर्म्मचारियों पर ये जासूस गुप्त रूप से लगे रहते थे। ये लोग कहां २ पर आते जाते हैं, तथा किन २ से मिलते हैं इस बात की जांच "तीक्ष्ण" लोग–जो छाता लगानेवाले, अतरदान तथा गुलाबदान रखने वाले, पंखा चलानेवाले, खड़ाऊ उठानेवाले, आसन लगानेवाले, तथा साईस के रूप मे रहते थे–किया करते थे। इन लोगों से जो कुछ समाचार प्राप्त होते उन्हे "सभी" लोग अपने २ विभागों में पहुँचा देते थे।

कहार, नाई, अतर लगानेवाला, स्नान करानेवाला, पानी भरनेवाला, आदि लोगों के वेषमें रसद लोग रहते थे। ये लोग इस रूप में रहकर जितने समाचार प्राप्त कर सकते, करते थे।

गूंगे, बहरे, बेवकूफ़ तथा अन्धे के वेष में नटनर्तकी, गवैये, बजैये, भाण्ड, कवि, चारण लोग तथा खुफिया औरतें उपरोक्त

राज्य कर्मचारियों की गुप्त बातों को लेकर परिव्राजिकाओं के द्वारा असली हाल अपने विभागों में पहुँचा देती थीं।

भिन्न २ विभागों के प्रबन्ध कर्ता अपनी निर्द्धारित की हुई गुप्त लिपि तथा संकेतों से खुफिया लोगों को इधर उधर भेजते थे। खुफिया और उनके विभाग परस्पर में एक दूसरे को न जानने पाते थे। जहां खुफिया भिखमङ्गों की पहुँच न होती थी वहां पर ड्योढ़ीदार कारीगरीन, दासी आदि गुप्त लिपि अथवा इशारों से अन्दर की बात बाहर पहुँचा देती थीं। अगर कोई पक्का मामला होता तो आग लगा कर, अथवा विष प्रयोग करके नट बीमारी वगैरह का बहाना कर बाहर निकल जाते थे।

यद्यपि खुफिया में वे ही लोग भरती किये जाते थे जो सत्य वक्ता एवम् विश्वासपात्र हों। तथापि उनके लिये भी बड़े कठोर नियम बंधे हुए थे।

जब तीन विभागों का समाचार एक सा होता था, तभी वह सत्य माना जाता था। यदि समाचार बार २ भिन्न २ प्रकार का मिले तो उस से सम्बन्ध रखनेवाले खुफिया लोग भीतर से भीतर गुप्त रीति से पिटवा दिये जाते थे। अथवा यदि किसी महत्व पूर्ण कार्य में मतभेद होता तो खुफिया लोग गुप्त रीति से मरवा दिये जाते थे। गुप्तरीति से दिये जानेवाले इस दण्ड को इस [illegible] "[illegible]" कहते थे।

के रूपमे खुफिया पुलिस रक्खी जाती थी। किलो के भीतर बनिये और व्यापारी खुफिया का काम करते थे। किलो के बाहर साधु वैरागी और तपस्वी के रूप मे जासूस रहते थे। शत्रु के गांवो मे किसान, राष्ट्र सीमा पर ग्वाले, जङ्गलो में भील, खुफिया का काम करते थे।

इसके अतिरिक्त इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा जाता था कि, कही हमारे राज्य मे शत्रु के गुप्तचर भी काम कर रहे हैं या नहीं। इसके लिये स्वराष्ट्र के बहुत ही विश्वासपात्र गुप्तचर नियुक्त किये जाते थे। नगर और गांवो मे आनेवाले नये २ यात्रियों पर जासूस लोग हमेशा तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। तीर्थ, सभा, शाला, यात्रीसंघ, तथा भीड़ भाड़ मे गुप्तचर लोग जाते और आपस मे ही झगड़ा करके लोगो के भावो का पता लगा लेते थे। इन लोगो के गुप्त समाचारो से राज्य प्रबन्ध मे जो दोष नजर आते वे फौरन दूर कर दिये जाते थे। जो लोग राजा से नाराज होते उन्हे प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती थी। यदि ऐसे लोग कोशिश करने पर भी प्रसन्न न होते तो वे शहर से बाहर कर दिये जाते, अथवा राजकुमार आदि किसी प्रतिष्ठित पुरुष से लड़ा दिये जाते, अथवा भीतर ही भीतर किसी षड्यन्त्र के द्वारा मरवा दिये जाते थे। मतलब यह है कि, उन्हें शत्रुओं का सहारा लेने को बिलकुल मौका न दिया जाता था।

अर्थशास्त्र के अन्दर कौटिल्य लिखते हैं कि, शत्रु अपना काम प्रायः चार प्रकार के लोगों को प्रलोभन देकर-उन्हे अपनी ओर फोड़ कर किया करता है। वे चार प्रकार के लोग निम्नाङ्कित हैं.—

(१) क्रुद्ध (२) भयभीत (३) लोभी (४) और मानी । क्रुद्ध उन लोगों को कहते हैं, जिन्हें राज्य की ओर से किसी प्रकार का वचन देकर धोखा दिया गया हो, जिन्हें राज दर्बारियों ने तंग कर रक्खा हो, जो अपने पैतृक अधिकार से वंचित कर दिये गये हों, जो राज्याधिकार से पदच्युत कर दिये गये हों, अथवा जिनकी प्रतिष्ठा बिगड़ गई हो, जो जेल में डाले गये हों, गुप्त रीति से पीटे गये हों, जो अपराध करते समय पकड़े गये हों, जिनका सामान जप्त कर लिया गया हो, जिनके बन्धु बान्धवों में से किसी को देश निकाला दिया गया हो, अथवा जिनका धन हरण कर लिया गया हो, इत्यादि । मतलब यह है कि, जो राज्य की ओर से किसी भी प्रकार से क्रुद्ध हो गये हों, वे "क्रुद्ध" कहलाते हैं ।

भयभीत वर्ग के लोग वे कहलाते हैं जो अपनी ही भूल से हानि उठा चुके हों; जिनके दुष्ट कर्म राज्य को ज्ञात हो गये हों, जिनकी जागीर छिन गई हो, अथवा जो किसी भी कारण से राज्य की ओर से भयभीत हो रहे हों उन्हें "भीतवर्ग" कहते हैं ।

जो लोग किसी आकस्मिक घटना से एकदम धनवान से दरिद्री हो गये हों, जो कंजूस हों अथवा जिन्होंने दुर्व्यसनों में पड़ कर अपने ही घर की बरबादी कर डाली हो, ऐसे लोग "लोभी वर्ग" के कहलाते हैं ।

इस प्रकार के लोगो की जांच खुफिया पुलिस नाना प्रकार के ज्योतिषियों जैसे भाग्यफल बताने वाले, हाथ देखनेवाले का रूप धर कर किया करती थी। कभी २ सिरमुण्डे अथवा जटाधारी सन्यासियों का रूप धर कर भी वह इस काम को करती थी। ये लोग इन चारो तरह के लोगों में हिल मिल कर उन्हें बहकाने की कोशिश करते थे। कुछ लोगों के सम्मुख बनावटी रूप से वहां के राजा के अत्याचारों की कहानी सुना कर उसको दूसरे राजा की ओर मिल जाने के लिये ये लोग कहते थे। भयभीत लोगो को इस प्रकार कह कर कि, "राजा तुम पर झूठा संदेह करता है; इसलिये तुम दूसरे देश में क्यो नहीं चले जाते" परिक्षा लिया करते थे। लोभी मनुष्यो को यह कह कर आजमाते थे कि, "यह राजा नीच आदमियों की बड़ी कदर करता है, ऐसे आदमी की आप क्या नौकरी करते है, कहीं दूसरी अच्छी जगह क्यो नहीं ढूंढते हैं।" मानी लोगो के सम्मुख बनावटी रूप से "हरे! हरे! यह राजा आपके समान महापुरुषों की बिलकुल इज्जत नहीं करता, अमुक राजा इस प्रकार के लोगों की कदर करना जानता है" इस प्रकार कह कर ये लोग उन लोगों के हृदय की थाह लेते रहते थे। यदि इस प्रकार के प्रलोभनो से किसी का चित डांवाडोल होता हुआ देखते अथवा किसी की नीयत बिगड़ने का इनको खयाल होता, तो फौरन उसका संवाद अपने विभाग को देते थे। जहाँ से फौरन उसका प्रबन्ध होता था। जो मनुष्य इनकी परीक्षा में अर्थात राजभक्ति में पूरा उतरता उसे राज्य की ओर से धन और सम्मान दिया जाता था।

'इसी प्रकार डाकू-चोरों को पकड़ने के लिये खुफिया सत्री के रूप में अथवा किसी डाकू का वेष धारण करके उनमें जा मिलते थे और फौरन चोरों को पकड़वा देते थे।

इस के अतिरिक्त युद्ध के समय में शत्रु के कैम्पों में घुसकर उन के सेना-बल का, उनकी शक्ति का, उनकी गुप्त मंत्रणा का पता लगानेवाले जासूस अलग रहते थे। उन सब का विवरण करने से पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाने का डर है। इस कारण इससे अधिक जानने के इच्छुकों को कौटिल्य के अर्थ शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए*। इस पुस्तक के लिए तो इतना ही बहुत अधिक था, पर प्रसङ्ग छिड़ जाने के कारण इतना लिखना पड़ा।

जिस साम्राज्य के अन्दर इस प्रकार का सुदृढ़ प्रबन्ध हो, उसके राज्य में यदि चोरी, व्यभिचार, अन्याय, विश्वासघात इत्यादि अपराध बहुत ही कम होते हों तो, इसमें क्या आश्चर्य है? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि चन्द्रगुप्त का राज्य प्रजातंत्र न था, पर जहां की शासन-प्रणाली इतनी सुन्दर हो, वहां का राजतंत्र भी आजकल के प्रजातंत्र शासन से उत्तम है।

कर्मचारियों का वेतन।

(१) गुरु, पुरोहित, राजाध्यापक, महामन्त्री, सेनापति, युवराज, राजमाता और महारानी—

४८००० पण* वार्षिक

(२) पुलिस के उच्चाधिकारी, समाहर्ता, नगर के द्वार और राजप्रासाद का रक्षक, आदि—

२४००० पण वार्षिक

(३) दूसरे राजकुमार और उनकी माताएं, भिन्न २ विभागों के उत्तम पदाधिकारी, कौंसिल के सदस्य, प्रधान सीमारक्षक—

१२००० पण वार्षिक

हाथी, घोड़े आदि राज्य-पशुओं के अधिष्ठाता—

८००० पण वार्षिक

पलटन, घुड़सवार, तथा गाड़ियों के अधिष्ठाता—

४००० पण वार्षिक

एक नियत काल के पश्चात् प्रत्येक पदाधिकारी पेंशन का अधिकारी हो जाता था। यदि कोई पदाधिकारी सरकारी नौकरी करते हुए मर जाता तो उसके कुटुम्ब का पोषण राज्य की ओर से होता था।

---

* विन्सेण्ट स्मिथ के मतानुसार एक पण करीब ।।।) का होता था। पर राय बहादुर ओझाजी कई प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि, एक पण एक पैसे के बराबर होता था। साथ ही इस बात को स्वीकार करते हुए कई लेखक यह कहते हैं कि पण एक पैसे के बराबर तो होता था पर उस समय एक पैसे का इतना ही मूल्य समझा जाता था, जितना आज कल एक गिनी का। यह कहां तक सत्य है, कुछ कहा नहीं जा सकता। —लेखक।

राज्य को २४ पण दण्ड स्वरूप दे। इसके पश्चात् वह चाहे जितनी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है; क्योंकि, स्त्रियाँ लड़के पैदा करने के खातिर ही हैं।"

इससे मालूम होता है कि, उस समय स्त्रियाँ केवल सन्तान पैदा करने की ही वस्तु समझी जाती थीं। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि, उस समय दाम्पत्य प्रेम बिलकुल ही नष्ट हो गया था तथापि इतना अवश्य है कि, स्त्री और पुरुषों के पवित्र प्रेम की जो ऊंची मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के काल में थी वह बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी।

विवाह सम्बन्धी नियम

चन्द्रगुप्त के समय में विवाह के कई प्रकार के अङ्ग माने जाते थे। ब्राह्म विवाह, प्रजापत्य विवाह, आर्ष्य विवाह, दैव विवाह, ये चार विवाह धर्मविवाह समझे जाते थे। इसके अतिरिक्त गान्धर्व, पैशाच और राक्षस विवाह भी उस समय प्रचलित थे। चार प्रकार के धर्म विवाहों में एक दूसरे के परित्याग करने का रिवाज न था। शेष तीन प्रकार के विवाहों में निम्न नियमों के अनुसार स्त्री पति का अथवा पति स्त्री का त्याग कर सकता था.—

(१) जो स्त्री अपने पति से द्वेष रखती हुई सात मासिक धर्म तक दूसरे पुरुष की कामना करती रही हो वह अपने गहने पति को लौटा दे और उसे दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे दे। इसी प्रकार जो पुरुष अपनी स्त्री को न चाहता हो वह उसको वैरागीन, सम्बन्धी, रिश्तेदार अथवा परिवार के लोगों के

पास जाने से न रोके। जो पुरुष अपनी स्त्री को झूठमूठ ही किसी प्रकार से बदनाम करता हो, उस पर जुर्माना किया जाता था।

(२) यदि पति स्त्री को छोड़ना न चाहे तो स्त्री नाराज होते हुए भी उसे नहीं छोड़ सकती है। इसी प्रकार पति भी स्त्री को नहीं छोड़ सकता है। परित्याग उसी हालत में संभव हो सकता है, जब दोनों ही के मन एक दूसरे से फट गये हों।

इसके अतिरिक्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह भी पता चलता है कि उस समय समाज में पुनर्विवाह भी प्रचलित था। जैसे—

"नीच, विदेश गये हुए, राज्य का अपराध किये हुए, दूसरे का खून किये हुए, पतित, त्याज्य तथा नपुंसक पति को स्त्री सदा के लिए छोड़ सकती है।"

राज्य को २४ पण दण्ड स्वरूप दे। इसके पश्चात् वह चाहे जितनी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है; क्योंकि, स्त्रियाँ लड़के पैदा करने के खातिर ही हैं।"

इससे मालूम होता है कि, उस समय स्त्रियाँ केवल सन्तान पैदा करने की ही वस्तु समझी जाती थी। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि, उस समय दाम्पत्य प्रेम बिलकुल ही नष्ट हो गया था तथापि इतना अवश्य है कि, स्त्री और पुरुषों के पवित्र प्रेम की जो ऊंची मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के काल में थी वह बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी।

विवाह सम्बन्धी नियम

चन्द्रगुप्त के समय में विवाह के कई प्रकार के अङ्ग माने जाते थे। ब्राह्म विवाह, प्रजापत्य विवाह, आर्घ्य विवाह, देव विवाह, ये चार विवाह धर्मविवाह समझे जाते थे। इसके अतिरिक्त गांन्धर्व, पैशाच और राक्षस विवाह भी उस समय प्रचलित थे। चार प्रकार के धर्म विवाहों मे एक दूसरे के परित्याग करने का रिवाज न था। शेष तीन प्रकार के विवाहों में निम्न नियमों के अनुसार स्त्री पति का अथवा पति स्त्री का त्याग कर सकता था.—

(१) जो स्त्री अपने पति से द्वेष रखती हुई सात मासिक धर्म तक दूसरे पुरुष की कामना करती रही हो वह अपने गहने पति को लौटा दे और उसे दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे दे। इसी प्रकार जो पुरुष अपनी स्त्री को न चाहता हो वह उसको वैरागीन, सम्बन्धी, रिश्तेदार अथवा परिवार के लोगों के

चन्द्रगुप्त के समय में ग्राम-रचना

सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में ग्राम-रचना का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम था। जो लोग किसी भी उजड़े हुए ग्राम को पुनः बसाते, अथवा किसी नये ही ग्राम की रचना करते उन्हें राज्य की ओर से बहुत साधन और सम्मान प्राप्त होता था। प्रत्येक ग्राम में कम से कम सौ और अधिक से अधिक पाँचसौ परिवारों का समुदाय रहता था। उनकी सीमा दो मील से लेकर चार मील तक रहती थी। इन ग्रामों की रचना अधिक दूरी पर न की जाती थी। बल्कि ऐसे ढङ्ग से ये बसाये जाते थे जिसमें ये सहज ही में एक दूसरे की मदद कर सकें। नदी, पहाड़, जङ्गल, पेड़, गुहा, तालाब, बड़, पीपल, आदि निशानों से उनकी सीमा नियुक्त की जाती थी। प्रति आठसौ ग्रामों के बीच में "स्थानीय" चारसौ ग्रामों के बीच में "द्रौण मुख," दोसौ ग्रामों के बीच में "खार्वटिक" तथा दस ग्रामों के बीच में "संग्रहण" नामक किले बनाये जाते थे।

इन ग्रामों में बसने वाले ऋत्विक, आचार्य्य, पुरोहित, तथा श्रोत्रिय लोगों को राज्य की ओर से जागीरें मिलती थीं। ग्रामाध्यक्ष, संख्यायक, गोप, वैद्य आदि राजसेवकों को भी भूमि दी जाती थी। पर इन लोगों को उसके बेचने अथवा गिरवी रखने का अधिकार न होता था। जो लोग जमीन का लगान देते थे, उन्हें उतनी ही जमीन दी जाती थी जो एक मनुष्य के लिये पर्याप्त हो। जो आदमी अपनी भूमि को नहीं जोतता था उससे भूमि छीन कर दूसरे को दे दी जाती थी। ग्रामों में खेत

(३) सोना, चांदी, हीरा, माणिक, मोती, शंख, लोहा, तांबा, आदि से जो आमदनी होती है उसे "खनि" कहते हैं।

(४) फल फूल के बगीचे, तरकारी के खेत तथा कन्दमूल आदि पर जो कर लिया जाता उसे "सेतु" कहते हैं।

(५) पशु, मृग, लकड़ी, घास, हाथी आदि के जङ्गलो को "वन" कहते है ।

(६) गाय, भैस, वकरी, ऊँट, घोड़ा, खच्चर, गदहा आदि "व्रज" कहे जाते है ।

(७) व्यापार के लिए नियुक्त जल मार्गों और स्थल मार्गों को "वणिकपथ" कहते हैं।

इन सातो प्रकार की आमदनियो पर देखरेख रखने के लिए तथा और भी कार्य्य करने के लिए राज्य की ओर से एक "समाहर्ता" नियुक्त रहता था, जिसे आज कल की भाषा में "कलेक्टर" या "कमिश्नर" कह सकते हैं।

समाहर्ता के अधिकार मे इन सब करो और दूसरी आमदनियो को वसूल करने वाले भिन्न २ अधिकारी रहते थे। जैसे कोष्ठगाराध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष (चुगी वसूल करने वाला) सीताध्यक्ष (जमीन का कर वसूल करने वाला) खनिजाध्यक्ष (खानो की आमदनी इकट्ठा करने वाला) कुप्याध्यक्ष (जगली पदार्थों का अध्यक्ष) सुराध्यक्ष (शराब आदि का टैक्स लेने वाला) गणिकाध्यक्ष, नावाध्यक्ष आदि । ये सब लोग अपने विभाग का राज्य कर इकट्ठा करते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्यारह प्रकार के राज्य-कर बतलाये हैं ।

(१) सीता (२) राष्ट्र (३) शुल्क (४) परिवर्तक

(५) प्रामित्यक (६) आप मित्यक (७) सिहनिका (८) अन्य जात (९) व्यय प्रत्याय (१०) व्याजी (११) उपस्थान।

इन सब करों का व इनकी वसूली का विस्तृत विवेचन करना इस लघुकाय ग्रन्थ में बिलकुल असम्भव है। अतएव इतना ही कह देना पर्याप्त है कि, इन करों की वसूली बिलकुल नियम-पूर्वक होती थी। जो लोग कर देने से जी चुराते उनको शारीर और अर्थ दोनों प्रकार के दण्डों में से कोई भी एक दण्ड होता था।

दण्ड-विधान

पास वाली उंगली) काटने का, दूसरी बार अंगूठा काटने का, तीसरी बार दाहिना हाथ काटने का और चौथी वार मे मृत्यु का दण्ड दिया जाता था। पहली, दूसरी और तीसरी बार मे यदि वह दण्ड से मुक्त होना चाहता तो उसे क्रमशः ५४, १: और ४०० "पण" जुर्माने के देने पड़ते।

[२] सेंध लगा कर माल चुराने वाले का कंधा काट दि जाता था। अथवा उस पर २०० पण जुर्माना किया जाता थ

[३] औरत को भगाने तथा व्यभिचार करने वाले पुरुष नाक कान काट लिये जाते थे अथवा उसे ५०० पण जुर्माने देने पड़ते थे।

[४] यदि कोई मनुष्य किसी कारीगर के अङ्ग की हा कर दे तो उसका भी वही अङ्ग काट लिया जाता अथवा उ प्राणदण्ड तक दे दिया जाता था।

[५] यदि किसी लड़ाई झगड़े मे कोई किसी को मार दे उसे कठिन मृत्युदण्ड दिया जाता था।

[६] उन सब लोगों को प्राणदण्ड दिया जाता था जो किस की हत्या कर डाले, जो बारम्बार रण्डियों के यहां जाय, लोग को फजूल में बार २ तकलीफ दे, दूसरे के मकानों को बार तोड़े, झूठी २ खबरें उड़ावे, पथिकों को लूटे, अथवा मारे य बारम्बार चोरी करे।

[७] जो कम उम्रवाली बालिका के साथ बलात्कार करत था, उसके दोनों हाथ पैर काट दिये जाते थे। यदि वह लड़क मर जाती थी तो अपराधी को भी मृत्युदण्ड दिया जाता था।

[८] जो माम्री, बुआ, मामी, गुरुआनी, बहू, बेटी तथा

भगिनि के साथ व्यभिचार करता था उसकी कामेन्द्रिय काट कर मृत्युदण्ड दिया जाता था।

[९] यदि कोई अरक्षित ब्राह्मणी का धर्म भंग करे तो उस अपराध में क्षत्रिय को उत्तम साहस दण्ड दिया जाता था। वैश्य का सर्वस्व-हरण कर लिया जाता था तथा शूद्र को भूसी की आग में जलाया जाता था।

[१०] जो कोई राज-भार्य्या के साथ गमन करता उसे [illegible] में भून कर आग में डाल दिया जाता था। जिसमें [illegible] के और अपराधी तड़फ २ कर प्राण दे देता था।

इस प्रकार और भी भिन्न २ अपराधों के लिये नाना प्रकार के दण्ड नियत थे।

किया जा चुका है। कहने का मतलब यह है कि, सभी लोग सुखी और सम्पन्न थे। स्ट्रैबो नामक एक लेखक लिखता है कि, "भारतवासी यज्ञों के सिवा कभी शराब नहीं पीते थे। सत्य-परायणता और वचननिर्वाह भारतीय जनता का एक व्यापक गुण था। उस समय के लोगों में लेनदेन आदि के विषयों पर कभी मुकद्दमेबाज़ी नहीं होती थी"। वचन को भङ्ग करना तो उस समय के लोग प्रायः जानते तक न थे। लेनदेन, में लिखा पढ़ी, गवाहो तथा जमानत की जरूरत न थी। ईमानदारी यहां तक बढ़ी हुई थी कि किसी तरह के जबानी सौदे, निश्चय अथवा अमानत के लिए लिखापढ़ी की जरूरत ही न पड़ती थी। उस समय के लोग विश्वास के महत्व को जानते थे, धर्म के रूप को समझते थे तथा सत्य के सौन्दर्य्य पर मुग्ध थे। चोरी वगैरह का यह हाल था कि मालताल को अरक्षित अवस्था में बिना ताले कुंजी के छोड़ जाते थे। न कोई किसी पर अन्याय करता और न कोई किसी के अन्याय को सहन करता था। भारतीय सम्राट् विदेशो पर आक्रमण करने को धर्म-विरुद्ध समझते थे। मतलब यह है कि उस समय सत्यधार्मिकता का बहुत आदर था।

जो जनता सम्राट् चन्द्रगुप्त के सिंहासनारूढ़ होने के पहले इतनी विश्रृंखल हो रही थी, एक सुसंगठित शासन के होते ही उसका कितना विकास हो गया, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। खुफिया पुलिस, दण्डविधान, आदि अनेक बाह्य कारण इस बात के हो सकते हैं। पर सबसे बड़ा कारण इस विकास का सम्राट् चन्द्रगुप्त थे। इनकी कर्मठता, विवेक शीलता तथा धार्मिक शीलता का प्रतिबिम्ब यदि जनता पर पड़े तो क्या आश्चर्य्य है।

वास्तव में देखा जाय तो इसी स्थान पर आकर "यथा राजा तथा प्रजा" का सिद्धान्त सत्य होता है। और इसी स्थान पर "राजा ईश्वर का अंश है" इस कथन की प्रामाणिकता मिलती है।

हमने संक्षिप्त रूप में सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य-शासन का कुछ वृत्तान्त ऊपर लिखने की कोशिश की है। जितने विभागों के शासन पर हमने प्रकाश डाला है, उनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे विभाग रहे हैं जिनका हम वर्णन भी न कर सके। इन सब विभागों का पूरा वृत्तान्त जानने के लिए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

नीति की सत्ता अटल थी। उसके शासनकाल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी प्रचलित था। बाहर के विदेशी व्यापारियों के साथ यहां पर बड़ाही प्रेम पूर्ण व्यवहार होता था। उन को राज्य की ओर से बहुत सन्मान मिलता था। उनकी सेवा शुश्रूषा की भी सुन्दर आयोजना थी।

चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में शायद दक्षिण भारत और मद्रास प्रान्त सम्मिलित न थे। कहा जाता है कि, उसके बाद राजा बिन्दुसार ने उन्हे अपने साम्राज्य मे मिलाया। और सम्राट् अशोक के समय में सारा भारतवर्ष एक सूत्र मे बँध गया। सम्भव है यह बात सच हो, और मद्रास आदि प्रान्त सम्राट् चन्द्रगुप्त की सत्ता के बाहर भी रहे हो, तौ भी चौबीस वर्ष के अल्पकाल मे उसने अपनी सीमा को इतना अधिक बढ़ा लिया यही क्या कम है। भारतवर्ष मे एकच्छत्री साम्राज्य की स्थापना करने का एक मात्र श्रेय चन्द्रगुप्त को है।

इस प्रकार भारत की इस पवित्र भूमि पर २४ वर्ष तक राज्य कर उसकी सारी बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रीभूत कर भारत गगन का यह जाज्वल्यमान नक्षत्र (ईस्वी सन् से २९७ वर्ष पूर्व) अपने पुत्र बिन्दुसार (अमित्रघात) के हाथ में सारी राज्यसत्ता सौंप कर हमेशा के लिए अस्त हो गया।

चन्द्रगुप्त का जीवन निराशावाद के सिद्धान्तों को उखाड़ना देता हुआ हम लोगों को बतला रहा है कि, मनुष्य संसार मे आकर सब कुछ कर सकता है बशर्ते कि वह कर्मशील हो। एक साधारण से साधारण मनुष्य भी उत्साह, साहस और महत्वाकांक्षा की सहायता से जगद्विजयी सम्राट् हो सकता है।

चन्द्रगुप्त के पास कितनी शक्ति थी? नेपोलियन के पास कितनी सेना थी? बाबर में कितनी ताकत थी? कुछ भी नहीं, पर ये सब लोग अपने उत्साह से, अपनी महत्त्वाकांक्षा से और अपने साहस से बढ़ कर इतने बड़े सम्राट् हो गये कि जिनके नाम से इतिहास का भी गौरव बढ़ रहा है। वास्तव में चन्द्रगुप्त का नाम भारत के प्रामाणिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

सम्राट् बिन्दुसार

फिर भी यदि उपरोक्त बात सत्य हो, यदि बिन्दुसार ने ही दक्षिण प्रान्त विजय किया हो तो यह एक ही बात उनकी गौरववृद्धि के लिये बहुत है। क्योंकि, उस समय तक दक्षिण प्रान्त पर आर्य्य लोगो का पूर्णाधिकार नहीं हुआ था। पर बहुत से ऐतिहासिकों की यह भी राय है कि, दक्षिण प्रान्त को चन्द्रगुप्त ने ही अपने साम्राज्य मे मिला लिया था। यदि यह बात सत्य हो तब तो बिन्दुसार के जीवन मे एक भी बात ऐसी नहीं रह जाती जो उनके गौरव को बढ़ानेवाली हो। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने पिता के प्राप्त साम्राज्य पर बहुत ही उत्तम ढङ्ग से शासन किया। अपने पच्चीस वर्ष के शासनकाल मे उन्होंने चन्द्रगुप्त के द्वारा जमाई हुई नींव को जरा भी ढीली न होने दिया बल्कि उसे और भी मजबूत बनाने की चेष्टा करते रहे। और अन्त मे उन्होंने एक ऐसा वायु-मण्डल तैय्यार कर दिया, जिसके कारण भविष्य में उनके पुत्र अशोक को साम्राज्य की तरक्की करने का खूब अवसर मिला।

सम्राट् बिन्दुसार के समय मे साम्राज्य की शासननीति धार्मिक नीति और सामाजिक नीति प्रायः चन्द्रगुप्त के काल की तरह थी, अतः उनका पुनः विवेचन करना व्यर्थ है।

सम्राट् बिन्दुसार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

सम्राट् बिन्दुसार के समय मे भारतवर्ष का व्यापारिक विस्तार बहुत अधिक हुआ। पश्चिमीय देशो के साथ चन्द्रगुप्त के समय में भारत का जितना व्यापारिक सम्बन्ध था, बिन्दुसार के समय में वह उससे बहुत अधिक बढ़ गया था। व्यापार

लिए बहुत से नये २ मार्ग खुल गये थे। और दूसरे देशों के साथ आपस में दूतों का अदल बदल हुआ करता था। अर्थात् यहाँ के राजदूत दूसरे देशों की राजसभाओं में और दूसरे देशों के दूत यहाँ की राजसभा में उपस्थित रहा करते थे। मेगास्थनीज के चले जाने के पश्चात् सेल्यूकस सिकन्दर के पुत्र "एण्टीओकस" ने अपना नवीन दूत-समूह सम्राट् बिन्दुसार के राजदरबार में भेजा। उसके पश्चात मिश्र देश के तत्कालीन राजा "टाल्मीफिलाडलफस" ने भी "डैओनी सेऊस" नामक राजदूत की प्रधानता में अपना एक दूत समूह भेजा। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय भारतवर्ष का दूसरे देशों के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध था। इतना होते हुए भी इन देशों के ऊँची श्रेणी के विद्वान दूसरे देशों में आते जाते न थे। इस विषय में सम्राट् बिन्दुसार

सम्राट् अशोक

भारत के राजनैतिक रङ्गमञ्च पर अब एक ऐसा प्रतिष्ठित नाम आता है जो संसार के सम्राटों की प्रथम श्रेणी मे लिखने योग्य है। यह नाम केवल भारतवर्ष के ही इतिहास में नहीं, प्रत्युत सारे संसार के इतिहास में अपना एक खास स्थान रखता है। क्या राजनैतिक दृष्टि से, और क्या धार्मिक दृष्टि से, भारतवर्ष के इतिहास मे अशोक के सदृश उन्नत चरित्रवान् दूसरा कोई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता। सम्राट् अशोक के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ लिखते है—

"सम्राट् अशोक की टक्कर का कोई दूसरा राजा संसार के इतिहास मे नहीं हुआ। ऐतिहासिक शार्लिमेन, अकबर और सीजर से उसकी तुलना करते हैं। परन्तु उनकी यह तुलना ठीक नहीं। शायद संसार के इतिहास मे कोई दूसरा ऐसा शासक नहीं हुआ जिसने अपने शासन में ऐसे उत्तम नियमों के अनुसार कार्य्य किया हो; जैसा कि अशोक ने किया। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध संसार के महात्माओं मे अद्वितीय हैं, उसी प्रकार सम्राट् अशोक भी संसार के शासकों में अनुपम हैं।"

सम्राट् अशोक का जन्म

बौद्धों के प्राचीन साहित्य में "अशोकावदान" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्रायः अशोक की जीवनी से अधिक सम्बन्ध रखता है। इसमें अशोक के जन्म से सम्बन्ध रखनेवाली एक विचित्र घटना का उल्लेख किया गया है। उ
लिखा है:—

"तुम्हारी अपूर्व रूप राशि ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है, बतलाओ तुम्हारी क्या कामना है ? हम तुम्हारी सब कामनाओं को पूर्ण करेंगे" यह सुनकर उस ब्राह्मण कन्या ने लज्जा से नीचा मुँह कर लिया। राजा के दूसरी वार प्रश्न करने पर उसने कहा कि मैं तो आपको चाहती हूँ। यह सुन कर राजा ने हँस कर कहा कि तुम तो एक नापित कन्या हो और मैं भारतवर्ष का सम्राट् हूँ; भला यह सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इस पर ब्राह्मण कन्या ने कहा "भगवान् ! मैं नापित कन्या नहीं प्रत्युत एक ब्राह्मण कन्या हूँ। आपकी पत्नी बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो, इसी उद्देश्य से मेरे पिता मुझे आपके सिपुर्द कर गये थे।" यह सुनते ही राजा को तत्काल पूर्व घटना की स्मृति हो आई और उन्होंने उस ब्राह्मण कन्या को पट्टरानी बना दिया। इस कन्या के गर्भ से दो पुत्रों का जन्म हुआ। पहला अशोक और दूसरा वीताशोक"।

अशोक के पहले सम्राट् विन्दुसार के पूर्व पट्टरानी से उत्पन्न "सुसीम" नामक एक और पुत्र था। एक बार सम्राट् विन्दुसार ने अशोक पर नाराज होकर उसे तक्षशिला के बलवाइयों को (एक बार तक्षशिला के लोगों ने विन्दुसार के विरुद्ध बलवा किया था) दबाने के लिये भेज दिया। अशोक सेना वगैरह से सुसज्जित होकर तक्षशिला पर चढ़ गया और बिना युद्ध किये हुए उसने कौशल से उस बलवे को दबा दिया। इसके पश्चात् कितने ही दिनों तक वह तक्षशिला का राज्य प्रतिनिधि रहा। तक्षशिला के राज्य में उस समय कश्मीर, नैपाल, हिन्दुकुश पर्वत तक का सारा अफगानिस्तान, बलुचिस्तान और

प्रभाव मिले हुए थे। तक्षशिला का विश्वविद्यालय आयुर्वेदीय शिक्षा के लिए उस समय जगत् प्रसिद्ध था। अशोक ने बहुत प्रयत्न करके उस विश्वविद्यालय की बहुत उन्नति की। उस समय सारे भारतवर्ष के धनी मानी लोगों के लड़के और विद्या-प्रेमी जन विद्या प्राप्त करने के लिये तक्षशिला जाते थे।

अशोक का राज्यारोहण

कलिङ्ग देश का युद्ध

हम पहले लिख आए हैं कि सम्राट् अशोक के समय में सारे भारतवर्ष के अन्दर बौद्ध धर्म का प्रचार था। स्वयं सम्राट् अशोक भी कट्टर बौद्धमतावलम्बी थे। उन्होंने बौद्ध मत के प्रचार के लिए बहुत प्रयत्न किये। जिनका विवेचन आगे के पृष्ठों मे किया जायगा। यहां पर इतना लिखने का मतलब यह है कि सारे भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का सर्वव्यापी प्रचार होने पर भी कलिङ्ग देश पर उसकी छाया नहीं पड़ी थी। इस प्रान्त में ऐसे विपत्तिकाल मे भी सनातन धर्म अनवरत रूप से प्रचलित था। स्वय यहां का राजा कट्टर हिन्दू धर्मावलम्बी था। सम्राट् अशोक ने वहां के राजा को साम्राज्य की अधीनता और बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए कहा, जिसका उत्तर उसने बड़ी उपेक्षा के साथ दिया। इस पर सम्राट् अशोक को बड़ा क्रोध आया, और उन्होंने तत्काल ही कलिङ्ग देश पर चढ़ाई कर दी। उस समय मे कलिङ्ग देश की राजधानी सम्भवतः इन्द्रपुर थी। सम्राट् अशोक के जीवनकाल का शायद यही पहला और अन्तिम युद्ध था। चार मास तक बराबर यह युद्ध चलता रहा। इस युद्ध मे सम्राट् अशोक को बड़ी २ कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनकी सेना में महामारी फैल गई जिसमें उनके हजारों आदमियों का संहार हो गया। हत्या राक्षसी के इन बीभत्स दृश्यों ने, मृत्यु की उस संहार कारिणी रौद्रमूर्ति ने सम्राट् के कोमल हृदय पर ऐसा प्रभाव डाला कि उस युद्ध के समाप्त होते ही उन्होंने युद्ध करने के विरुद्ध शपथ ले ली। कहा जाता

सम्राट अशोक के विवाह

सम्राट् अशोक के कई विवाह हुए थे। पर उन सब में दो रानियां प्रधान थी। पहली "चारुवाकी" और दूसरी "असंधिमित्रा"। इनमे से चारुवाकी बहुत धर्मात्मा थी। अशोक की आज्ञाओ मे कई स्थानो पर उसकी उदारता तथा दान पुण्य का वर्णन है। अशोक की वृद्धावस्था मे उसकी दूसरी रानी असंधि-मित्रा का देहान्त हो गया। उसके स्थान पर सम्राट् ने वृद्धावस्था मे ही एक षोड़शी से विवाह किया। सम्राट् की यह नूतन पत्नी बहुत ही विषयासक्त और चरित्रहीना थी। वह सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र "कुनाल" पर आसक्त हो गई। और अवसर पाकर उसने राजपुत्र से प्रणय याचना भी कर दी। पर कुनाल बड़ा धर्मात्मा और नीतिज्ञ था। उसने बहुत ही नम्र शब्दो मे उसकी याचना को वापस कर दिया। इस अपमान के कारण वह कुचली हुई जहरीली नागिन की तरह क्रोधित हो उठी, और कई षड्यन्त्रों द्वारा उसने तक्षशिला में कुनाल की आंखें निकलवा ने का यत्न किया, परन्तु शायद वह सफल न हुआ हो। यह घटना जब सम्राट् को मालूम हुई तो उन्हे बड़ा क्रोध आया और नूतन रानी को तत्काल ही जीते जी आग मे जलाने की उन्होंने आज्ञा दे दी।

इस घटना को कई इतिहासज्ञ सम्राट् अशोक के जीवन मे कलङ्क के तुल्य समझते हैं। और यदि इस पर ध्यान पूर्वक गौर किया जाय तो यह घटना उतनी भयंकर नहीं ठहरती। यदि उस समय दया करके उस राक्षसी को छोड़ दिया जाता तो भविष्य

सम्राट् अशोक ने अपने तमाम कर्मचारियो, अफसरों और जिले के मजिस्ट्रेटों का एक प्रधान कर्तव्य यह ठहराया था कि,वे अपने दौरों में कभी २ भिन्न २ स्थानों पर सभाएँ करके जनता को धर्म्म, नीति और चरित्र की शिक्षा दे । उन्हें हमेशा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये कि जिससे जनता के अपराधों की संख्या न बढ़े । एक नीति शास्ताओं का दल भी उसने इस लिए नियुक्त किया था कि वह विशेष रूप से जीवो की रक्षा के लिए कानून बनावे और गुरुजनो के सम्मान और पूजन के लिए जो व्यवस्था राज्य की ओर से दी गई है उसका पालन यत्नपूर्वक जनता से करवावे । इस दल के अफसरो को यह आज्ञा दी थी कि सभी लोगों और सभी सम्प्रदायो पर यहां तक कि राज-परिवार पर भी वह दृष्टि रक्खे ।

इससे मालूम होता है कि अशोक ने अपराधो की संख्या घटाने के लिए कितना अधिक प्रयत्न किया था । और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह अपने प्रयत्नों में सफलीभूत भी हुआ । अशोक के शासन मे अपराधो की संख्या बहुत घट गई थी ।

उसकी शासननीति की सफलता का एक सुदृढ़ प्रमाण यह भी है कि उसके इकतालीस वर्ष के विस्तीर्ण काल मे साम्राज्य के अन्दर कहीं भी कोई बलवा या विद्रोह नहीं हुआ । इतने बड़े विशाल साम्राज्य का इतने दीर्घ काल तक बिना किसी विद्रोह के रहना इस बात को प्रमाणित करता है कि उसकी शासननीति बहुत ही उत्तम थी । और उसके शासन मे प्रजा बहुत सुखी और समृद्ध थी ।

आयुर्वेदीय विभाग

चन्द्रगुप्त के समय के औषधालय-विभाग की प्रशंसा हम पहले कर चुके हैं। पर सम्राट् अशोक ने इस विभाग में उससे भी कहीं अधिक उदारता दिखलाई। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के ही अन्दर औषधालयों का आयोजन किया था। पर अशोक ने न केवल अपने साम्राज्य में ही प्रत्युत दक्षिण भारत और यूनानी एशिया के प्रान्तों में भी औषधालय खुलवाये थे। सारे संसार के इतिहास में शायद यही पहला सम्राट था जिसने इतनी उदारता का परिचय दिया।

लकड़ी के अत्यन्त विशाल और महत्वायुक्त भवन निर्माण करते थे। इनमें भिन्न भिन्न और उचित अवसरों पर पानी के आने और जाने के लिए द्वार बने हुए रहते थे। वे कठिन से कठिन चट्टानों को बहुत ही सुन्दर, सीधे और बड़े २ स्थम्भ बनाते एवं सुसज्जित कमरे खोद देते थे। आलेख्यवस्तु विद्या का एक आवश्यक अङ्ग समझा जाता था। तमाम महत्त्वपूर्ण इमारतों मे आलेख्य और चित्र बड़ी कारीगरी से बनाए जाते थे।"

वास्तव में सम्राट् अशोक संसार के उन सम्राटों में से एक थे जिन्होंने बड़े २ विशाल भवनों का निर्म्माण करवाया। गुप्त साम्राज्य के द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान आया था तब सम्राट् अशोक का विशाल राजप्रासाद मौजूद था। उसे देख कर चीनी यात्री दङ्ग रह गया। उसने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है कि, "वह राजभवन इतना विशाल था और उसके अन्दर मीनाकारी और पत्थर का ऐसा आश्चर्य्यजनक काम हो रहा था कि उसे देख कर कोई भी मनुष्य उसको मनुष्य निर्मित नही कह सकता। वास्तव मे ये प्रासाद देवनिर्मित मालूम होते हैं।" राजप्रासाद की ही तरह अशोक ने बहुत से विशाल बौद्ध मन्दिर और विहार भी बनाए थे। ये मन्दिर भी उस समय की वस्तुविद्या की उच्चता को प्रकट करते हैं। अशोक के समय के बहुत से ऐसे पाषाण के स्थम्भ मिले हैं, जिनकी ऊँचाई लगभग पचास-फीट और वजन करीब पचास टन हैं। उनकी पालिश इतनी सुन्दर है कि अब तक वह नहीं मिटी और आधुनिक इञ्जिनियर लोग भी यह नहीं बतला सकते कि वह पालिश किस प्रकार की

के विरुद्ध बहुत से भाव फैला दिये थे तथापि जनता के हृदय मे अभी तक इन नवीन धर्मों की जड़ मजबूती से नहीं जमने पाई थी। वास्तव मे सम्राट् अशोक के बुद्धधर्मानुयायी हुए पश्चात ही बौद्धधर्म की अधिक उन्नति हुई। ज्योंही उन्होंने बौद्ध मत स्वीकार किया त्यो ही तन, मन, धन से उन्होंने इस धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप कुछ ही समय में पश्चिमी एशिया के कुछ भाग को छोड़ कर सारे एशिया मे इस धर्म का प्रचार हो गया। सिंहासन पर आरूढ़ होते ही सम्राट् ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और उसके पश्चात् करीब ढाई वर्ष तक वे स्वयं भिक्षुक के वेश मे रहे। उन्होंने स्थान २ पर प्रचारको को भेज कर बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। उन्होंने न केवल भारत मे वरन् पश्चिमी देशो मे भी प्रचारक भेजे। एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक लिखते हैं कि "सम्राट् अशोक संसार मे पहले शासक थे, जिन्होंने अपनी राजकीय सम्पत्ति को धर्मप्रचार में लगाया और जिसने इस धर्मप्रचार से अपने लिए, अपने उत्तराधिकारियो के लिये और अपनी जाति के लिये किसी प्रकार के लाभ की इच्छा न की। सारे संसार के इतिहास मे धर्म प्रचार का यह ... प्रचार के साथ २ ... अद्वितीय और अनुपम है। दूसरे धर्मों में ... मन्दिरों को गिराया गया, देशो को जीता गया, दूसरे धर्म ... लूटपाट मचाई गई, जैसा ... अब भी लोगो का विश्वास है कि, ... इंजील का प्रचार यूरोपीय जातियो की सेना का अग्रगामी होता है। कई इतिहासज्ञ अशोक की तुलना ईसाई राजा कान्स्टेन्टाइन से करते हैं परन्तु कांस्टेण्टाइन और अशोक का प्रचार

नीति में बहुत अधिक अन्तर है। न्याय यह चाहता है कि, अशोक को अपने ढङ्ग का एक अकेला ऐसा शासक समझा जाय, जिसके ढङ्ग का आज तक मनुष्य जाति ने उत्पन्न नहीं किया। कान्स्टनटाइन के समय में ईसाई धर्म बहुत फैल चुका था।"

सम्राट् अशोक ने मिस्र, शाम, सायरीन, मकदूनिया, लङ्का और दक्षिण भारत के स्वतन्त्र राष्ट्रों में भी अपने धर्म प्रचारक भेजे थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत, हिमालय के प्रान्त, हिन्दुस्तान के प्रान्त, काबुल की उपत्यका गान्धार और यवन देशों में भी उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक [illegible] लिखता है कि, "मुसलमान धर्म के प्रारम्भ के पूर्व सारे मध्य एशिया में बौद्ध धर्म फैला हुआ था।

एक अङ्ग्रेज लेखक ने इस नगर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, "इसके सन्मुख रोम और यूनान तुच्छ जान पड़ते हैं"। अस्तु ! सम्राट् अशोक ने पेगू—जिसे उस काल में स्वर्णभूमि कहते थे—में भी बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया था। इसके अतिरिक्त चोल, पाण्डय, करेलपुत्र और सतियपुत्र इन चार स्वतन्त्र दक्षिण प्रान्तों में भी उसने बौद्ध धर्म के अनेक विहार और मन्दिर बनवाये थे। मतलब यह है कि, बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए सम्राट् अशोक ने कोई भी बात उठा न रक्खी। यदि सम्राट् अशोक, और महाराज कनिष्क न होते तो आज भगवान् बुद्ध के बावन करोड़ अनुयायी दिखलाई पड़ते या नहीं, यह कौन कह सकता है ? उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव प्रायः सारी ज्ञात दुनिया पर पड़ रहा था। यूनानी तत्त्वज्ञान और ईसाई धर्म पर भी बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा।

कहा जाता है कि, अशोक ने अपने जीवनकाल में बौद्ध भिक्षुओं की एक विशाल सभा की थी। जिसमें उपगुप्ताचार्य्य आदि बौद्ध धर्म के कई महान् भिक्षुक सम्मिलित हुए थे। उनमें उत्तम और चरित्रवान् भिक्षुओं को चुन २ कर प्रचार के लिए भेजा गया था। शेष दुरङ्गे और पाखण्डी भिक्षुओं से भिक्षुक वेष छीन लिया गया था। यह बात कहां तक सत्य है इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सम्राट् अशोक का व्यक्तित्व

सम्राट् अशोक के व्यक्तित्व के विषय में कुछ लिखना सूर्य्य को दीपक दिखाना है। इतने बड़े साम्राज्य का इतना उत्तम

ढङ्ग से सञ्चालन करना ही उनके महान् व्यक्तित्व का सूचक है। वे एक अद्भुत कर्मशील, उच्च चरित्र और शान्त मनुष्य थे। उनके वचन और कर्म में आश्चर्यजनक एकता पाई जाती थी। उनके जितने भी शिलालेख आजकल पाये जाते हैं वे सब उन्हीं आज्ञाओं के लिखे हुए हैं। उन लेखों से उनकी धार्मिकता और पवित्रता स्पष्ट जाहिर होती है।

सम्राट् अशोक के सिद्धान्त

उन्होंने एक कानून बनाया था। उस कानून के द्वारा उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य ठहराया कि, वह दूसरों के धर्म, विश्वास और उपासना की रीति में बाधक न हो। और प्रत्येक धर्म के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करे। किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि, वह दूसरे धर्म के लिए अपमान सूचक शब्दों का व्यवाहर करे। क्योंकि, सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त जीवन को पवित्रता की ओर ले जाने वाले होते हैं। अशोक का तीसरा सिद्धान्त बड़ो का सम्मान, ब्राह्मण और श्रमणों के प्रति श्रद्धा और छोटों पर दया करने का था। उनके साम्राज्य में प्रत्येक व्यक्ति का यह अनिवार्य्य कर्तव्य ठहराया गया था कि, वह अपने गुरुजनो के साथ सम्मान पूर्वक आचरण करे। यदि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार अपने गुरुजनों का अपमान करता तो वह दण्ड का भागी होता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की ओर से आदेश था कि, वह अपने अधीनस्थ लोगों के साथ दया और अनुकम्पा का व्यवहार करे। एक धर्मलिपि में अशोक ने दान की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि, औषधालय मनुष्यों की शरीर-रक्षा के लिए है। एवम् मन्दिर पुण्य के लिए बनाए जाते हैं परन्तु वास्तविक दान तो धर्म का दान है जो मनुष्य को आध्यात्मिक भोजन देता है।

अशोक का साम्राज्य

अशोक के साम्राज्य का विस्तार जितना अधिक हुआ था उतना शायद ही अभीतक किसी सम्राट् के समय में हुआ हो।

उनका राज्य उत्तर में हिमालय और हिन्दूकुश पर्वत तक था। सारा अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान, और सिन्ध उनके साम्राज्यान्तर्गत था। कश्मीर, नैपाल, स्वात और बाजौर प्रान्त भी इनके साम्राज्य में मिले हुए थे। कश्मीर की राजधानी "श्रीनगर" को स्वयं सम्राट् ने ही बसाया था। नैपाल में भी उन्होंने "ललितपुर" नामक एक नवीन राजधानी बसाई थी। जोकि काठमाण्डू से दो तीन मील दक्षिण-पूर्व में है। सम्राट् की लड़की चारुमती ने भी नैपाल में अपने पति देवपाल के स्मारक स्वरूप देवपाटन नामक एक नगर बसाया था। यह तो साम्राज्य की उत्तर सीमा हुई। पूर्व में सारा बङ्गाल, अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था। दक्षिण में कलिङ्ग, आन्ध्र और पूर्वी किनारे का सारा दक्षिण प्रान्त अशोक के आधीन था।

(आधुनिक) और चम्पारन के जिलों में होते हुए नैपाल गये। मार्ग में उक्त स्थानों पर उन्होने पांच बड़े २ स्तम्भ खड़े करवाये। वहां से चलकर वे महात्मा बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी कानन में पहुंचे। भगवान् बुद्ध की माता मायादेवी को नैहर जाते समय रास्ते मे इसी स्थान पर प्रसव वेदना हुई थी, और यही पर सिद्धार्थ कुमार का जन्म भी हुआ था। इस स्थान पर भी सम्राट् ने एक स्तम्भ खड़ा करवाया। वहां से चल कर सम्राट् बुद्धदेव के पिता शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु गये। इसके पश्चात् वे सारनाथ, जहांपर कि, भगवान् बुद्ध ने सर्व प्रथम उपदेश किया था, गये। सारनाथ से श्रावस्ती होते हुए वे बुद्धगया पहुंचे। इस स्थान पर भगवान् बुद्ध को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। वहां से कुशिनगर होते हुए वे पुनः अपनी राजधानी लौट गये।

उस समय के शिलालेख

सम्राट् अशोक से सम्बन्ध रखने वाले कई शिलालेख अब तक उपलब्ध हो चुके हैं। इन शिलालेखो मे उनकी आज्ञाएँ, उनके शासन का हाल, उनकी तीर्थयात्रा का वर्णन, उनकी धर्मनीति आदि सभी वातो का उल्लेख किया गया है। इन्हीं लेखो और लिपियों की कृपा से हमारी दृष्टि के सम्मुख भारत का वह सुवर्णकाल उपस्थित हो जाता है जो हमारे लिए अभिमान की वस्तु है। अशोक के तमाम शिलालेखो को हम निम्न भागों मे विभक्त कर सकते हैं:—

(१) कलिङ्ग के शिलालेख—ये शिलालेख ईसा से लगभग २५६ वर्ष पूर्व अङ्कित करवाये गये थे। इनकी संख्या दो है।

(२) छोटे स्तम्भों के शिलालेख—ये ईसा से लगभग २५० वर्ष पूर्व खुदवाये गये थे।

(३) सात स्तम्भों के लेख—ये ईसा के पूर्व २४३ और २४२ में खुदवाये गये थे। ये छः पाठों में हैं।

(४) तराई के शिलालेख—इन दो शिलालेखों का काल लगभग २४९ वर्ष ईसा से पूर्व का अनुमान किया जाता है।

(५) गुफाओं के दो शिलालेख—ये सम्भवतः ईसा से २५७ वर्ष पूर्व खुदवाये गये थे।

(६) छोटे चट्टानी शिलालेख—इनके भिन्न २ सात पाठ हैं। ये ईसा के २६० वर्ष पूर्व के हैं।

का क्या कर्तव्य है, यह तो बतलाया गया है। पर प्रजा का राजा के प्रति क्या कर्तव्य है, अथवा प्रजा को किस प्रकार राजभक्त बना रहना चाहिए, इन बातोंका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इस से स्पष्ट जाहिर होता है कि, सम्राट् अशोक का शासन इतना उदार, इतना नम्र, और इतना न्याययुक्त था कि जिसके कारण प्रजा स्वयं ही दृढ़ राजभक्त बनी रहती थी। उसे राज-भक्ति के उपदेश की आवश्यकता ही न थी।

इस प्रकार अपने ४१ वर्ष के शासन से भारत को समृद्ध कर मौर्य्यवंश का यह जाज्वल्यमान सूर्य्य ईस्वी सन् से २३२ वर्ष पूर्व भारत-गगन से अस्त हो गया। सम्राट् अशोक के पश्चात् भारतवर्ष की वही दशा हुई जो सेनापति की मृत्यु के पश्चात् सारी सेना की हो जाती है। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके वंशजों मे कोई भी व्यक्ति ऐसा प्रतिभासम्पन्न न निकला जो उनके साम्राज्य का योग्यतापूर्वक शासन कर सके। योग्य शासक के अभाव में देश की राजनैतिक स्थिति फिर डांवाडोल होने लगी। और अन्त में सारे साम्राज्य के अन्दर एक क्रान्ति सी उत्पन्न हो गई। आगे जाकर इस विशाल साम्राज्य का किस प्रकार तीन तेरह हुआ उसका विवेचन अगले पृष्ठों पर अङ्कित है।

यद्यपि इस में सन्देह नहीं है कि, सम्राट् चन्द्रगुप्त की तरह सम्राट् अशोक को नवीन साम्राज्य का संगठन न करना पड़ा। लेकिन इससे हम अशोक को चन्द्रगुप्त की तुलना मे हीन नहीं कह सकते उनके अन्दर बहुतसे गुण ऐसे थे जो सम्राट् चन्द्रगुप्त में भी नहीं पाये जाते थे। उनका चरित्र बहुत दिव्य था। वे पहले सिरे के विद्वान् थे। इतने बड़े साम्राज्य के अधिपति

(१)

यह धर्मलिपि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की आज्ञा से खुदवाई गई है। इस पृथ्वी पर कोई किसी जीवधारी जन्तु को वलिदान अथवा भोजन के लिए न मारे अथवा किसी प्रकार का समाज * न करे। देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ऐसे समाजो मे अनेक प्रकार के दोष देखते है। यद्यपि कुछ समाज ऐसे भी हैं जो देवताओ के प्रियदर्शी सम्राट् को अच्छे मालूम होते है। पहले देवताओ के प्रियदर्शी सम्राट् की पाकशाला मे व्यञ्जन बनाने के निमित्त हजारो पशुओ का वध हुआ करता था। पर आज से उनकी पाकशाला मे केवल दो मोर और एक हिरण का वध होगा। जिसमे भी हिरण का वध नियमित नही है। भविष्य मे ये तीन प्राणी भी नही मारे जाएगे।

(२)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् के साम्राज्य मे सर्वत्र, और उनके सीमा प्रदेश में रहनेवाली जातियो (जैसे चोल, पाण्डय, सतिय पुत्र, केरल पुत्र आदि) के राज्य मे ताम्रपर्णी (लङ्का) तक तथा यूनानियों के राजा एण्टी ओकस के राज्य में, और उसके पार्श्ववर्त्ती दूसरे राज्यों में सर्वत्र देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने दो प्रकार की चिकित्साओ का प्रबन्ध किया है—मनुष्य-चिकित्सा और पशु-चिकित्सा। जिन २ स्थानों पर मनुष्यों और पशुओ के

---

* साधारणतया समाज शब्द का अर्थ एकत्र होकर धूमधाम सहित आमोद प्रमोद करने के लिए लिया जाता है। पूर्व काल में ऐसे समाजो के अन्दर सुरापान और मांस भक्षण हुआ करता था। अशोक ने इस रीति को बन्द किया।

उपयोग में आनेवाली औषधियों के पौधे नहीं हैं, उन २ स्थानों पर वे बाहर से लाये और लगाये गये हैं। प्रत्येक पथ पर मनुष्यों और पशुओं के लिए कुएं खुदवाये गये हैं, और वृक्ष लगवाये गये हैं।

(३)

देव प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते हैं:—राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैंने इस प्रकार के आदेश किये हैं मेरे राज्य में सर्वत्र धर्मयुक्त, राजुक और नगरों के राज्याधिकारी पाँच वर्ष में एक बार एक सभा में एकत्रित हों और इस प्रकार की धर्म शिक्षाओं का प्रचार करें:—

जीवधारी पशुओं का सत्कार, उनके लिए दया, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों, और श्रमणों के लिए सत्कार, मातापिता की आज्ञा का भक्ति के साथ पालन, और वृद्धों का यथोचित आदर होता है। अन्य विषयों की तरह इस विषय में भी धर्म्म का विचार किया गया है। और देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी इसको बराबर प्रचलित रक्खेगा। देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इस धर्म के प्रचार को सृष्टि के अन्त तक कायम रक्खेंगे। धर्म और भलाई मे दृढ़ रह कर वे लोग धर्म्म की शिक्षा देंगे। क्योंकि धर्म्म की शिक्षा देना सब कार्यों से उत्कृष्ट है। और भलाई के बिना कोई धर्म का कार्य्य नही होगा। धार्मिक प्रेम का दृढ़ होना और उसकी वृद्धि होना वांछनीय है। इस शिलालेख को खुदवाने का प्रधान उद्देश्य यह है कि, वे लोग अपने को इस सर्वोच्च भलाई के कामो में लगावे। और इसकी अवनति न होने दें। राज्याभिषेक के बारहवे वर्ष मे देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने इसे खुदवाया है।

(५)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं कि, पुण्य करना बहुत कठिन है। जो पुण्य करते हैं वे कठिन कार्य्य करते हैं। अभी तक मैंने स्वयं बहुत से पुण्य कार्य्य किये हैं। मेरे पुत्र, पौत्र, और कल्पान्त तक के सब वंशधर मेरी ही तरह पुण्य कार्य्य करेंगे। और जो सुकृत कार्य्य के करने मे किंचित् मात्र भी प्रमाद करेगा, वह पाप का भागी होगा। क्योंकि पाप करना बहुत आसान है। देखो अतीत काल में धर्म्म का प्रबन्ध करने वाले कर्म्मचारी न थे, परन्तु मैंने अपने राज्याभिषेक के तेर-

लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि, जहां कही धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद अथवा झगड़ा हो, उसकी सूचना मुझे सदा मिल जाना चाहिए। क्योकि, न्याय के प्रबन्ध में जितना उद्योग किया जाय कम है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा लोगों का उपकार करूं। निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध सर्व साधारण के हित की जड़ है। और इस से अधिक फलदायक कुछ नहीं है। मेरे सब यत्नो का मुख्य उद्देश्य है कि, मैं सर्व साधारण के ऋण से मुक्त हो जाउं। जहां तक मुझ से हो सकता है मैं उन्हे सुखी रखने का प्रयत्न करता हूँ। और इस बात का भी प्रयत्न करता हूँ कि, भविष्य में भी स्वर्गसुख प्राप्त करे। भविष्य में मेरे पुत्र और पौत्र भी सर्व साधारण के हित में रत रहे। इसी उद्देश्य से मैंने यह लिपि खुदवाई है।

(७)

देवताओ के प्रिय राजा प्रियदर्शी की यह बड़ी इच्छा है कि, सब स्थानो में सब जातियां सुखी रहे। सब लोग समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। और आत्मा को पवित्र बनावें। मनुष्य संसार की बातो में अधीर है। संसारचक्र के कारण वह जितनी बातें कहता है उतनी कर नहीं सकता। फिर भी आंशिक रूप से उसे कर्त्तव्य पालन मे रत रहना चाहिए। दान एक श्रेष्ट धर्म्म है। लेकिन जो लोग आर्थिक हीनता के कारण दान नहीं कर सकते उन्हें संयम, चित्त शुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़ चिन्तना आदि गुणों का एकान्त पालन करना चाहिए।

लोग प्रजा से कहते हैं। इस प्रकार मैंने यह आज्ञा दी है कि, जहां कहीं धर्मोपदेशकों की सभाओं में मतभेद अथवा झगड़ा हो, उसकी सूचना मुझे सदा मिल जाना चाहिए। क्योंकि, न्याय के प्रबन्ध में जितना उद्योग किया जाय कम है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि शिक्षा द्वारा लोगों का उपकार करूं। निरन्तर उद्योग और न्याय का उचित प्रबन्ध सर्व साधारण के हित की जड़ है। और इस से अधिक फलदायक कुछ नहीं है। मेरे सब यत्नों का मुख्य उद्देश्य है कि, मैं सर्व साधारण के ऋण से मुक्त हो जाउं। जहां तक मुझ से हो सकता है मैं उन्हे सुखी रखने का प्रयत्न करता हूँ। और इस बात का भी प्रयत्न करता हूँ कि, भविष्य में भी स्वर्गसुख प्राप्त करें। भविष्य में मेरे पुत्र और पौत्र भी सर्व साधारण के हित में रत रहे। इसी उद्देश्य से मैंने यह लिपि खुदवाई है।

(७)

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी की यह बड़ी इच्छा है कि, सब स्थानो में सब जातियां सुखी रहे। सब लोग समान रीति से इन्द्रियों का दमन करें। और आत्मा को पवित्र बनावें। मनुष्य संसार की बातो में अधीर है। संसारचक्र के कारण वह जितनी बातें कहता है उतनी कर नहीं सकता। फिर भी आंशिक रूप से उसे कर्त्तव्य पालन मे रत रहना चाहिए। दान एक श्रेष्ठ धर्म्म है। लेकिन जो लोग आर्थिक हीनता के कारण दान नहीं कर सकते उन्हे संयम, चित्त शुद्धि, कृतज्ञता, दृढ चिन्तना आदि गुणों का एकान्त पालन करना चाहिए।

(८)

प्राचीन समय के राजा लोग अहेरिया के लिए जाया करते थे। अपना जी बहलाने के लिए वे जानवरो का शिकार तथा अन्य इसी प्रकार के खेल किया करते थे। मैं देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् अपने राज्य के दशवें वर्ष से इस प्रकार मनोरंजन को बन्द करता हूँ। अब मुझे सत्यज्ञान प्राप्त हो गया है। आज से ब्राह्मणो और श्रमणो की भेंट करना उनको दान देना, वृद्धो से परामर्श करना, द्रव्य बांटना, राज्य में प्रजा से भेट करना, प्रजाजनों को धार्मिक शिक्षा देना आदि कार्य्य ही मेरे मनोरञ्जन की सामग्री होगी। इस प्रकार देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अपने भले कामो से उत्पन्न हुए सुखो को भोगता है।

(९)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं:—लोग बीमारी में, पुत्र कन्या के विवाह मे, पुत्र के जन्म पर, और यात्रा मे जाने के समय अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य अवसरों पर भिन्न २ प्रकार के विधान करते है। परन्तु भिन्न २ प्रकार के ये असंख्य विधान जिन्हे कि लोग करते हैं, व्यर्थ और निरर्थक हैं। इन विधानो का कोई फल नहीं होता, जो लोग इन विधानों को छोड़ कर इन के विपरीत धर्म्मकार्य्य करता है, वह बहुत ही श्रेष्ठ है। गुलामों और नौकरों पर यथोचित ध्यान रखना और सम्बन्धियों तथा शिक्षकों का सत्कार करना प्रशंसनीय है। इन कामों को तथा इसी प्रकार के अन्य भलाई के कामो को ही मैं धर्म्मकार्य्य कहता हूँ। पिता, पुत्र, भाई

अथवा स्वामी को कहना चाहिए कि, ये ही कार्य्य प्रशंसनीय है। जहां तक अभीष्ट सिद्धि न हो जाय तब तक इन सब कार्य्यों को करना उचित है। यह कहा जाता है कि, दान देना प्रशंसनीय कार्य्य है, पर और दान इतने प्रशंसनीय नहीं है जितना कि, धर्म्मदान। इस लिये मित्र, सम्बन्धी, और सङ्गी को यह सम्मति देना चाहिए कि, अमुक २ अवस्थाओं में अमुक २ कार्य्य प्रशंसनीय है। यज्ञ में विश्वास रखना चाहिए कि, इस प्रकार के आचरण से स्वर्ग मिलता है।

(१०)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् इस के अतिरिक्त और किसी प्रकार की कीर्त्ति अथवा यश को पूर्ण नहीं समझता कि, उसकी प्रजा वर्त्तमान में अथवा भविष्य मे उसके धर्म्म को माने और उसके अनुसार कार्य्य करे। इसी एक मात्र यश को देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् चाहता है। प्रियदर्शी सम्राट् के सब उद्योग आगामी जीवन मे मिलनेवाले सुखों तथा जीवन मरण के बन्धनो से मुक्त होने के लिए हैं। क्योंकि जीवन मरण का दुख ही सब से बड़ा दुःख है। लेकिन इस दुःख से छुटकारा पाना छोटे और बड़े दोनो ही के लिए कठिन है। तब तक कठिन है जब तक कि, वे अपने को सब वस्तुओ से अलग करने का दृढ़ उद्योग न करेंगे। खास कर बड़े लोगो के लिए इसका उद्योग करना बड़ा ही कठिन है।

(११)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं:—धर्म्म की मित्रता के समान मित्रता, धर्म्म की भिक्षा के समान भिक्षा,

धर्म्म के सम्बन्ध के समान सम्बन्ध और धर्म्म के दान के बराबर दान दुनिया मे कोई नहीं है। इसलिए क्रीत दास और साधारण भृत्यो के प्रति सदय व्यवहार, माता पिता की शुश्रूषा, मित्र, परिचित और जाति का सम्मान, ब्राह्मण और श्रमण लोगों को दान, प्राणियो के प्रति अहिंसाभाव, आदि सत्कार्य्यों को सम्पन्न करते रहना चाहिए। सुतरां पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, परिचित और जाति के लोगो को यह उपदेश देते रहना चाहिए कि, ये कार्य्य सत्कार्य्य हैं—ये मनुष्य के कर्तव्य है। जो लोग हमेशा इस प्रकार का आचरण अथवा धर्म्मदान किया करते हैं वे इस लोक मे पूजित एवं परलोक मे अनन्य सुख भोगी होते हैं।

(१२)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् सब धर्म के लोगो का—क्या सन्यासी और क्या गृहस्थ—उचित सत्कार करता है। वह उन्हें भिक्षा और दूसरे प्रकार के दान देकर सन्तुष्ट करता है। लेकिन प्रियदर्शी सम्राट् इस प्रकार के दानो को उनके धर्माचरणों की उन्नति के सम्मुख कुछ भी नहीं समझता। यद्यपि यह सत्य है कि, भिन्न २ धर्मों मे भिन्न २ प्रकार के पुण्य समझे जाते है तथापि उन सब का आधार एक ही है। वह आधार सुशीलता और सम्भाषण में शान्ति होना है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह कभी अपने धर्म की व्यर्थ प्रशंसा और दूसरो के धर्म की निन्दा न करे। किसी भी व्यक्ति का यह कर्तव्य नहीं है कि वह दूसरों के धर्म को बिना कारण हलका समझे। इसके विपरीत सब लोगों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए

कि दूसरे धर्मों का भी सब अवसरो पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार का यत्न करते से मनुष्य दूसरों की सेवा करते हुए भी अपने धर्म की उन्नति कर सकता है। इसके विरुद्ध कार्य्य करने से मनुष्य न तो अपनी ही भलाई कर सकता है न दूसरा की ही। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपने धर्म की वृद्धि करने के लिए दूसरे धर्मों की निन्दा करता है वह अपने ही हाथों अपने धर्म्म पर कुठाराघात करता है। सहयोग ही सब से उत्तम वस्तु है। इसी के कारण सब लोग एक दूसरे के मतो को सहन करते हुए प्रेम-पूर्वक समाज में रह सकते है। देवताओ के प्रियदर्शी की यह इच्छा है कि सब लोगो को इस ढङ्ग की शिक्षा दी जाय जिससे कि, उनके सिद्धान्त शुद्ध हो। सब धर्म के लोगों को यह बतला देना चाहिए कि देवताओं का प्रियदर्शी सम्राट् दान और बाहरी विधानों की अपेक्षा वास्तविक धर्माचरण की उन्नति और सब धर्मों के पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्व देता है। इसी उद्देश्य से धर्म का प्रवध करने वाले कर्म्मचारी, निरीक्षक और अन्यान्य कर्मचारी लोग काम करते हैं। इसी का फल मेरे धर्म की उन्नति और धार्मिक दृष्टि से उसका प्रचार है।

(१३)

कलिग देश जिसे देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक ने अभिषेक के आठवें वर्ष में जीता है, बहुत विशाल है। इस विजय मे डेढ़ लाख व्यक्ति बन्दी बनाए गये हैं, एक लाख आहत हुए हैं तथा इससे कितने ही अधिक मारे गये हैं। इतनी हत्याओं के उपरान्त कलिङ्ग देश विजय हुआ है। इसी क्षण से देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् का धर्मपालन, धर्मानुराग और उसके धर्मा-

नुशास्ति वहुत वृद्धिगत हुई है। कलिङ्ग विजय करने पर देव प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् को वहुत पश्चात्ताप हुआ है। क्योंकि, अविजित देश को विजय करते समय हत्या, मृत्यु, और बन्दी बनाना अवश्यम्भावी होता है। देवप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् को ये हत्याएं अतिशय गुरुतर और कष्टकर मालूम होती हैं। सभी देशों में ब्राह्मण, श्रमण, संन्यासी और गृहस्थ लोग रहते हैं। देश विजय करते समय इन लोगो पर भी कठोरता होती है। उनसे उनके प्रियजनो का वियोग हो जाता है यहां तक कि उनकी मृत्यु भी हो जाती है। इसलिए उन्हे घोर क्लेश उठाना पड़ता है। मैं, जो कि, देवताओं का प्रिय हूँ, इस प्रकार की कठोरताओ का अनुभव करता और उन पर पश्चात्ताप करता हूँ। कोई ऐसा देश नही जहां पर ब्राह्मण और श्रमण न बसते हो और कोई ऐसा स्थान नही जहां वे लोग किसी न किसी धर्म्म को न मानते हों। और कलिङ्ग देश के अन्तर्गत जितने लोग आहत हुए हैं, वन्दी हुए हैं, अथवा जितने लोगो ने प्राणत्याग किया है, उनके लिए देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् को वहुत अनुताप हो रहा है।

देवताओं का प्रियदर्शी सब प्राणियों की रक्षा, जीवन के सत्कार, शान्ति और दया का उत्सुक हृदय से अभिलाषी है इसीको देवताओं का प्रियदर्शी वास्तविक धर्म-विजय समझता है। अपने साम्राज्य तथा उसके सीमावर्त्ती प्रदेशों में इसी प्रकार की धर्म-विजय सम्राट् देखना चाहता है। उसके पड़ोसियों : यवनों का राजा एण्टीओकस, एण्टीओकस के उपरान्त चा राजा लोग—टोलेमी, एण्टीगोनस, मेगेसी और सिकन्दर, दक्षि में ताम्रपर्णी नदी तक चोल और पाण्डव लोग और विस्मवस

यूनानियों और कम्बोजों मे नाभक और नाभपन्ति लोग, भोज और पेतेनिक लोग, अन्ध्र और पुलिन्द लोग—सर्वत्र देवताओ के प्रियदर्शी की धार्मिक शिक्षाओं के अनुकूल है। जहां २ देवताओ के प्रियदर्शी के दूत भेजे गये, वहां २ के लोगो ने उन धार्मिक शिक्षाओं को बड़े ही चाव से सुना जो प्रियदर्शी सम्राट् की ओर से भेजी गई थीं। वे सानन्द उन धार्मिक शिक्षाओं से सहमत हो गये।

इस प्रकार यह विजय चारों ओर फैलाई गई है। मुझे इससे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है। वास्तव मे धार्मिक विजय मे इसी प्रकार का सुख होता है। यह आनन्द यद्यपि अलभ्य है तथापि देवताओ का प्रियदर्शी सम्राट् उस आनन्द को बहुत अधिक समझता है जो कि अगले जन्म मे मिलने वाला है। इसी उद्देश्य से यह धार्मिक शिलालेख खुदवाया गया है कि हमारे पुत्र और पौत्र यह न सोचें कि किसी नवीन विजय की आवश्यकता है। वे यह न विचारें कि तलवार से विजय करना "विजय" कहलाने के योग्य है। वे उसमें नाश और कठोरता के अतिरिक्त कुछ भी न देखें। वे धर्म्म की विजय को छोड़ कर और किसी प्रकार की विजय को सच्ची न समझें। ऐसी विजय का फल इस लोक और परलोक दोनो जगह मिलता है।

(१४)

ये गिरिलिपियाँ देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने खुदवाई हैं। ये कुछ तो संक्षेप में, कुछ साधारण विस्तार में और कुछ अधिक विस्तार में हैं। अभी तक ये एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। क्योंकि मेरा राज्य बहुत विशाल है। मैंने बहुत सी

बातें खुदवाई हैं और बहुत सी अभी और खुदवाऊँगा। कुछ बातों में पुनरावृत्ति भी आगई है, क्योंकि मैं उन बातों पर विशेष जोर देना चाहता हूँ। प्रतिलिपि में दोष भी हो सकते हैं कि कोई कोई वाक्य कट गया हो, पर यह सब खोदनेवाले कारीगर का काम है।

उपरोक्त चौदह सूचनाएं अशोक की प्रसिद्ध धर्म्मलिपियाँ हैं, जिनके द्वारा उसने अपने साम्राज्य में उपरोक्त महत्व-पूर्ण बातों का प्रचार किया।

उपरोक्त चौदह गिरिलिपियों के अतिरिक्त अशोक ने समय २ पर अन्य सूचनाए भी खुदवाई थीं। उनमें से एक सूचना "धौली" मे दो "जोगड़" मे एक खण्ड शिलालिपि सिद्धपुर में, एक सूचना सहसराम में, एक रूपनाथ में, एक बैराट् (दिल्ली के दक्षिण पश्चिम) मे और तीन शिलालेख मैसूर मे मिले है। इनके सिवा गुफाओं के शिलालेख अलग है। यद्यपि इन सब शिलालेखो का अनुवाद देना यहा पर आवश्यक है, पर इससे ग्रन्थ का कलेवर बहुत बढ़ जाने का डर है, इन सब शिलालेखों को दिया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। उपरोक्त चौदह धर्मलिपियां बहुत आवश्यक थीं, इसलिए उनका अनुवाद ऊपर दे दिया गया है। शेष आठ स्तम्भ लिपियां भी बहुत आवश्यक समझी जाती हैं अतः उनका अनुवाद नीचे दे दिया जाता है।

पहली स्तम्भलिपि

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है:—प्रकार२

धर्मानुराग, विशेष आत्म-परीक्षा, पूर्ण आज्ञापालन, प्रगाढ़ अध्यवसाय, और धर्मभय के बिना मेरे कर्मचारियो को ऐहिक, और पारलौकिक सुख मिलना कठिन है। मेरे उपदेश के कारण उन लोगो में स्वतः धर्म के प्रति आदर और अनुराग बढ़ रहा है। मेरे कर्मचारी गण क्या उच्च श्रेणी के, क्या मध्यम श्रेणी के और क्या निम्न श्रेणी के सभी मेरे उपदेश के अनुसार कार्य्य करते है, और भविष्य में करेंगे। चञ्चल मति लोगो में धर्मानुराग बढ़ाने की व्यवस्था भी वे लोग करते है।

उसी प्रकार सीमाप्रान्त के मन्त्रिगण (अन्त महामात्र) भी धर्म-प्रचार करते हैं। इस उपाय के द्वारा मेरे उद्देश्य-धर्मानुसार पालन. धर्मानुसार शासन, धर्मानुसार उन्नति और धर्मानुसार रक्षा—अनायास ही सिद्ध होते है।

(२)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते है—धर्म्म उत्तम है पर यह पूछा जा सकता है कि धर्म्म है क्या पदार्थ ? धर्म्म थोड़ी से थोड़ी बुराई और अधिक से अधिक भलाई करने मे है। धर्म्म दया, दान, सत्य और पवित्र जीवन मे है। इसलिए मैंने मनुष्यो, चौपायों, पक्षियो और जल-जन्तुओं के निमित्त सब प्रकार के दान दिये हैं। मैंने उनके हित के लिए बहुत से कार्य्य किये हैं। यहां तक कि उनके पीने के लिए जल का भी प्रबन्ध किया है। मैंने इस उद्देश्य से इस सूचना को खुदवाई है कि जिससे लोग उसके अनुसार चले और सत्य पथ को ग्रहण करे। यह कार्य्य बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है।

(३)

देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् कहते है—मनुष्य केवल अपने अच्छे कामो को देखता है और कहता है कि मैंने अमुक उत्तम कार्य्य किया। पर वह कभी अपने बुरे कामो को नही देखता, वह कभी यह नही कहता कि मैंने अमुक पाप किया। यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकार की जांच दुःखप्रद है तथापि यह आवश्यक है कि, अपने मन मे यह प्रश्न किया जाय और यह निश्चय कर लिया जाय कि दुष्टता, निर्दयता, क्रोध, अभिमान तथा इसी प्रकार के दूसरे दुष्कृत्य पाप हैं। सावधानी के साथ अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना आवश्यक है। हृदय के अन्दर हमेशा इस प्रकार की भावनाएं रखना चाहिए कि मैं कभी दूसरो से ईर्षा न करूंगा अथवा उनकी निन्दा न करूंगा। इस प्रकार का कार्य्य मेरे लिए इस लोक और परलोक दोनो स्थानो मे लाभप्रद होगा।

(४)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते है—अपने राज्याभिषेक के सोलहवे वर्ष में मैंने यह सूचना खुदवाई है। मैंने अपने लाखो प्रजा-गणों के लिए रज्जुको को नियुक्त किया है रज्जुको को दण्ड देने का अधिकार मैंने स्वयं अपने हाथ मे रक्खा है जिससे कि वे पूरी दृढ़ता के साथ मेरे राज्य के लोगो की भलाई और उन्नति करे। प्रजा के सुखो और दु.खों की वे बराबर जांच करते रहते हैं और धर्म्मयुतो के साथ रह कर वे मेरे राज्य के लोगों को शिक्षा देते हैं। जिससे कि, लोग इस लोक में सुख और भविष्यत में मुक्ति प्राप्त कर सकें।

रज्जुक लोग मेरी आज्ञा का पालन करते है। पुरुष लोग भी मेरी इच्छा और आज्ञाओ का पालन करते है और मेरे उपदेशों का प्रचार करते हैं जिसमें रज्जुक लोग सन्तोषजनक कार्य्य करें। जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी सचेत दाई के हाथ में सौप कर निश्चिन्त रहता है और सोचता है कि मेरा बच्चा सचेत दाई के पास है, उसी भांति मैंने भी अपनी प्रजा के लिए रज्जुको को नियुक्त किया है और जिसमें वे दृढ़ता और रक्षा के साथ बिना किसी चिन्ता के अपना कार्य्य करे, मैंने उनको अभियुक्त करने और दण्ड देने का अधिकार स्वयं अपने हाथ मे रक्खा है। अभियुक्त बनाने और दण्ड देने मे समान दृष्टि से काम लेना आवश्यक है। इसलिए आज की तिथि से यह नियम किया जाता है कि जिन कैदियो का न्याय हो जाय और जिन्हे फांसी की सज़ा का दण्ड मिले, उन्हें तीन दिन की अवधि दी जाय और उनको सूचना दे दी जाय कि वे तीन दिन तक जीवित रहेंगे न इससे अधिक और न इससे कम। इस बीच मे वे परलोक साधन के लिए जितना दान-पुण्य करना चाहे कर लें। मेरी इच्छा है कि कारागार में भी उन्हे भविष्यत् का निश्चय दिलाया जाय और उसके साथ मेरी यह भी दृढ़ इच्छा है कि मैं प्रजा के अन्तर्गत इन्द्रिय दमन और दानशीलता के भाव देखूं।

(५)

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं—अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवे वर्ष के उपरान्त मैंने निम्नलिखित जानवरों के मारे जाने का निषेध किया है—तोता, मैना, अरुण,

चक्रवाक, हंस, नन्दिमुख, गैरन, चमगीदड़, अम्बक, पिल्लिक, दुद्धि, अनस्थिक मछली, वेदवेयक, गङ्गा नदी के पुप्पुत, संकुज, ककृतसयक, पमनसस, सिमल, संदक ओकपिण्ड, पलसत, स्वेत कपोत, ग्राम कपोत और सब चौपाये जो किसी काम नहीं आते और खाये भी नहीं जाते। बकरी, भेड़ और शूकरी जब गर्भवती हो, अथवा दूध देती हो, या उनका बच्चा छः मास का न हो गया हो, तब तक न मारी जांय। लोगों के खाने के लिए मुर्गी को खिला पिला कर मोटी न बनाई जाय। जीते हुए जानवरों को न जलाया जाय। निरर्थक ढङ्ग से अथवा हिंसा के प्रयोजन से जङ्गल न जलाए जांय। एक जानवर को दूसरा जीवित प्राणी न खिलाया जाय। चातुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा को, पौप मास की पुष्य नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपदा को, और वर्ष के उपोसथ दिन में मछलियां मारी और वेची न जांय। प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या अथवा पूर्णिमा को पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त दिनों में, अथवा चातुर्मास के प्रत्येक उपोसथ दिन में कहीं भी सांड़, भैंसा, बकरा, सुअर अथवा किसी भी वध किये जाने वाले जानवर का वध न किया जाय। पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में चातुर्मास की प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को और चातुर्मास के शुक्ल पक्ष में, घोड़े और बैल को दागना न चाहिए। अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में पचीसवीं बार मैंने बन्दियों को कारागार से मुक्त किया है।

---

(६)

देवप्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैः—अपने राज्याभिषेक के बारहवे वर्ष में प्रजा के लाभ और सुख के लिए मैंने सर्व प्रथम सूचनाएं खुदवाई। मै यह समझ कर प्रसन्न हूँ कि लोग इससे लाभ उठावेंगे एवं धर्म्म मे अनेक प्रकार से उन्नति करेगे। इस प्रकार ये सूचनाएं लोगो के लाभ और सुख का कारण होंगी। मैंने ऐसे उपाय किये हैं, कि जिनसे मेरी दूरवर्त्ती और समीपवर्त्ती प्रजा के एवं मेरे सम्बन्धियों के सुख की वृद्धि होगी। इसी कारण मैं स्वयं अपने सब कर्मचारियों पर देखभाल रखता हूँ। सब पन्थ के लोग मुझसे अनेक प्रकार के दान पाते हैं, परन्तु मैं उनके धर्म्म-परिवर्त्तन को बहुत अधिक आवश्यक समझता हूँ। यह सूचना मैंने अपने राज्याभिषेक के छब्बीसवें वर्ष मे खुदवाई है।

(७)

देवताओ के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैं—प्राचीन काल मे जो राजा लोग राज्य करते थे वे चाहते थे कि मनुष्य धर्म्म मे उन्नति करे, परन्तु उनकी इच्छानुसार मनुष्यो ने धर्म मे उन्नति नही की।

तब देवताओं के प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—मैंने सोचा कि प्राचीन समय के राजा लोग यह सोचा करते थे कि किस प्रकार प्रजा-गण आशानुरूप धर्म्म-वृद्धि कर सकते हैं, प उनकी इच्छानुसार वे धर्मोन्नति लाभ न कर सके।

तब किन उपायो से प्रजा-गण को धर्मोन्नति में प्रवृ करवाया जाय? किन उपायों से उन्हे धर्म्म-पालन मे प्र

किया जाय ? किन उपायों से उनके हृदय मे धर्म्म अपनी वृद्धि कर सकता है ?

इस विषय मे देवप्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहते है—मैंने धर्म्म-सम्बन्धी उपदेशो को प्रकाशित करने और धार्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया है। जिसमें मनुष्य इनको सुन कर सत्य पथ को ग्रहण करे और अपनी उन्नति करे।

मैंने धार्मिक शिक्षाओं को प्रकाशित किया है और धर्म्म के विषय मे अनेक उपदेश दिये है जिसमें धर्म्म की बहुत शीघ्र उन्नति हो। मैंने प्रजा को धर्म्म-शिक्षा देने के लिए बहुत से कर्म्मचारी नियुक्त किये हैं, वे सब कर्मचारी अपने २ कर्त्तव्य-पालन मे दत्तचित्त हैं। हजारों मनुष्यों पर मैंने रज्जुकों को नियुक्त किया है और आज्ञा दी है कि धर्म्मयुतों को सहायता दे।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—बड़ी २ सड़कों पर मैंने न्यग्रोध के वृक्ष लगवाएँ हैं जिसमे कि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दे। मैंने आम के बगीचे लगवाए हैं. मैंने आधे २ कोस पर कुए खुदवाए है और अनेक स्थानों पर मनुष्यो और पशुओं के लिए धर्म्मशालाए बनवाई है। परन्तु मेरे लिए यथार्थ प्रसन्नता की बात यह है कि पहले के राजा लोगों ने अनेक अच्छे कार्य्यों से लोगो के सुख का प्रबन्ध किया है परन्तु लोगों को धर्म्म पथ पर चलाने के एक मात्र उद्देश्य से मैं सब कार्य्य करता हूँ।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा—मैंने धर्म्म महामात्रों को नियत किया है जिसमें कि वे सब प्रकार के धर्म्म प्रचार के कार्य्य में यत्न करें। सब धर्म्म के लोगों में, सन्यासियों

में और गृहस्थों में वे धर्म प्रचार करे। पुजारियों, ब्राह्मणों, संन्यासियों और निर्ग्रन्थ लोगोंका ध्यान भी मेरे हृदय मे रहा है। और उन सब लोगों मे मेरे कर्म्मचारी कार्य्य कर रहे हैं। महामात्र लोग अपनी समाज मे कार्य्य करते हैं और धर्म्म के प्रबन्धकर्ता लोग प्रायः सब धर्मों में कार्य्य करते हैं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् ने कहा कि ये कर्म्मचारी तथा दूसरे कार्यकर्त्ता मेरे हथियार हैं। वे मेरे तथा रानियों के दिये हुए दान का वितरण करते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि वे यहां तथा दूसरे प्रान्तो में मेरे लड़कों के दिये हुए दान को धर्म्म-कार्य्यों के साधन तथा धर्म-वृद्धि के कार्य्यों में बांटते हैं। इस प्रकार संसार में धर्म्म कार्य्य अधिक होते हैं और धर्म्म के साधन जैसे दया और दान, सत्य और पवित्रता, उपकार और भलाई की वृद्धि होती है।

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी कहते हैः—मेरे किये हुए भलाई के अनेक कार्य्यों को उदाहरण स्वरूप समझकर लोगों ने सम्बन्धियो और गुरू की आज्ञा-पालन मे, वृद्धो पर दयाभाव रखने मे, ब्राह्मणों और श्रामणों का सत्कार करने में, गरीब, दुखियो, नौकरो तथा गुलामो का आदर करने मे उन्नति की है।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैः—मनुष्यों मे धर्म्म की उन्नति दो प्रकार से हो सकती है। (१) स्थिर नियमों के द्वारा (२) उन लोगो के हृदयों में धार्मिक नियमो को उत्तेजि[त] करने के द्वारा। दोनो प्रकार के मार्गों मे कठोर नियमों का [पालन] उचित नहीं है। केवल हृदय को धर्म्म की ओर प्रवाहित करने मे ही लोगो में धार्मिक भावों का विकास होता है। यद्यपि दृढ़ नियम

के द्वारा पशुवधनिषेध आदि उत्तम कार्य्यों के प्रचारित करने से भी धर्मवृद्धि हो सकती है, पर धर्म की वास्तविक उन्नति तो जनता के हृदयो मे धार्मिक भावनाओ का सञ्चार करने से ही हो सकती है। इसी उद्देश्य से मैंने यह लेख प्रकाशित किया है कि वह मेरे पुत्रो और पौत्रों के समय तक स्थिर रहे, और तब तक स्थिर रहे जब तक कि गगन-मण्डल मे सूर्य्य और चन्द्रमा उदय और अस्त होते रहे। क्योकि, मेरी इन शिक्षाओ पर चलने से मनुष्य दोनो लोको मे सुख प्राप्त करता है। मैंने यह सूचना अपने राज्याभिषेक के सत्ताइसवें वर्ष मे खुदवाई है। देवताओ के प्रियदर्शी सम्राट् कहते हैं जहाँ कही यह सूचना स्तम्भो पर है, वहां पर चिर काल तक स्थिर रहे।

इन धर्म-लिपियो पर विशेष आलोचना करने की आवश्यकता नहीं। सहृदय पाठक इन लिपियों से अशोक के प्रजा-प्रेम, धर्म-प्रेम आदि का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। हमारे शास्त्रो मे राजा के कर्त्तव्य का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रजा के सुख और दुःख, सम्पत्ति और विपत्ति, आचार और व्यभिचार आदि सब बातो का जिम्मेदार राजा है। उस पर केवल प्रजा के इसी लोक को सुधारने का उत्तरदायित्व ही नहीं है, परन्तु प्रजा के परलोक सुधारने का भी वह जिम्मेदार है। वास्तव मे सम्राट् अशोक ने अपनी जिम्मेदारी को खूब समझा था, और उन्होंने जितनी उत्तमता से अपने कर्त्तव्य को पूरा किया उतना शायद संसार के किसी नृपति ने न किया होगा।

मौर्य्य साम्राज्य पर एक दृष्टि

पिछले पृष्ठो मे हम संक्षिप्त-रूप से मौर्य्य सम्राटों का इतिहास और उनकी शासन-नीति का विवेचन कर चुके हैं। इन पृष्ठो के पढ़ लेने पर हृदय मे यह प्रश्न स्वाभाविकतया उत्पन्न हो सकता है कि, वे कौन से कारण हैं जिनसे चन्द्रगुप्त के समान साधारण व्यक्ति इतने थोड़े काल मे ही इतने बड़े साम्राज्य का सङ्गठन करने मे सफल हो सका, यह प्रश्न वास्तव में एक गम्भीर प्रश्न है। इस प्रश्न को हल करने के लिये समाज शास्त्र और दैशिक-शास्त्र के अध्ययन के साथ २ उस समय की तमाम परिस्थितियो का अध्ययन करना आवश्यक है। इस संकीर्ण स्थान में दैशिक शास्त्र के उन सब सिद्धान्तों का उल्लेख करना असम्भव है जिनके कारण साम्राज्य स्थापित होते हैं और बिखर जाते है, जातियां बनती हैं और बिगड़ जाती है। फिर भी यदि सक्षिप्त मे तत्कालीन परिस्थिति पर चार शब्द यहां लिखे जांय तो अनुचित न होगा।

हम इस ग्रन्थ के प्रारम्भ मे लिख आए हैं कि चन्द्रगुप्त के पहले भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति बहुत डांवाडोल हो रही थी। स्थान २ पर भिन्न २ राजाओ के राज्य थे और उन राजाओं मे परस्पर सहानुभूति की भावनाएं न थीं। अस्तु ! जिन लोगो ने दैशिक-शास्त्र का अध्ययन किया है वे अवश्य उन तत्त्वों को जानते होंगे जो दैशिक-शास्त्र के प्राण हैं, और जिनकी कमीबेशी से देश और जातियों का उत्थान और पतन हुआ करता है। दैशिक-शास्त्र की भाषा में इन

तत्त्वों को "चिति" और "विराट्" कहते हैं। "चिति" मनुष्य हृदय की उस मानसिक प्रवृत्ति को कहते हैं जिसके कारण मनुष्य हृदय मे उदात्त भावनाएं काम करती हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य जातिगत सुखों को ही अपना व्यक्तिगत सुख समझता है। जहां तक मनुष्य के हृदय में चिति का प्रकाश रहता है, वहां तक कभी व्यक्तिगत स्वार्थों के सम्मुख जातिगत स्वार्थों की उपेक्षा नहीं करता। किसी भी जाति के अभ्युदय काल मे उस जाति के तमाम व्यक्तियों के हृदय मे चिति का प्रकाश रहता है पर हर काल और हर परिस्थिति मे यह प्रकाश एकसा नहीं रहता। ज्यों २ जाति मे चिति का प्रकाश कम होता जाता है, त्यों २ उसका अध पात होता जाता है। चिति से जागृत और एकीभूत हुई समष्टि की प्राकृतिक क्षत्र-शक्ति अर्थात् अनिष्टों में रक्षा करनेवाली शक्ति को "विराट्" कहते हैं। दैशिक शास्त्र मे "चिति" और "विराट्" का कारण-कार्य्य सम्बन्ध माना जाता है। अर्थात् जहां तक व्यक्तियों में चिति का प्रकाश रहता है वहां तक समाज में भी विराट् जागृत रहता है, पर ज्यों २ चिति का लोप होता जाता है त्यों २ विराट् का भी ह्रास होता जाता है। जब किसी भी जाति में चिति और विराट् क्षीण हो जाते हैं तो उसका अध·पतन प्रारम्भ हो जाता है और कुछ समय पश्चात् चिति और विराट् से सम्पन्न दूसरी जाति आकर उस जाति पर अधिकार कर लेती है। उपरोक्त सारे कथन को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि, जहां तक समाज में जातिगत स्वार्थों के सम्मुख व्यक्तिगत स्वार्थों को गौण समझा जाता है वहां तक जाति में जीवन

रहता है। और ज्यों ही व्यक्तिगत स्वार्थों के सम्मुख जातिगत स्वार्थों की उपेक्षा होने लगती है त्यों ही जाति मरने लग जाती है। जब हम दैशिक शास्त्र की इस कसौटी पर चन्द्रगुप्त के पहले की जातियों को जांचते है तो हमें मालूम होता है कि उस समय की जातियों में चिति और विराट् बहुत क्षीण हो चला था। लोग अपने स्वार्थों के साधन मे ही तल्लीन थे। जाति के स्वार्थों की उन्हे कुछ परवाह न थी। ऐसी स्थिति मे दैशिक शास्त्र के नियमानुसार उन जातियों का पतन होना आवश्यक था।

अब समाज-शास्त्र के अनुसार उस समय की स्थिति का अध्ययन कीजिये। समाज-शास्त्र के नियमानुसार मनुष्य का अपने समाज से वही सम्बन्ध है जो किसी इन्द्रिय का अपने शरीर से अथवा किसी शाखा का अपने वृक्ष से होता है। परन्तु जिस प्रकार इन्द्रियों को शरीर की रक्षा के लिये और शाखा को वृक्ष की रक्षा के लिए कुछ न कुछ त्याग करना पडता है उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने समाज की रक्षा के लिये कुछ न कुछ त्याग करना पड़ता है। इन्द्रियो के कर्तव्य-च्युत होते ही जिस प्रकार शरीर में व्याधि खड़ी हो जाती है, उसी प्रकार व्यक्तियो के सामाजिक नियमो का उल्लंघन करने से समाज मे विशृंखलता उत्पन्न हो जाती है। पशुओं और कीड़ों मे भी समाज-शास्त्र का यह नियम अनवरत रूप से काम करता है, इसका उत्तम उदाहरण मधुमक्खियां हैं। एक मक्खी पर आफत आते ही तमाम मक्खियाँ अपने निजी स्वार्थों को भूल कर उसकी सहायता के लिये दौड़ पड़ती हैं। और

यही कारण है प्राय: सभी प्राणी इन तुच्छ कीड़ो से डरते रहते हैं। मतलब यह कि, समाज-शास्त्र का यह नियम जहां तक समाज में काम करता रहता है, जहां तक समाज मे सङ्गठन शक्ति का जोर रहता है, एक दूसरे की सहायता करने की भावनाऐं रहती हैं, वहां तक वह समाज कभी अवनत नहीं हो सकता। समाज-शास्त्र के इस नियम की अवहेलना होते ही अर्थात् यों कहिए कि, सङ्गठन शक्ति का लोप होते ही समाज की वरबादी का होना प्रारम्भ हो जाता है। चन्द्रगुप्त के पूर्व समाज-शास्त्र के इन नियमों की पूर्ण अवहेलना होने लग गई थी। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की और एक राजा दूसरे राजा की, सहायता करने मे प्राय: उदासीन रहता था। इसका एक उदाहरण लीजिये। मकदूनिया के राजा सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उसका पहला हमला राजा पोरस पर हुआ, और उसमें सिकन्दर विजयी और पोरस पराजित हुआ। इस पराजय के कारणों का ध्यानपूर्वक मनन कीजिये। यह पराजय क्यों हुई? क्या पोरस कमजोर था? नहीं, एक भारतीय योद्धा को जितना वीर होना चाहिए, पोरस उससे भी अधिक वीर था, स्वयं सिकन्दर ने मुक्तकण्ठ से उसकी वीरता की प्रशंसा की है। तब क्या सिकन्दर के पास कोई दैवी शक्ति थी? नहीं, वह भी एक मामूली सेना के साथ आया था। फिर पोरस के पराजित होने का कौनसा कारण है, यही कि, उस समय के राजाओं के दिलों से यह भावना उठ गई थी कि, पोरस भी हमारे ही समाज का है, उसकी सहायता करना हमारा कर्तव्य है। वे यह बात भूल गये

कि इसकी पराजय से हमारी ही हानि है। इसी कारण उन्होंने पोरस की कुछ भी सहायता नहीं की, उलटे तक्षशिला प्रभृति के नृपतियो ने पोरस के विरुद्ध सिकन्दर की सहायता की थी। ऐसी हालत में बेचारे पोरस की गुज़र ही क्या थी। इस परिस्थिति में पड़ कर तो बड़े २ साम्राज्य भी उलट जाते हैं।

पोरस की इस पराजय को सारे भारतवर्ष ने देखा। पर किसीने भी उस पर ध्यान नही दिया। केवल एक व्यक्ति ने इस पराजय का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। वह चन्द्रगुप्त था। उसने तत्काल इस पराजय से यह निष्कर्ष निकाल लिया कि, इस समय भारतवर्ष की स्थिति बहुत ही नाज़ुक है। तमाम राजा अपनी २ खिचड़ी अलग पका रहे हैं। इस समय इन सब राजाओं को पराजित कर सहज़ ही में एक विशाल साम्राज्य का सङ्गठन किया जा सकता है। इस विचार के आते ही कर्मशील और उद्योगी चन्द्रगुप्त तत्काल ही सिकन्दर से मिलने गया। कहा जाता है कि, वहां पर उसने यूनानियें का युद्धकौशल और रंग ढंग देखा। वहां से पारङ्गत हो कर वह वापस आया। अब उसको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता हुई जो सब बातें में उसकी सहायता करे। दैव सुयोग से शीघ्र ही उसे संसार का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कौटिल्य मिल गया जिसकी सहायता से उसने कुछ जङ्गली सेना इकट्ठी कर के नन्दवंश का नाश कर दिया, और फिर कुछ ही काल मे सारे भारतवर्ष का सम्राट् बन बैठा। अब हम सहज ही उन कारणें को निकाल सकते हैं जिनके द्वारा चन्द्रगुप्त के समान साधारण व्यक्ति सम्राट् हो गया। वे कारण ये हैं :—

(१) देश की परिस्थिति बहुत डांवाडोल हो रही थी। भिन्न २ राजाओ मे आपस में सहायता करने की भावना मर चुकी थी। सब राजाओ की शक्तियाँ बिखर २ कर नाजुक हो गई थी। ऐसी स्थिति में कोई भी बुद्धिमान् और उत्साही मनुष्य मामूली शक्ति के द्वारा साम्राज्य संगठन कर सकता था।

(२) चन्द्रगुप्त स्वयं एक विशेष कर्मशील, और वीर-पुरुष था, उसकी महत्त्वाकांक्षाओ ने उसके साम्राज्य संगठन में बहुत सहायता दी।

(३) कौटिल्य समान संसार प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ का मिल जाना भी चन्द्रगुप्त के लिये स्वर्ण सुयोग हुआ। यदि कौटिल्य न होता तो साम्राज्य सङ्गठन होता या नहीं यह कौन कह सकता है।

यहा तक हम उन कारणों पर विचार कर चुके जिनके द्वारा चन्द्रगुप्त को साम्राज्य-सङ्गठन मे सहायता मिली। अब हमें चन्द्रगुप्त के पश्चात् भारत की क्या दशा रही उस पर भी तात्विक दृष्टि से कुछ विचार करना है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, सारे देश के एकछत्री शासन में आ जाने से अपनी २ बांसुरी और अपना २ रागवाली भावनाओं का नष्ट होना स्वाभाविक ही था। अब सब लोगों को अपने हितों की अपेक्षा साम्राज्य के हितों की ही चिन्ता अधिक रहती थी। साम्राज्य पर किसी विपत्ति के आते ही वे राजा जो पहले अपने पड़ोसी की मदद करने मे भी हिचकते थे, सब के सब इकट्ठे होकर साम्राज्य की रक्षा के लिए चले आते थे। किसी अकेले राज्य पर किसी विपत्ति का आना सम्भव न था। क्योंकि,

विपत्ति आते ही साम्राज्य से उसे सहायता मिल जाती थी। मतलब यह कि, साम्राज्य-संगठन होते ही सारे देश मे एक राष्ट्रीयता के भावों का संचार हो गया। जिसका फल यह हुआ कि, सिकन्दर से भी अधिक शक्तिशाली सेना के साथ आक्रमण करने वालों को हार खाकर लौटना पड़ा। इस प्रकार से सम्राट् चन्द्रगुप्त ने भारतीय शक्ति का सङ्गठन कर यूनानी वीर को भारतीय लोहे का मजा चखा दिया।

अब चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन पर कुछ शब्द लिख कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

चन्द्रगुप्त के शासन का जो विवेचन पहले किया जा चुका है उससे उसकी शासन-पद्धति की महत्ता प्रकट होती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि, यूरोप की आधुनिक शासन-प्रणाली संसार की सब प्राचीन शासन-पद्धतियों से उत्तम है। जिन लोगों की ऐसी धारणा है वे यदि चन्द्रगुप्त के समकालीन कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र को निष्पक्ष दृष्टि से पढ़ेंगे तो हमारा विश्वास है उनको यह धारणा भ्रममूलक मालूम होने लगेगी। इस बात को हम भी स्वीकार करते हैं कि आधुनिक यूरोप की शासन-प्रणाली कई अंशों मे बहुत उन्नत हो चुकी है। पर जहां तक हमारा अनुमान है आज भी उसमे कोई ऐसा नवीन विभाग नहीं है जो चन्द्रगुप्त और अशोक के काल मे न हो। कुछ लोगों का अनुमान था कि, उस काल में मर्दुमशुमारी खुफिया आदि विभागों का प्रबन्ध न था, पर उस अर्थशास्त्र के प्रकाश में आते ही यह सब दूर हो गया। खुफिया पुलिस का तो उस समय इतना अच्छा प्रबन्ध था जितना शायद ही किसी काल के किसी शासन में रहा हो।

इसके अतिरिक्त कृषि की उन्नति का प्रबन्ध, औषधालयों का प्रबन्ध, अकाल, महामारी, आग, पानी, आदि से रक्षा पाने का प्रबन्ध आदि सब उस शासन में था। दीवानी और फौजदारी अदालतों का जितना उत्तम प्रबन्ध उस समय था, उतना आज भी नहीं है। आज कल की तरह उस समय के कर्म-चारियों में रिश्वत का बाज़ार भी गर्म न था। मतलब यह कि, एक सभ्य राज्य का शासन जिस प्रकार होना चाहिए, चन्द्रगुप्त का शासन उससे कहीं अच्छा और अशोक का उससे भी अधिक उत्तम था। उस शासन में यदि कोई त्रुटि हो सकती है, तो केवल एक, वह है दण्ड-विधान की सख्ती। कई इतिहासज्ञ इन सख्त दण्डों को चन्द्रगुप्त और अशोक के लिए कलङ्क स्वरूप समझते हैं। हम भी उनके इस मत से कुछ अंशो में सहमत हैं, अवश्य इस प्रकार की भयङ्कर दण्ड-प्रणाली एक सभ्य राज्य के लिए कलङ्क स्वरूप हो सकती है। पर यदि इसी को दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो वह उतनी भयङ्कर नहीं जँचती। राज्य की उत्पत्ति का मुख्य उद्देश्य क्या है ? रजोगुण की अधिकता के कारण समष्टि और व्यष्टि में एक प्रकार की जटिलता उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का और एक समाज दूसरे समाज का अनिष्ट करने लगता है। यह भावना राजनैतिक कोष में अपराध के नाम से पुकारी जाती है। इस प्रकार के अप-राधों की संख्या को समाज में न होने देने के लिये और शान्ति बनाए रखने के लिये ही राज्य की उत्पत्ति हुई है। इन अपराधों की संख्या को घटाने के लिए राज्य, साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार नीतियों का अवलम्बन करता है। जो राज्य साम नीति के

द्वारा समाज के अपराधों की संख्या घटाता है वह सब से अधिक सभ्य समझा जाता है। पर कभी २ समाज की यह जटिलता ऐसी दुष्कर हो जाती है कि, बिना दण्ड और भेद नीति का अवलम्बन किये वह दूर नहीं हो सकती। सम्भव है चन्द्रगुप्त के शासन के पूर्व समाज की अवस्था ऐसी ही जटिल हो रही हो, जिसे सुलझाने के लिए उसे ऐसी दण्डनीति का अवलम्बन करना पड़ा। पर यह निश्चय है, इसी दण्ड और भेद नीति के बल पर उसने समाज में शान्ति स्थापना कर दी। इसी दण्डनीति का प्रताप था कि, मेगास्थनीज़ के समान राजदूत को भी मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार करना पड़ा। यहां पर अपराधों की संख्या बहुत कम होती थी। इससे यह न समझना चाहिए कि, चन्द्रगुप्त का शासन केवल दण्डनीति पर ही अवलम्बित था। नहीं, साम और दाम नीतियों के द्वारा भी समाज-सुधार की चेष्टायें उसके राज्य में बराबर होती रहती थी। इसके अतिरिक्त इससे यह भी न समझ लेना चाहिए कि, इस निर्द्धारित की हुई दण्ड-नीति का प्रयोग हमेशा एकसा ही हुआ करता था। प्रथम तो दण्डनीति की इस भयङ्करता के कारण कोई व्यक्ति अपराध करने का साहस ही नही करता था। यदि कोई करता भी तो मजिस्ट्रेट लोग बहुत सूक्ष्म दृष्टि से उस अपराध की जांच करते थे, ऐसी स्थिति मे बहुत ही कम अपराध ऐसे निकलते थे जिनके लिये उपरोक्त भयङ्कर दण्ड-नीति का अवलम्बन करना पड़ता था। शेष साधारण अपराधों के लिये साधारण सजाएं दे दी जाती थीं। मतलब यह कि, कानून के अन्दर सैद्धान्तिक-रूप से यह दण्ड-नीति अवश्य भयङ्कर रक्खी गई थी, पर व्यवहारिक

रूप में उसका बहुत ही कम प्रयोग होता था। कुछ भी हो आज कल के ऐतिहासिक लोग इसकी कितनी ही निन्दा क्यों न करें पर यह निर्विवाद है कि, चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन काल में प्रजा के अन्दर जितनी शान्ति थी, उसका शतांश भी आज कल के यूरोप में नहीं है।

मौर्य्य साम्राज्य का अन्त।

सम्राट् अशोक के पश्चात् मौर्य्य वंश के किसी भी प्रतिभाशाली सम्राट् का, लिखित वर्णन हमें नहीं मिलता। यद्यपि उनके पश्चात् कई वर्षों तक मौर्य्य साम्राज्य का अस्तित्व रहा, तथापि वह तेज और वह प्रतिभा जो अशोक के साम्राज्य में थी, अब नष्ट हो चुकी थी और साम्राज्य की नींव भी क्रमशः ढीली होती जा रही थी। अशोक के पश्चात् क्रमशः सुयश, दशरथ, संगत, शालिशुक सोमशर्म्मा और बृहद्रथ नामक राजा क्रमशः गद्दी पर बैठे। अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने धोखे से मार डाला, और इसके साथही मौर्य्य साम्राज्य का एक तरह से अन्त हो गया। केवल राजपूताना मालवा आदि में कुछ दिनों तक और अशोक के वंशजों का राज्य रहा।

शुंगवंश का उदय और अस्त।

बृहद्रथ का वध करके पुष्पमित्र सिंहासन पर बैठा। इसका वंश भारतीय इतिहास में "शुंगवंश" के नाम से प्रसिद्ध है। पुष्पमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे। एक यज्ञ के अश्व की रक्षा के लिए उसका पौत्र वसुमित्र कई राजकुमार और सेना सहित नियुक्त किया गया था। सिन्धु (काली सिन्ध) नदी के किनारे

के यवन (यूनानी) लोगो ने उस घोड़े को पकड़ लिया था पर वसुमित्र के सम्मुख वे लोग बुरी तरह से पराजित हुए। वसुमित्र ने घोड़ा छुड़ा लिया। इसके पश्चात् वह घोडा कहीं पर भी न रोका गया। पुष्पमित्र का अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्नता से समाप्त हुआ।

शुङ्गवंशीय राजा पुष्पमित्र के जीवन की दो घटनाए विशेष प्रसिद्ध हैं। पहली घटना वाखतर के तत्कालीन शासक के सम्बन्धी मिनैण्डर का भारतवर्ष पर आक्रमण है। ईस्वी सन् से १५५ वर्ष से ईस्वी सन् से १५३ वर्ष पूर्व के वीच में मिनैण्डर ने जिसने कि मौर्य्य वंश के अन्त के समय में पजाब और काबुल पर अधिकार कर लिया था भारतवर्ष पर आक्रमण किया। सर्व प्रथम उसने मथुरा और काठियावाड़ पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया! इसके पश्चात् राजपूताने मे मध्यमिका (चितौड़ से सात मील उत्तर में जिसको अब "नगरी" कहते हैं) पर चढ़ाई करके वह पाटलिपुत्र के समीप तक आ पहुँचा। पुष्पमित्र ने युद्ध की पूरी तैयारी के साथ उसका मुकाबिला किया। घमासान युद्ध हुआ। अन्त में वीर सेल्यूकस की तरह इस गर्वित आक्रमणकारी को भी हार खाकर लौटना पड़ा। पुष्पमित्र की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अग्निमित्र को सिहासन मिला, उसके पश्चात् इस वंश मे नो राजा और हुए। इस वंश का अन्तिम राजा देवभूति वहुत विषयासक्त और अकर्मण्य था। इसके प्रमाद से इस वंश का अन्त हुआ।

कण्व वंश।

शुंगवंश के अन्तिम राजा देवभूति को उसके मन्त्री वासुदेव ने षड्यन्त्र के द्वारा मरवा डाला, और उनकी जगह पर स्वयं

राजा बन बैठा। इसके वंश मे क्रमशः तीन राजा और हुए। अन्तिम राजा को अंध्रवंश के सातवाहन नामक राजा ने मार डाला। इस वंश के पतन के बाद अन्ध्रवंश का उदय हुआ।

अन्ध्र वंश

अन्ध्र लोग द्रविड़ देश के रहनेवाले थे। उनका राज्य कृष्णा और गोदावरी नदी के मुहाने पर हिन्दुस्थान के पूर्व की ओर था। इसका पहला राजा "सिमुक" नाम का था। इनकी राजधानी कृष्णानदी के तीर पर स्थित श्रीकाकोल नामक नगर मे मानी जाती है। उसके दूसरे सम्राट् कृष्ण ने अपने राज्य का विस्तार नासिक तक कर लिया। इसी वर्ष किसी एक राजा ने सुशर्मा नामक राजा को मार कर उसका राज्य हथिया लिया। तत्पश्चात् "हाल" नामक राजा गद्दी पर बैठा। उसने मराठी भाषा मे "सप्तशती" नामक ग्रन्थ लिखा। कई लोग इसको "शालिवाहन" या शातवाहन भी कहते हैं। राजा गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी, और वासिष्ठि पुत्र श्री पुलुमायी के शासनकाल में पश्चिमी तट पर स्थित क्षत्रप राजाओं और अन्ध्र राजाओं में युद्ध हुआ था। गौतमी-पुत्र ने क्षत्रप नरेश क्षहरात वंशी "नहपान" को हरा कर उसका राज्य छीन लिया था। उसके पुत्र पुलुमायी ने उज्जैन के क्षत्रप नरेश रुद्रदामा की लड़की से शादी की थी। परन्तु कुछ समय पश्चात श्वसुर और जमाई मे मनोमालिन्य हो गया, जिसके फल स्वरूप दोनों मे युद्ध छिड़ गया जिसमें रुद्रदामा विजयी हुए और पुलुमायी पराजित हुए।

की मृत्यु के पश्चात् गौतमीपुत्र "यज्ञ श्री" राजा हुए। इसके पश्चात् इस वंश में तीन राजा और हुए। जिनके नाम क्रमशः "विजय," "चन्द्र श्री," और "पुलुमायी" थे।

कुशान वंश

इसी वंश के साथ भारतवर्ष मे "कुशान" वश भी राज्य कर रहा था। इसका पहला राजा "कड़फिसिस" था। उसने अपने जीवन काल में पंजाब और काशी पर अधिकार कर लिया। इस वंश का सब से बड़ा राजा "कनिष्क" था। यह कैडिफिसिस का पौत्र था। इसी के समय में रोम और भारतवर्ष का व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ा था। विदेशों में कनिष्क की प्रसिद्धि अशोक की तरह हो गई थी। कनिष्क ने चीन का भी थोड़ासा हिस्सा जीत लिया था। इसीके द्वारा चीन में बौद्ध धर्म का इतना अधिक प्रचार हुआ। अपने जीवन काल में उसने १३ मंजिल का चार सौ पाद ऊंचा लोहे का एक स्तम्भ बनवाया। कनिष्क के पश्चात् उसका पुत्र हविष्क गद्दी पर बैठा। काश्मीर, काबुल और मथुरा उसके राज्य मे सम्मिलित थे। उसके पश्चात् "वासुदेव" नामक राजा सिंहासन पर बैठा। इसी के समय में बेबीलोनिया के अन्दर एक भयङ्कर क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का हिन्दुस्थान पर भी बहुत प्रभाव पड़ा जिसके कारण कुशान वंश का भी पतन प्रारम्भ हो गया।

महाराज कनिष्क

कुशान वंश का परिचय देते हुए हम महाराज कनिष्क का भी कुछ परिचय दे आये हैं। इस स्थान पर हम उन्हीं महाराज कनिष्क का कुछ विस्तृत परिचय देना उचित समझते है। यद्यपि महाराज कनिष्क हिन्दू नहीं थे, और उनके पूर्वज तुर्किस्तान की ओर से आये थे, तथापि एक प्रकार से यदि उन्हे हिन्दू ही कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। ये लोग भारतीय कर्म्म और भारतीय सभ्यता के उतने ही उपासक थे, जितने मूल हिन्दुस्थानी हुआ करते हैं। बौद्ध धर्म का तो जितना प्रचार कुशान वंशीय कनिष्क ने किया, उतना अशोक को छोड़ कर शायद ही किसी सम्राट् ने किया हो। इसके अतिरिक्त इनके कई सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनमे इनके शैवमतावलम्बी होने का पता चलता है। मतलब यह कि, धर्म्म और सभ्यता की दृष्टि से यदि इन्हें हिन्दू ही कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

इसी दृष्टि बिन्दु को सम्मुख रख कर—महाराज कनिष्क की हिन्दू सम्राटों में गणना करते हुए हम अगले पृष्ठों पर संक्षिप्त में उनका इतिहास देते हैं।

महाराज कनिष्क गांधार के बड़े प्रतापी राजा थे। समग्र उत्तर पश्चिमी भारत, दक्षिण में बिन्ध्य तक का देश, और सिन्ध इन्हीं के अधिकार में था। इनके समय में भारतवर्ष से पार्थियन राज्य का अन्त हो गया था। भारतवर्ष में इनकी राजधानी पुरुष-पुर अथवा पेशावर थी। यहां पर इन्होंने बड़े २ बौद्ध स्तूप और मठ बनवाये थे। चीनी यात्री सुंगयुन ने वहां के एक बौद्ध स्तूप को देखा था। उस समय तक वह स्तूप बिजली गिरने से तीन बार नष्ट हो चुका था। परन्तु वहां के राजाओं ने उसकी मरम्मत करवा दी थी। इसी के पास एक मठ था, जो बौद्ध धर्म्म की शिक्षा के लिए ईसा की नौवीं शताब्दि तक प्रसिद्ध था। अन्त में शायद महमूद गजनवी या उसके अनुयायियों ने इसे नष्ट कर डाला। भारतीय पुरातत्वानुसन्धान के महकमे के परिश्रम से आज भी उपर्युक्त स्थानों के भग्नावशेष देखने को मिलते है।

महाराज कनिष्क ने पार्थिया पर भी आक्रमण किया था। और अपने अन्तिम समय में, विमकड़फ़िसस का बदला लेने को इसने चीन के शासित तुर्किस्तान पर भी आक्रमण किया। भयङ्कर युद्ध के पश्चात् अन्त मे कनिष्क को विजय मिली और काशगर, यारकन्द तथा खोतान पर इसका अधिकार हो गया। इस विजय को स्थायी बनाने के लिए कनिष्क वहां के राज परिवार के कुछ लोगो को अपने साथ ले आया था। ये लोग ज़मानत के तौर पर इसकी रक्षा में रहते थे। इनके लिए हर प्रकार का सुभीता किया गया था। ग्रीष्म काल में ये लोग कपिशा के मठों में रहते थे जहां शीतलता रहती थी। वर्षा में इनका

निवास स्थान गान्धार था और सर्दियो मे ये लोग पूर्वी पंजाब में रहा करते थे ।

साहित्य उन्नति ।

सम्राट् कनिष्क के समय मे भारतीय साहित्य की बहुत उन्नति हुई। प्रसिद्ध वैद्य चरक (जिनके लिखे हुए ग्रन्थ आज भी वैद्यक मे प्रमाणभूत माने जाते हैं) इन्हीं के समकालीन थे । वे स्वय कनिष्क की सभा के राजवैद्य थे । इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध विद्वान् अश्वघोष, नागार्जुन, और वसुमित्र की प्रतिभा का प्रकाश भी कनिष्क के समय मे ही हुआ था ।

सम्राट् कनिष्क के समय के बहुत से सिक्के सोने और कांसी के मिलते हैं । इसमे एक ओर राजा का चित्र होता है और ग्रीक अक्षरों मे 'कनेकर्म' लिखा हुआ रहता है । दूसरी ओर किसी सिक्के पर नन्दी और महादेव, किसी पर "बुद्ध" आदि भिन्न २ देवताओं के चित्र रहते हैं ।

सम्राट् कनिष्क ने अपने जीवन काल में बौद्धो की एक महासभा कश्मीर में की थी । जिसके उपसभापति अश्वघोष बनाए गए थे । इस सभा का विस्तृत वर्णन आगे के पृष्ठों पर अंकित है ।

कनिष्क की मृत्यु का अनुमान सन् ७६२ ई० के आस पास किया जाता है ।

महाराज कनिष्क और बौद्ध धर्म ।

हम ऊपर लिख आए हैं कि कुशानवंशीय महाराज कनिष्क ने बौद्ध धर्म अङ्गीकार कर लिया था । उन्होंने भी सम्राट् अशोक

की ही तरह बौद्ध धर्म्म के प्रचार का बहुत उद्योग किया। तिब्बत, चीन, मङ्गोलिया आदि देशों में भी उन्होंने धर्म्म प्रचारकों को भेजा था। अपनी राजधानी पुरुषपुर—जिसे आजकल पेशावर कहते हैं—में उन्होंने महात्मा बुद्ध की स्मृति में एक विशाल लाट भी बनाई थी, इसकी ऊंचाई तीन मंजिलो मे करीब चारसौ फ़ीट थी। कनिष्क के जीवन काल में एक और प्रसिद्ध घटना हुई, वह घटना बुद्ध सम्प्रदाय का दो विभागों में विभक्त होना है। इसका विवरण इस प्रकार है—

यह कहने की आवश्यकता नही कि सम्राट् कनिष्क के समय तक बौद्ध धर्म्म में क्रमशः बहुत विकृति हो गई थी। सम्राट् अशोक के समय तक बौद्ध धर्म्म फिर कुछ अंशों में शुद्ध था। पर थोड़ी बहुत विकृति तो उसमें बुद्ध की मृत्यु के बाद से ही होने लग गई थी। स्वयम् महात्मा बुद्ध ने अपनी युक्तियो के बल पर अपने मत का प्रतिपादन किया था, पर उनके भावी अनुयायियो में वह प्रतिभा न रही, इसलिये उन्होंने युक्ति के स्थान पर विश्वास को ग्रहण किया। जो कुछ भगवान् बुद्ध कह गये हैं वही सही है, बस इसी तर्क पर उन्होने बुद्ध धर्म्म के सिद्धान्तो को जीवित रक्खा। पर इस में भी एक आपत्ति आकर खड़ी हो गई। कुछ पाखण्डियों ने बुद्ध के असली सिद्धान्तों में मनमाने बहुत से नकली सिद्धान्त मिला कर उनका प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। तर्क का ज़माना तो था नहीं, जैसा उन्होंने कहा, वैसा ही लोगों ने मानना शुरु कर दिया। बस अन्धेर नगरी के मच जाने से उस धर्म में बहुत से मतभेद हो गये। कोई एक सिद्धान्त का प्रतिपादन करता, तो कोई दूसरे का

सम्राट् अशोक के समय में यह छीना झपटी बहुत बढ़ रही थी; इस कारण सम्राट् को इस विशृंखलता के दूर करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने तत्काल ही बौद्ध भिक्षुओं की एक विराट् सभा की प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु उपगुप्ताचार्य्य भी इसमें सम्मिलित थे। इस सभा में उन सब पाखण्डियों को छांट दिया गया जो स्वार्थ के वशीभूत होकर धर्म में मनमानी मिलावट किया करते थे। इस सभा का फल यह हुआ कि, बौद्ध धर्म मे एक बार फिर शान्ति छा गई। पर कुछ वर्षों के पश्चात् अर्थात् अशोक के साम्राज्य का अन्त होते ही यह विशृंखलता फिर प्रारम्भ हो गई। इस बार इसने और भी भीषण रूप धारण किया। अशोक के समय में तो पाखण्डियों की संख्या अधिक न बढ़ी थी। पर अब उसमें अधिक संख्या स्वार्थी लोगों की हो गई। और साधुओं की संख्या बहुत कम रह गई, स्वयं बड़े २ राजा भी इन नकली भिक्षुओं के फन्दे में पड़ गये। इन लोगों के पड़ने का एक कारण था. वह कारण मनोविज्ञान के सूक्ष्म तत्त्वों से सम्बन्ध रखता है।

कुछ पहुँचे हुए ऊंचे महापुरुषों को छोड़ कर जन साधारण की प्रवृत्ति सामान्यतः ऐसे धर्म की ओर झुका करती है, जो मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय को और तर्क की अपेक्षा विश्वास को उच्च स्थान देता है जिसमे एक वरदायक, शान्ति प्रदायक और अभयचक्षु उपास्य की कल्पना रहती है। असली बौद्ध धर्म में यह बात न थी। दार्शनिक दृष्टि से उसका महत्त्व बहुत अधिक हो सकता है पर इस दृष्टि से तो वह बिलकुल नीरस था। और इसलिये साधारण जनता को उसका

रुचिकर होना कठिन हो गया। अवश्य कुछ समय तक महात्मा बुद्ध के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर लोगो ने उस धर्म को अपनाया। पर उनके निर्वाण होते ही साधारण जनता उसके वास्तविक पालन मे कमज़ोरी दिखलाने लगी और उसके साथ ही उस धर्म में विकृति होना प्रारम्भ हो गया। इधर भारतवर्ष में एक ऐसा धर्म भी मौजूद था, जिसमें जनता की रुचि के अनुकूल सब बातें थीं। वह वैदिक धर्म था। बुद्ध धर्म में इस प्रकार की विकृति होते ही, यह धर्म पुन प्रकाश में आने लगा कनिष्क के समय में यद्यपि प्राधान्य बौद्ध धर्म का ही था, तथापि इस धर्म मे भी पुनर्जीवन आता दिखलाई देने लगा था। बल्कि यह कहना भी अनुचित न होगा कि, बुद्ध धर्म के ऊपर भी इसकी एक ज़बर्दस्त छाप लग गई थी। वास्तविक बौद्ध धर्म में किसी व्यक्ति विशेष की उपासना, चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा सिद्ध, ऋषि, देव, क्यो न हो निरर्थक है। पर कनिष्क कालीन बौद्ध धर्म में यह बात नही थी। उस काल के अधिकांश बौद्ध भगवान् बुद्ध को अन्य मतावलम्बियों के ईश्वर की तरह मानने लग गये थे। वे उनको सद्गति का दाता मान कर उनकी पूजा भी करने लग गये थे। मतलब यह कि, उन्होंने असली बौद्ध धम पर नैतिक धर्म के इस सिद्धान्त का रंग देकर और का और बना दिया था। पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो असली बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, और जिन्हें पवित्र बुद्ध धर्म मे इस प्रकार की मिलावट होते देख कर हार्दिक दु:ख हो रहा था। ऐसे लोग बहुत काल तक इस प्रकार के परिवर्तन का विरोध करते रहे.

पर साधारण जनता बुद्धदेव की उच्च, नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा पर अपना ध्यान एकाग्र करने में बिलकुल असमर्थ थी। जब यह मतभेद अधिकाधिक बढ़ने लगा तो महाराज कनिष्क ने सम्राट् अशोक की तरह पुनः एक बार बौद्ध भिक्षुओं की एक विशाल सभा कश्मीर मे की। इस सभा के अन्दर बौद्ध धर्म दो भागो में विभक्त हो गया। असली बौद्ध धर्म का उपासक समुदाय बहुत कम संख्या में था अतः वह "हीनयान" नाम से प्रसिद्ध हुआ। और परिवर्तित बौद्ध धर्म का उपासक समुदाय बहुत बड़ी संख्या मे होने से "महायान" कहलाया। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि स्वय महाराज कनिष्क परिवर्तित धर्म के अर्थात् महाया पन्थ के उपासक थे।

गुप्त साम्राज्य का उदय।

कुशान वंश और अन्ध्र वंश के नष्ट होने पर भारतवर्ष में जगत प्रसिद्ध गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। मौर्य्य साम्राज्य की ही तरह इस साम्राज्य का इतिहास भी भारतवर्ष के लिए बड़े अभिमान की वस्तु है। इस साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष की बहुत अधिक उन्नति हुई। ईसवी सन् ३२० से इस वंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश का इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अतः हम आगे इस वंश के प्रत्येक सम्राट् का कुछ विस्तृत विवेचन करना उचित समझते हैं।

प्रथम चन्द्रगुप्त

जिस प्रकार मौर्य्य वंश के सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रारम्भ में एक साधारण व्यक्ति थे, उसी प्रकार गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त भी प्रारम्भ मे बहुत साधारण व्यक्ति थे। इनके पिता "घटोत्कच" और दादा "गुप्त" अपने जीवन में केवल सरदार पदवी को प्राप्त कर सके थे। पर जिस प्रकार मौर्य्यवंश के सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने उत्साह और पराक्रम के बल से इतने बड़े साम्राज्य का सङ्गठन किया, उसी प्रकार गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त अपने भाग्य के बल से इतने बड़े साम्राज्य के सूत्रधार हुए।

ईसा की तीसरी शताब्दी मे भारतवर्ष मे "लिच्छवि" नाम के एक प्रतापी वंश का राज्य था। यह लिच्छवि वंश कौन था और कहां से आया था इसका विवेचन आगे किया जायगा। इसी लिच्छवि वंश के कारण मौर्य्य साम्राज्य के समान महान् गुप्त साम्राज्य का जन्म हुआ। वैशालि के राजा ने सन् ३०८ में अपनी कन्या "कुमारदेवी" का पाणिग्रहण प्रथम चन्द्रगुप्त के साथ कर दिया। इसी विवाह के कारण भारतवर्ष के इतिहास मे एक सुवर्ण युग का सूत्रपात होता

हुआ दिखलाई पड़ता है। कुमारदेवी के साथ विवाह हो जाने से चन्द्रगुप्त उसके माता पिताओ की उपभुक्त महान् पदवी को प्राप्त कर सका था, उसने अपने पराक्रम से गङ्गा और यमुना के सङ्गम तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। अपने थोड़े से राज्य-काल मे ही उसने दक्षिण मगध, अयोध्या आदि प्रान्तों को हस्तगत कर लिया था। सन् ३२० में चन्द्रगुप्त ने अपने नाम का एक सवत् भी चलाया था जो पीछे जाकर "वलभी संवत्" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह संवत् ईसा की तेरहवी शताब्दी तक भारत मे चलता रहा।

लिच्छवि वंश कौन था?

लिच्छवी वंश कौन था, इस विषय मे आधुनिक इतिहासकारो मे बहुत मतभेद पाया जाता है। कोई इस वश के लोगों का मूल स्थान तिब्बत बतलाते हैं और कोई ईरान। पर अभी तक जो मत स्थिर हुआ है, उससे पता चलता है कि इस वश के राजा सूर्यवंशी थे। ईस्वी सन् से ५३० वर्ष पूर्व इस वंश के राजाओ का राज्य वैशाली मे था। और उक्त समय के आस पास ही शिशुनाग वंशी राजा बिम्बसार (श्रेणिक) ने इस वंश की एक कन्या से विवाह किया था। इस कन्या के गर्भ से अजातशत्रु (कुणिक) का जन्म हुआ। जैन ग्रन्थों में लिखा है कि वह कुणिक अपने पिता को मार कर राज्य का स्वामी बन बैठा। उस समय शिशुनाग वंश का राज्य राजगृह, अङ्गदेश और मगधदेश पर था।

इसके अतिरिक्त जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर की माता भी इसी वंश की थी।

उक्त समय के पश्चात् करीब आठसौ वर्ष का लिच्छवियों का इतिहास अन्धकार मे है। उसके पश्चात् सन् ३०८ ईस्वी में चन्द्रगुप्त ने इस वंश की कन्या कुमारदेवी से विवाह किया। इस समय पाटलिपुत्र लिच्छवियो के अधीन था।

इस वंश का इतना विवेचन करने का मतलब यह है कि, इसी वंश की कृपा से भारतवर्ष के इतिहास में एक विशाल साम्राज्य का उदय हुआ। उस साम्राज्य मे भारतवर्ष ने बहुत उन्नति की। ऐसे बड़े साम्राज्य का निम्मीण जिस वंश से हुआ उसका संक्षिप्त इतिहास दे देना इस पुस्तक मे आवश्यक था। अस्तु।

दस वर्ष तक राज्य करके प्रथम चन्द्रगुप्त स्वर्गवासी हुए। उनके पश्चात् उनके पुत्र समुद्रगुप्त सिंहासनासीन हुए। उनका विस्तृत हाल आगे दिया जाता है।

वास्तव मे देखा जाय तो इस पुस्तक मे प्रथम चन्द्रगुप्त का इतिहास लिखने की आवश्यकता न थी। इनके काल में इनका राज्य इतना बड़ा नहीं हो गया था, जो साम्राज्य के नाम मे कहा जा सके। अतएव भारत के हिन्दू सम्राटो में इनका नाम नहीं आ सकता। पर चूंकि, इन्हीं के द्वारा गुप्त साम्राज्य के समान महान् साम्राज्य की नीव रक्खी गई, और यही उसके पहले राजा थे, इसलिये संक्षिप्त में इनका विवेचन किये विना पुस्तक के अधूरी रह जाने का डर था। इसी कारण इनका कुछ विवेचन कर देना बहुत जरूरी था जिससे पाठकों को आगे के सम्राटो का हाल मालूम करने में सुविधा हो।

सम्राट् समुद्रगुप्त

विशाल मौर्य्य साम्राज्य का पतन हुए पश्चात् भारतवर्ष में कई वर्षों तक किसी भी ऐसे प्रतापी वंश का उद्भव नहीं हुआ जिसने अपनी शक्ति के बल से भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त और अशोक की तरह एक छत्री साम्राज्य का दृश्य दिखलाया हो। मौर्य्य साम्राज्य के पतन और गुप्त साम्राज्य के उदय के बीच के पाँच सौ छः सौ वर्ष भारतवर्ष के लिए ऐसे ही बीत गये। इस समय में इस देश के अन्दर कई जातियाँ अवतीर्ण हुई, और विलीन भी हो गई, कई सिंहासन जमे, और उखड़ भी गये, जिनका संक्षिप्त इतिहास पूर्व के पाँच छः पृष्ठों में अंकित है। पर इन जातियों में एकाध को छोड़ कर कोई भी व्यक्ति ऐसी नहीं हुई, जो हिन्दू सम्राटों की श्रेणी में स्थान पा सके। इन पाँच सदियों को अतिक्रमण करने के पश्चात् इतिहास फिर एक ऐसे काल में पहुँचता है, जो मौर्य्य काल के ही समान अथवा उससे भी कुछ बढ़ कर। महत्वपूर्ण है। यह काल गुप्त साम्राज्य का काल है। जिस प्रकार मौर्य्य साम्राज्य की छाया में रहकर भारतवर्ष ने अपनी उन्नति की थी, उसी प्रकार इस साम्राज्य के सुवर्ण काल में भी उसे फलने फूलने का खूब अवसर मिला।

मौर्य्य साम्राज्य के संस्थापक की तरह गुप्त साम्राज्य के संस्थापक भी चन्द्रगुप्त ही थे। जिस प्रकार मौर्य्य सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने पूर्वकाल मे साधारण व्यक्ति थे, उसी प्रकार ये चन्द्रगुप्त भी अपने पूर्व काल में बिलकुल साधारण व्यक्ति थे। जिस प्रकार मौर्य्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने हाथो इतने बडे साम्राज्य की नीव रक्खी, उसी प्रकार गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त ने भी भारतवर्ष में अपने हाथो इतने बड़े गुप्त साम्राज्य का उद्भव किया। मतलब यह कि, इन दोनों चन्द्रगुप्तो के जीवन में बहुत कुछ साम्य पाया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि, जहाँ मौर्य्य सम्राट् की कुल उन्नति अपने पराक्रम और बुद्धिमता से हुई, वहाँ गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त की उन्नति अपने भाग्य से अथवा यों कहिए लिच्छवि वंश मे सम्बन्ध होने के कारण हुई। इसके अतिरिक्त मौर्य्य वंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने काल में ही यशस्वी हो चुके थे, उन्होंने अपने ही हाथों से अपने राज्य को साम्राज्य का रूप दे दिया था। पर यह श्रेय गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त को प्राप्त न हो सका। वे अपने हाथों अपने राज्य को साम्राज्य का रूप न दे सके, हाँ, भविष्य मे उनके पुत्र समुद्रगुप्त ने उनके राज्य को साम्राज्य संज्ञा से अलंकृत कर दिया। समुद्रगुप्त ने अपने जीवन में इतने युद्ध किये जितने शायद ही किसी सम्राट् ने किये हो। उन्होंने अपने साम्राज्य को बढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया। और इसीलिए आज कल के अंग्रेज "भारत का नैपोलियन" नाम से उनका सत्कार करते हैं। इन्होंने अपने काल में भारतवर्ष की बहुत ही उन्नत की। आगे के पृष्ठों पर संक्षिप्त में इन्हीं समुद्रगुप्त का विवेचन किया जाता है।

सम्राट् समुद्रगुप्त और तत्कालीन भारत

सम्राट् समुद्रगुप्त के समय में अशोक निर्म्मित भारतवर्ष बिलकुल नष्टप्राय हो चुका था। हम ऊपर लिख आये हैं कि, अशोक के पश्चात् और समुद्रगुप्त के पहले भारतवर्ष में कई जातियो के राज्य हुए और बिखर गये। अतएव यह निश्चय है कि भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति में भी कई प्रकार के परिवर्तन होते रहे होगे। अशोक के पश्चात् भारतवर्ष पर विदेशी जातियों के भी कई आक्रमण हो चुके थे। शक जाति के आक्रमण हो ही चुके थे। यूएहिचि की कुशान नामक शाखा का आक्रमण भी भारतवर्ष सहन कर चुका था. और भी छोटी बडी कई जातियो के आक्रमण समुद्रगुप्त के पहले इस देश में हो चुके थे और इस कारण देश की राजनैतिक स्थिति बहुत डांवाडोल हो चुकी थी। भारतवर्ष मे उस समय छोटे बड़े कई राज्य उत्पन्न हो गये थे। समुद्रगुप्त के समकालीन "हरिषेण" नामक एक कवि हो गये हैं। उन्होंने समुद्रगुप्त के शासन का हाल संस्कृत में अलाहाबाद वाले अशोक के स्तम्भ पर लिखा है। सन् ३८० के लगभग यह विवरण एक शिलालेख पर खुदवाया गया था। उस शिलालेख में समुद्रगुप्त के समकालीन राजाओं को छः भागों में विभक्त किया है:—

(१) नौ राजा आर्य्यावर्त के (२) बारह राजा दक्षिण प्रान्त के (३) पांच राजा सरहद के (४) नौ जातियाँ सरहद की (५) आटविक राज्य और (६) बाहरी प्रदेशों की

पांच जातियाँ। इन सब को सम्राट् समुद्रगुप्त ने पराजित किया था।

उससे पता चलता है कि उस समय लोगों में एक राष्ट्रीयता की भावना का कुछ २ लोप हो चला था। सारे देश मे उस समय "अपनी २ बांसुरी और अपना २ राग" वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। कोई भी व्यक्ति ऐसा न था जो इस बिगड़ी हुई स्थिति को सुधार कर प्रतिभा-पूर्वक सारे देश का संचालन करे। जनता के चरित्र बल में भी उस समय कमजोरी आने लग गई थी। इसके अतिरिक्त विदेशी आक्रमणो का भी लोगो को बड़ा डर रहता था। क्योंकि, उस समय देश में सङ्गठन न था, और सङ्गठन के बिना विदेशी शत्रुओं से त्राण पाना बहुत कठिन है। इसी कारण लोग किसी आक्रमण की चर्चा सुनते ही एकदम भयभीत हो जाते थे। तात्पर्य्य यह कि, राजनैतिक दृष्टि से उस समय भारत की स्थिति बहुत नाजुक हो रही थी। सारे देश को उस समय एक ऐसे पुरुष की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी जो इस स्थिति को सम्हाल कर देश मे शान्ति की स्थापना करे। देश के सौभाग्य से तत्काल ही गुप्त साम्राज्य का जन्म हुआ और उस साम्राज्यकाश में समुद्रगुप्त रूपी चंद्रमा दिखलाई पडा, जिसने अपने पराक्रम के तेज से देश को एकसूत्र में बाँध दिया। और शासन की शीतल चन्द्रिका से सारे देश में एक जीवित शान्ति का प्रस्तार कर दिया।

धार्मिक अवस्था

पहले की ही तरह सम्राट् समुद्रगुप्त के समय में भी देश के अंदर बौद्ध धर्म का प्राधान्य था। सारे देश में अधिकांश बौद्ध

ही बौद्ध दिखलाई पड़ते थे। जो लोग बौद्ध नहीं थे उन्हे भी अधिकांश में बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तो को मानना पड़ता था। यहां पर सहज ही में एक प्रश्न हो सकता है वह यह कि, अशोक के पश्चात् देश की राजनैतिक अवस्था मे कई परिवर्तन हुए, कई विदेशियों के आक्रमण हुए, कई विदेशियो ने यहां पर राज्य भी किया, शासन नीति को भी बदला, ऐसी घात प्रतिघात युक्त अवस्था मे, धार्मिक अवस्था किस प्रकार स्थिर रही, जब कि, राजनैतिक अवस्था के साथ २ धार्मिक अवस्था का परिवर्तित होना भी आवश्यक है। यह प्रश्न अवश्य महत्वपूर्ण है पर यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जायगा तो यह प्रश्न स्वयं ही हल हो जायगा। यह सत्य है कि, उस समय मे देश की राजनैतिक अवस्था बहुत परिवर्तित हुई। कई विदेशियों के आक्रमण भी हुए, कई स्थानों पर उनकी सत्ता भी रही, ऐसी अवस्था में धार्मिक अवस्था में भी परिवर्तन होना आवश्यक था। पर परिवर्तन न हुआ। इसका प्रधान कारण यह है कि जितने राजाओं ने इस देश में राज्य किया वे प्रायः सभी किसी अंश मे धर्म के पोषक थे, बौद्ध थे। विदेशी जातियों में से भी शक और कुशानवंशीय राजाओं ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था। कुशानवंश के प्रसिद्ध महाराजा कनिष्क भी बौद्धमतानुयायी थे। ऐसी हालत में—तमाम राजाओ के सधर्मी होने के कारण—देश की राजनैतिक अवस्थाओं में परिवर्तन होते रहने पर भी धार्मिक नीति में परिवर्तन न होना संभव हो सकता है। क्योंकि, शासन संबंधी विभागों में तो प्रत्येक नृपति का मतभेद रहना स्वाभाविक है, पर धार्मिक विभागों में मतभेद होना बहुत कठिन

है। यही कारण है कि इन शताब्दियों में देश का राजनैतिक आकाश मेघाच्छन्न रहने पर भी धार्मिक आकाश निर्मल ही रहा। बल्कि, विदेशी राजाओं के सधर्मी हो जाने से धार्मिक उन्नति भी बहुत कुछ हुई। सम्राट् अशोक की ही तरह महाराज कनिष्क ने भी विदेशो में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये कई प्रचारकों को भेजा था।

पर, बौद्ध धर्म का इतना अधिक सम्मान होने से इस समय उसमें एक भयंकर दोष उत्पन्न हो गया था। बौद्ध श्रमणों की इतनी प्रतिष्ठा होते देखकर कई स्वार्थी और ढोंगी लोग भी वही प्रतिष्ठा और सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये श्रमण वेश धारण करने लग गये थे। ये लोग इस पवित्र वेश की आड़ में मनमाने अत्याचार और व्यभिचार करते थे। ये लोग स्थान २ पर सैकड़ों की तादाद में पाये जाने लगे थे। स्थान २ पर इनके अड्डे बने हुए थे जिनमे बैठ कर ये लोग तरह २ के षड्यन्त्र किया करते थे। कोई पाप ऐसा नही रह गया था, जो इन पाखंडियो से सम्पन्न न होता हो। मतलब यह कि, इन पाखंडियों के पाखण्ड से बुद्ध धर्म के समान पवित्र धर्म भी उस समय कलंकित होने लग गया था। वे सब उच्च सिद्धान्त प्रायः नष्ट हो चुके थे जिनको महात्मा बुद्ध ने ईजाद किया था। उनके स्थान पर इन पाखंडियो के द्वारा रचे हुए मनमाने सिद्धान्त प्रचारित होने लग गये थे। जिनके कारण कई निष्पक्षपात लोगों को तत्कालीन बौद्ध धर्म से घृणा होने लग गई थी। वे उसके विरोधी हो गये थे। इधर अवकाश पाकर—वैदिक धर्म का मृतप्राय पौधा पुनः धीरे २ संजीवित हो रहा था। उसके भी अनुयायी बढ़ते जा रहे थे। कई राजा भी

तत्कालीन बौद्ध-धर्म के विरोधी हो चले थे। स्वयं सम्राट् समुद्रगुप्त वैदिक मतावलम्बी थे। यही कारण था कि बहुत से बौद्ध उन हिंदू राजाओं और उनके शासन के विरोधी हो गये थे। तात्पर्य्य यह कि, उस समय बौद्ध धर्म का प्राधान्य अवश्य था पर उसमे पतन का कीड़ा घुस चुका था।

सम्राट् समुद्रगुप्त का राज्यारोहण

देश की ऐसी नाजुक परिस्थिति के बीच कई ऊँची २ महात्वाकांक्षाओं को लेकर सम्राट् समुद्रगुप्त ईसवी सन् ३२८ में अपने पिता प्रथम चन्द्रगुप्त के सिंहासन पर आसीन हुए। समुद्रगुप्त में बहुत से विशेष गुण ऐसे थे, जो सब लोगों में नहीं पाये जाते। वे एक बहादुर निर्भीक और साहसी योद्धा थे। अपने ही पराक्रम से उन्होंने चन्द्रगुप्त के छोटे राज्य को एक महा साम्राज्य के रूप में बदल दिया। उनके समय के कई सोने चान्दी के सिक्के जो कई प्रकार के हैं हाल ही में उपलब्ध हुए हैं। एक सिक्के में वे भाला लेकर बहादुरी के वेष में खड़े हुए हैं। उस सिक्के पर लिखा है—

"समरशत वितत विजयो "जितरिपुरजितोदिवंजयति" अर्थात् सैकड़ों युद्धों में विजय पानेवाला, शत्रुओं को जीतने वाला और दूसरों से न जीता जाने वाला महाराज समुद्रगुप्त स्वर्ग को जीतता है।

एक सिक्के में वे धनुष बाण लेकर खड़े हुए हैं उस पर लिखा है—

"समुद्रगुप्तो देवो विजिता वनिर प्रति रथो
विजित्य क्षितीम वजित्य ।"

सिक्कों पर लिखे हुए इन शब्दों से सहज ही जाना जा सकता है कि, सम्राट् समुद्रगुप्त कितने बड़े योद्धा और रण नीति कुशल थे। उनका सारा जीवन ही युद्धों में एवम् साम्राज्य का विस्तार करने मे गया। एक भी युद्ध ऐसा नहीं हुआ जिसमें समुद्रगुप्त पराजित हुए हो।

इसके अतिरिक्त सङ्गीत विद्या में एवं काव्य रचना में भी सम्राट् ने कमाल हासिल किया था। एक प्रकार के सिक्के ऐसे भी उपलब्ध हुए हैं जिनमें सम्राट् समुद्रगुप्त एक आराम पीठ पर बैठे हुए एक प्रकार का वाद्य बजा रहे हैं। नीचे बड़ा बाजठ है, उसके सामने "सि" शब्द लिखा हुआ है। मुद्रा के कोने पर "महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त" ऐसा लिखा हुआ है। मुद्रा की दूसरी बाजू देवी (लक्ष्मी) अपने बायें हाथ में पाश और दाहिने हाथ मे रणसिगा लेकर बैठी हुई है। मुद्रा के कोने पर "समुद्रगुप्त" लिखा हुआ है। कहने का मतलब यह कि वे सङ्गीत विद्या के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि, अपने जीवन काल में उन्होंने बहुत से उत्तम काव्यों की भी रचना की थी, पर खेद है कि, उनमें से एक भी ग्रन्थ काल के दुर्दान्त पंजे से न बच सका। हरिषेण के शिला लेख में लिखा है कि नारद तुम्बरु आदि के समान सम्राट् समुद्रगुप्त भी संगीत शास्त्र के ज्ञाता थे।

सम्राट् समुद्रगुप्त बहादुर थे—संगीत विद्या विशारद थे—कवि थे और साथ ही साथ कर्मशील एवम् महत्वाकांक्षाओं

युक्त थे। यही कारण था कि, उन्होंने अपने जीवन काल में चन्द्रगुप्त और अशोक की ही तरह सफलता प्राप्त की। मौर्य्य युग की ही तरह उन्होंने भी भारत में एक स्वर्णयुग उपस्थित कर दिया।

सम्राट् समुद्रगुप्त की शासन-पद्धति किस प्रकार की थी, उनकी नीति किस ढङ्ग की थी, आदि प्रश्नों के उत्तर मे इतिहास अभी तक चुप है। उनके समय मे न तो कोई ऐसा विदेशी यात्री आया, जिसने अपने विवरण मे ये बातें लिखी हो और न कोई दूसरे प्रमाण ही उपलब्ध हैं। केवल दो, तीन, शिलालेख और कुछ सिक्के ऐसे उपलब्ध हुए हैं जिनसे उनके जीवन का, और उनके शासन का कुछ पता चलता है। नीचे लिखे शिलालेख आदि अभी तक उपलब्ध हुए हैं।

(१) हरिषेण कवि का शिलालेख—यह शिलालेख समुद्रगुप्त के जीवित काल में ही खुदवाया गया था। प्रयाग से पश्चिम दिशा में चौदह कोस पर कौशाम्बी नगर में यह लेख मिला है जहाँ से वह स्तम्भ लाकर इलाहाबाद के किले मे खड़ा किया गया है। समुद्रगुप्त से सम्बन्ध रखने वाली इसमें ३३ पंक्तियां हैं जिन में से १० पद्यात्मक और शेष गद्य हैं।

(२) मध्यप्रान्त के सागर जिले में बीना नदी के किनारे पर "एरण" नामक एक ग्राम है, वहां पर सन १८७६ में लाल रङ्ग का एक चौकोर पत्थर प्राप्त हुआ है। वह पत्थर इस समय कलकत्ता के अजायबघर में रक्खा गया है। इस पत्थर पर समुद्रगुप्त के नाम का एक शिलालेख खुदा हुआ है।

(३) बिहार के गया शहर मे सन् १८८३ मे एक ताम्र-पत्र, मिला है। यह भी समुद्रगुप्त के नाम का है। ईस्वी सन् ३२९ की वैशाख मास की दसवीं तिथि मे सम्राट् ने "रेवतिका"† नामक ग्राम किसी ब्राह्मण को दान किया था। उसी का यह ताम्रपत्र है। इस ताम्रपत्र में समुद्रगुप्त की सारी वंशावली अङ्कित है। सम्पूर्ण ताम्रपत्र संस्कृत गद्य मे लिखा हुआ है—

उपरोक्त आधारो के बल पर समुद्रगुप्त के राज्यशासन पर जितना भी प्रकाश पड़ सकता है, उतना डालने की हम आगे कोशिश करेगे।

सम्राट् समुद्रगुप्त की चढ़ाइयां

हरिषेण कवि ने अपने लेख में सम्राट् समुद्रगुप्त की चढ़ाइयों का वर्णन किया है। पाठको की जानकारी के निमित्त हम हरिषेण कवि का वह शिलालेख ज्यो का त्यो नीचे उद्धृत कर देते हैं। उसमे शुरु २ के करीब १५ श्लोको का कुछ अंश नष्ट हो गया है। इसलिये उनको छोड़कर १६ वे पद्य से हमारा उद्धरण आरम्भ होता है।

(१६) अध्येयः सूक्तमार्गः कविमतिविभवोत्सारणं चापि काव्यं को नु स्याद्यो स न स्याद्गुण मतिविदुषां ध्यान पात्रं य एक.।

(१७) तस्य विविध समरशतावतरणदक्षस्य स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धो.—पराक्रमांकस्य परशु शरशङ्कुशक्तिप्रासासितोमर

(१८) भिण्डिपालनाराचवैतस्तिकाद्यनेकप्रहरणविरूढा कुल व्रण शताङ्क शोभासमुदयोपचित कांततरवर्ष्मणः ।।

---

† यह ताम्रपत्र जाली है।

(१९) कौशलक महेन्द्र महाकांतारक व्याघ्रराज कौशलक मंटराज पष्टैपुरक महेन्द्र गिरिकौट्टरक स्वामिदत्तैरंड पल्लदयन काञ्चै-यक विष्णु गोपावमुक्तक—

(२०) नीलराज वैंगेयक हस्तिवर्म्मा पालक्क वेग्रसेन दैवराष्ट्रक कुबेर कौस्थल पुरक धनंजय प्रभृति सर्व दक्षिणापथ राजग्रहण मोक्षानुग्रह जनित प्रतापोन्मिश्र महाभागस्य

(२१) रुद्रदत्त मसिल नागदत्त चन्द्रवर्म्मा गणपति नाग नागसेनाच्युत नन्दिबल वर्म्माघनेक कार्य्यावर्त राजप्रसमोद्धरणो द्वृत्त प्रभावमहत. परिचारकी कृत सर्व्वाटविक राजस्य

(२२) समतट दवाक कामरूप नेपाल कर्तृपुरादि प्रत्यंत नृपतिभिर्मालवार्जुनीय नयौधेयमाद्रका भीर प्रार्जुन सनकानीका कपर परिकादिभिश्च सर्वकर दानाज्ञा करण प्रणामागमन—

(२३) परितोषित प्रचण्ड शासनस्य अनेकभ्रष्ट राज्योत्सन्न राजवंश प्रतिष्ठापनोद्भूत-निखिलभ न विचरणशान्तयशसः दैवपुत्र शाहिशाहानुशाहि शक मुरुण्डै सैहल कादिभिश्च।

(२४) सर्व्वद्वीप वासि भिरात्म निवेदन कन्योपायन दान [illegible] स्वविषय भुक्ति शासन चनाद्युपाय सेवाकृत बाहुवीर्य्य [illegible] धरणि बन्धस्य [illegible]भिन्याम प्रतिरथस्य।

(२५) सुचरित शतालंकृतानेक गुण-गणोत्सिक्तिभिश्चरणतल [illegible] नरपति कीर्ते-साध्व साधूदय प्रलयेसतु पुरुपस्य चिन्त्स-[illegible] भक्ति [illegible] मृदुहृदय स्यानुकम्पावतोऽनेक गोशत [illegible]।

(२६) [illegible] सुकलोद्धरणस (म) न्यदाचानुप-[illegible] [illegible] लोकानुग्रहस्य [illegible]

समस्य स्वभुजबल विजितानेक नरपति विभव प्रत्यर्पणानित्य व्यापृता युक्त पुरुषस्य

(२७) निषित विदग्ध मति गांधर्व ललितैर्व्रीडित त्रिदशपति गुरुतुम्बुरुनारदादेविद्वज्जनोपजीव्यानेक काव्य क्रियाभिः प्रतिष्ठित कविराजशद्बस्य सुचिरस्तोत व्यानेकाद्भूतोदार चरितस्य।

(२८) लोकसमय क्रियानुफानमात्र मानुषस्य लोक धाम्नो देवस्य महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य

(२९) लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्या मुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य सर्व्वपृथिवी विजय जनितोदय व्याप्त निखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशयगी

(३०। भवनगमनावाप्त ललित सुखविचरणा मात्रचाण इव भुवो वहुरय मुच्छितः स्तम्भयस्य। प्रदानभुजविक्रम प्रशमशास्त्र वाक्योदयैरुपर्युपरिसञ्जयोच्छ्रितमनेक मार्गयश.

(३१) पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्जटान्तर्गुहा निरोध परिमोक्ष शीत्रभिव पाण्डुगाङ्गय। एतच्च काव्यमेपामेव भट्टारक पापानां दासस्य समपि परिसर्पणा नुग्रहोन्मीलित मतेः।

(३२) खाघट पाकिकस्य महादण्ड नायक ध्रुवभूति पुत्रस्य सन्धि विग्रहहिक कुमारामात्यमक हरिपेणस्य सर्व्वभूतहित सुखायास्तु।

इस लेख से पता चलता है कि, हरिपेण कवि ने टसम्रा समुद्रगुप्त की चढ़ाइयो को छः भागों में विभक्त कर दिया है। यथा—

समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त (नर्मदा नदी के उत्तर का हिन्दुस्थान)

के तमाम राजाओं को निकाल दिया। इन सब राजाओं मे से कवि ने उपरोक्त शिलालेख मे नौ राजाओं के नामो का उल्लेख किया है। (१) रुद्रदेव (२) मतिल (३) नागदत्त (४) चन्द्र-वर्मन (५) गणपतिनाग (६) नागसेन (७) अच्युत (८) नन्दिन (९) बलवर्मन। इन नौ राजाओं में रुद्रदेव, मतिल, नन्दिन और बलवर्मन, इन चार राजाओं का इतिहास अभी तक उपलब्ध न हुआ। शेष पांच राजाओं मे से गणपतिनाग नागवंश में उत्पन्न हुआ था। इस वंश की राजधानी ग्वालियर और झांसी के बीच मे पद्मावती (पेहोवा) नामक नगरी मे थी। नागदत्त दत्तवंश मे उत्पन्न हुआ था। शायद रामदत्त और पुरुषदत्त भी इसी के वंश मे हुए होंगे। इन लोगों के सिक्के देखने मे क्षत्रप लोगों के सिक्कों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। नागसेन मतवंश का राजा था। इस वंश में पहले वीरसेन नामक एक और प्रसिद्ध राजा हो गया है। इस वंश के सिक्के वागच्य प्रान्तों मे बहुतायत से मिलते हैं। अच्युत अहिच्छत्र का राजा था। बरेली प्रान्त में आंवला के पास जो रामनगर बसा हुआ है, इसी को प्राचीन काल में अहिच्छत्र कहते थे। इसको सम्राट् समुद्रगुप्त ने परास्त कर अपने आधीन किया था।

होगा। क्योंकि नर्मदा के उत्तर बुन्देलखण्ड और गौंड़ादि में अभी भी बहुत भयङ्कर अरण्य है।

(३) तीसरे विभाग का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि, "दक्षिण के अनेक राजाओं को पकड़ २ कर सम्राट् ने छोड़ दिया। उनमें से कौशल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, करेल के मन्तराज, पिष्टपुर के महेन्द्रगिरी, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल के दमन, काची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मन, पालक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुवेर, कुस्थल-पुर के धनञ्जय आदि लोगों के नाम कवि ने बतलाए हैं—

(४) सरहद्द के पांच राजाओ से सम्राट् समुद्रगुप्त ने सम्मान और कर प्राप्त किया था। इन पांच राजाओ के राज्यों के नाम ये हैं। (१) समतट (२) दपाक (३) कामरूप (४) नैपाल (५) कर्तृपुर।

समतट से कवि का मतलब उसी प्रान्त से है जिसमे आज-कल कलकत्ता और ढाका बसे हुए हैं। दवाक से शायद दिना-जपुर के आसपास के प्रान्त का मतलब हो। कामरूप शब्द आसाम के कुछ अंश के लिए प्रयुक्त किया होगा। नैपाल के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता ही नही। कर्तृपुर का अभीतक कुछ पता नहीं लगा। पर कुछ ऐतिहासिक लोग अल्मोडा, गढ़-वाल, कुमाऊं आदि विभाग को कर्तृपुर के लिए सन्देह करते हैं।

(५) पांचवें विभाग मे कवि ने उन जातियों के नाम दिये हैं जो सरहद्द पर बसती थीं, और जिन्हे समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। मालव, अर्जुनायन, यौद्धेय, माद्रक, आमीर, प्रार्जुन,

सनकानिक, काक खरपरिक आदि नौ जातियों की नामावली कवि ने अपने लेख मे बतलाई हैं।

(६) दूर देशो में बसने वाली पांच जातियो से एवं सिहल द्वीप निवासियों से सम्राट् ने सम्मान और सेवाएं ग्रहण की-थीं। इन पांच जातियों का अलग २ वर्णन करते हुए शिला-लेख मे उन्होंने यह भी लिखा है कि, समुद्रगुप्त को देवपुत्रो ने, शाहिओ ने, शहानुशाहिओ ने, शकों ने, मरुण्डों ने तथा सिंहलों ने भी सिर झुकाया था।

उपरोक्त उदाहरणों को उद्धृत करने का मतलब यह है कि, हम लोग समुद्रगुप्त के राज्य का अनुमान कर सकें। वास्तव में देखा जाय तो समुद्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार मौर्य्य साम्राज्य से भी कुछ अधिक हो गया था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी समुद्रगुप्त ने प्राप्त कर लिया था। कई देशों में उसके दूत जाते आते थे। सिंहलद्वीप से भी समुद्रगुप्त का सम्बन्ध सन् ३६० से हो गया था। सिंहलद्वीप के तत्कालीन राजा का नाम मेघवर्ण था। वह बुद्धधर्म्म का उपासक था। उसने बुद्धगया का दर्शन करने के लिए अपने यहां से दो सन्यासियों को भेजा था।

होगा। क्योंकि नर्मदा के उत्तर बुन्देलखण्ड और गौंडादि में अभी भी बहुत भयङ्कर अरण्य है।

(३) तीसरे विभाग का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि, "दक्षिण के अनेक राजाओं को पकड़ २ कर सम्राट् ने छोड़ दिया। उनमे से कौशल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, करेल के मन्तराज, पिष्टपुर के महेन्द्रगिरी, कोट्टुर के स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मन, पालक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुवेर, कुस्थल-पुर के धनञ्जय आदि लोगों के नाम कवि ने बतलाए हैं—

(४) सरहद्द के पांच राजाओ से सम्राट् समुद्रगुप्त ने सम्मान और कर प्राप्त किया था। इन पांच राजाओ के राज्यो के नाम ये हैं। (१) समतट (२) दवाक (३) कामरूप (४) नैपाल (५) कर्तृपुर।

समतट से कवि का मतलब उसी प्रान्त से है जिसमे आज-कल कलकत्ता और ढाका बसे हुए हैं। दवाक से शायद् दिना-जपुर के आसपास के प्रान्त का मतलब हो। कामरूप शब्द आसाम के कुछ अंश के लिए प्रयुक्त किया होगा। नैपाल के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं। कर्तृपुर का अभीतक कुछ पता नहीं लगा। पर कुछ ऐतिहासिक लोग अल्मोडा, गढ़-वाल, कुमाऊं आदि विभाग को कर्तृपुर के लिए सन्देह करते हैं।

(५) पांचवें विभाग मे कवि ने उन जातियों के नाम दिये हैं जो सरहद्द पर बसती थीं, और जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। मालव, अर्जुनायन, यौद्धेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन,

सनकानिक, काक खरपरिक आदि नौ जातियों की नामावली कवि ने अपने लेख में बतलाई हैं।

(६) दूर देशो में बसने वाली पांच जातियों से एवं सिहल द्वीप निवासियों से सम्राट् ने सम्मान और सेवाएं ग्रहण की-थी। इन पांच जातियो का अलग २ वर्णन करते हुए शिला-लेख में उन्होने यह भी लिखा है कि, समुद्रगुप्त को देवपुत्रो ने, शाहिओ ने, शहानुशाहिओ ने, शको ने, मरुण्डो ने तथा सिंहलों ने भी सिर झुकाया था।

उपरोक्त उदाहरणो को उद्धृत करने का मतलब यह है कि, हम लोग समुद्रगुप्त के राज्य का अनुमान कर सकें। वास्तव में देखा जाय तो समुद्रगुप्त के साम्राज्य का विस्तार मौर्य्य साम्राज्य से भी कुछ अधिक हो गया था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी समुद्रगुप्त ने वहुत कर लिया था। कई देशों में उसके दूत जाते आते थे। सिंहलद्वीप से भी समुद्रगुप्त का सम्बन्ध सन् ३६० में हो गया था। सिंहलद्वीप के तत्कालीन राजा का नाम मेघवर्ण था। वह बुद्धधर्म्म का उपासक था। उसने बुद्धगया का दर्शन करने के लिए अपने यहां से दो सन्यासियों को भेजा था। सम्राट् समुद्रगुप्त वैष्णव मतावलम्बी थे, अतः सम्भव है उस समय बुद्धगया में अतिथि सत्कार का उचित प्रवन्ध न होगा। वे दोनों संन्यासी इस अप्रबन्ध से नाराज होकर वापस सिंहल गये और वहां के राजा से यह सब हाल कहा। मेघवर्ण ने यह सवाद सुन कर उस स्थान पर एक मठ बनवाने का विचार किया। उसने कुछ सोने के थाल भर कर समुद्रगुप्त के दरबार में भेजे, और भारतवर्ष में मठ बनवाने की आज्ञा मांगी। सम्राट्

ने प्रसन्न चित्त होकर उन्हे आज्ञा दी। तत्काल ही बुद्धगया के समीप उसने एक बड़ा सुन्दर और मजबूत मठ बनवाया। आज वह सुन्दर मठ काल के अनन्त गाल मे विश्राम कर रहा है।

समुद्रगुप्त ने अपने ४५ वर्ष के राज्यकाल मे अपनी सत्ता का इतना विस्तार किया। हिमालय से लेकर नर्मदा के दक्षिण तक और हुगली से लेकर चम्बल तक उसके राज्य का विस्तार हो गया था। अतिरिक्त इसके आसाम और हिमालय के दक्षिण भाग के राज्यों ने एवं मालवा और राजपूताने की जातियो ने भी उसके आधिपत्य को स्वीकार किया था। उत्तर-हिन्द के नौ राज्यो, विन्ध्य-पर्वत-वासिनी जातियों, और दक्षिण-हिन्द के बारह राज्यो ने भी उसे सम्राट् स्वीकार किया था।

इतना सार्वभौम साम्राज्य स्थापित कर लेने के पश्चात् प्राचीन नियमानुसार समुद्रगुप्त ने भी अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। शीघ्र ही एक अश्व की पूजा वगैरह करके उसे छोड़ा। साल भर तक सारे हिन्दुस्थान मे वह अश्व विचरण करता रहा। जब किसी ने उसको नही पकड़ा, तब आनन्दपूर्वक यज्ञ को समाप्त किया। उस यज्ञ में लाखो सोने के सिक्के ब्राह्मणो को बांटे गये थे। उनमें से कुछ सिक्के अभी प्राप्त हुए हैं। उन सिक्कों में एक ओर रानी दाहिने हाथ में चंवर लिये हुए खड़ी है, उस स्थान पर ब्राह्मी अक्षरों में लिखा है "अश्वमेध पराक्रमः" दूसरी ओर अश्वमेध यज्ञ का अश्व अश्वयूप के साथ बन्धा हुआ है उसके पास लिखा है—

"राजाधिराजः पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्यप्रतिवार्य वीर्य."

इस मुद्रा का वज़न १६ माशे के करीब है। अश्वमेधयज्ञ
का काल अनुमानतः ईस्वी सन् ३७० बतलाया जाता है।

समुद्रगुप्त का शासन

यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि, सम्राट् समुद्रगुप्त
पूर्व सम्राटो की तरह बौद्धमतावम्बी नहीं थे। उन्होंने वैष्णव धर्म्म
अंगीकार किया था। फिर भी उनकी शासननीति मे किसी भी
प्रकार का धार्मिक भेदाभेद नहीं पाया जाता था। उनकी शास-
ननीति भी यद्यपि चन्द्रगुप्त और अशोक की ही तरह सुदृढ़ थी,
तथापि उनके काल में बहुत से षड्यन्त्र बड़े गुप्तरूप से चला
करते थे। खास करके अधिकतर षड्यन्त्र पाखण्डी बौद्ध-भिक्षुओं
के कारण ही हुआ करते थे। इतना होने पर भी उनके सुसङ्ग-
ठित शासन मे प्रजा के अंदर पूर्ण शान्ति थी। चन्द्रगुप्त की ही
तरह उन्होंने भी सारे देश को एक सूत्र में बांध दिया था, जिससे
देश में एक सङ्गठित शक्ति नज़र आने लगी थी।

सम्राट् समुद्रगुप्त के समय में राज्य-अमात्यों की बहुत ही
इज़्ज़त थी। उस समय राज्याधिकारियो के पीछे जो विशेषण
लगाये जाते थे, उन्हे हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

सम्राट्—परम वैष्णव परम माहेश्वर परम भट्टारक,
महाराजाधिराज।

प्रधान सेनापति—"महा बलाधि कृत"

प्रधान न्यायाधीश—'महादण्ड नायक"

प्रधान धर्माधिकारी—"महाधर्माधिकृत"

इत्यादि। ये सब अधिकारी लोग गुप्त मंत्रणागृह मे जा

सकते थे। कहा जाता है कि जिस समय कोई गुप्त बात पर विचार करना होता था उस समय नियत मंत्रणागृह मे ये लोग एकत्रित हो जाते थे। मंत्रणागृह के आस पास गूँगे और बहरे सैनिको का पहरा लगता था। वे लोग किसी भी व्यक्ति को वहां नही आने देते थे। इसके अतिरिक्त वे स्वयं भी कुछ सुन और समझ सकने मे असमर्थ थे। इस कारण वहां पर की हुई मंत्रणा बहुत दिनो तक प्रकाश मे नही आती थी।

इसके अतिरिक्त उस समय भी कई प्रकार के भिन्न २ विभाग थे, जिन पर भिन्न २ कर्म्मचारी नियुक्त रहते थे। पर उस सबका सिलसिलेवार वर्णन अभी तक नही मिलता। हां, समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन का सूत्रबद्ध वर्णन फाहियान की यात्रा से संग्रहित हो सकता है। इसका विवेचन हम अगले अध्याय मे कर सकेंगे।

सम्राट् समुद्रगुप्त का स्वर्गवास

अन्त में करीब ५० वर्ष तक राज्य करके गुप्त साम्राज्य का यह उज्वल नक्षत्र सन् ३८० में टूट गया।

मनुष्य अपने चरित्र, अपनी महत्वाकांक्षा, अपने साहस और अपनी बुद्धिमानी के द्वारा कितना ऊँचा उठ सकता है इसका उत्तम उदाहरण सम्राट् समुद्रगुप्त का जीवन है। समुद्रगुप्त के जीवन के द्वारा इतिहास अकर्म्मण्य और निराशावादी लोगों को उलाहना दे रहा है।

सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त

भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास मे सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त का नाम-जिनका उपनाम विक्रमादित्य भी था बड़े गौरव-पूर्ण शब्दो मे लिखा जाता है। आजकल के हिंदू समाज में भी विक्रमादित्य के विषय मे सैकड़ो दन्त कथाएँ कही जाती हैं। क्या शिक्षितो में और क्या अशिक्षितो मे जितना अधिक नाम विक्रमादित्य का प्रचलित है उतना शायद किसी दूसरे सम्राट् का नहीं है। विक्रमादित्य के नाम का संवत्-जो कि ईसा के ५७ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है—आज भी भारत के प्रत्येक घर मे माना जाता है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का काल-निर्णय

आधुनिक पुरातत्ववेत्ताओ में विक्रमादित्य के कालनिर्णय के विषय मे बड़ा मतभेद चल रहा है। विक्रम संवत ईसा से सत्तावन वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है। इस हिसाब से विक्रम संवत् के प्रवर्त्तक विक्रमादित्य का काल अवश्य इसके आसपास का होना चाहिए। पर पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि इस समय का कोई भी शिलालेख व ताम्रपत्र ऐसा नहीं मिलता जिसमें विक्रमादित्य का उल्लेख हो। सबसे पहले डाक्टर [illegible]

ने इस विषय मे एक लेख प्रकाशित किया जो "इंडियन एण्टे-केरी" के कई अंको में लगातार प्रकाशित हुआ। उन्होंने इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि, यह सवत् पहले "मालव-संवत्" के नाम से प्रसिद्ध था, पर पीछे से ईसा की छठवीं शताब्दी मे तत्कालीन राजा यशोधर्मा ने हूणो को पराजित कर उस विजय के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर इस सवत् का नाम विक्रम संवत् कर दिया। इसी प्रकार फ्लीट, हार्नले, बूलर, फर्ग्यूसन आदि विद्वानों ने भी इस सवत् पर नाना प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। पर रायबहादुर सी० वी० चिंता-मणि ने बड़े ही प्रवल प्रमाणों के द्वारा इन सब कल्पनाओं का खण्डन कर यह सिद्ध कर दिया है कि, ईसा के ५७ वर्ष पूर्व भी यहां पर विक्रमादित्य नामक राजा राज्य करता था और उसने तक्षशिला और मथुराके क्षत्रपो (शको) को वड़ी भारी हार देकर शकारि की उपाधि धारण की और उसी उपलक्ष्य मे अपना संवत् भी प्रचलित किया। यद्यपि चिन्तामणि महोदय का यह लेख बहुत प्रवल युक्तियो से परिपूर्ण है तथापि अभी तक यह सर्वमान्य नहीं हुआ है। अभी तक जो मत सर्वमान्य है वह यही है कि, गुप्त वंशीय राजा चन्द्रगुप्त ने ही विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की, और उसीने पहले से चलते आये हुए मालव संवत् को अपना नाम दिया। एवं संसार प्रसिद्ध महाकवि कालिदास भी इसी के समय में मौजूद था। जो कुछ हो, यहा पर हम भी इसी प्रचलित मत के अनुसार द्वितीय चन्द्रगुप्त को ही कालि-दास का समकालीन विक्रमादित्य मानकर आगे की पंक्तियां लिखेंगे।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण

सम्राट् समुद्रगुप्त का स्वर्गारोहण होने के पश्चात् लगभग सन् ३७५ ईस्वी मे उनकी दत्तदेवी नामक सम्राज्ञी से उत्पन्न सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त सिंहासनारूढ़ हुए। चन्द्रगुप्त समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र न थे। लेकिन राज्यकार्य्य मे दक्ष होने के कारण सम्राट् समुद्रगुप्त ने इन्हे ही युवराज चुना था। समुद्रगुप्त का यह चुनाव भविष्य में भारतवर्ष के लिए बहुत ही फल-प्रद हुआ। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने राज्य सिंहासन पर बैठकर मालवा, राजपूताना गुजरात काठियावाड़ और सिन्ध तक को जीता। शक जाति के साथ उनका बहुत भयंकर युद्ध हुआ। जिसमे सम्राट् चन्द्रगुप्त ने शको को बहुत ही बुरी तरह से पराजित किया। शकों का अन्तिम राजा रुद्रसिंह जो पहले सिरे का व्यभिचारी और चरित्र हीन था, चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध करते हुए—सन् ३९० के लगभग मारा गया।

सम्राट् चन्द्रगुप्त और अन्तर्राष्ट्रीय संबंध

अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य की सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रम के समय में बहुत अधिक उन्नति हुई। उस जमाने में उज्जैन व्यापार का एक प्रधान केन्द्रस्थल माना जाता था। पश्चिमी तट के प्रायः सभी बन्दरगाहों से उसका व्यापारिक संबंध था। चन्द्रगुप्त के राज्य में उज्जैन के सम्मिलित हो जाने से सारा साम्राज्य बहुत समृद्ध होने लग गया था। जावा, सुमात्रा से भी व्यापारिक संबंध जारी था। व्यापारिक सम्बन्ध के अतिरिक्त दूसरी प्रकार

के सम्बन्ध भी चन्द्रगुप्त के समय मे जारी हो गये थे। जिनमें विचार-विनिमय का सम्बन्ध बहुत प्रचुरता से होता था। भारतवर्षीय हिदू सम्राटो के इतिहास मे सम्भवतः यह पहला ही अवसर था जब कि, भारतवर्ष और दूसरे देशो के बीच मे स्वतन्त्रता पूर्वक बड़े २ विद्वान पर्य्यटको के विचारो का विनिमय हुआ हो, सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यहां से प्रसिद्ध विद्वान पर्य्यटक "कुमारजीव" को सन् ३८३ मे चीन भेजा। इसके सिवाय भी समय २ पर यहां से कई लोग व्यापार और विचार विनिमय के लिए चीन और दूसरे देशों मे गये। इसी प्रकार दूसरे देशो के पर्य्यटक भी इस देश मे व्यापार करने अथवा धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए आये, जिससे चीनी यात्री फाहियान का नाम विशेप प्रसिद्ध है। यह वह समय था जिसमे सारे ससार के अन्तर्गत भारतीय सभ्यता का जयजयकार हो रहा था। जावा, सुमात्रा और वोर्नियो आदि मे भी उस समय भारतीय सभ्यता का डंका वज रहा था। वहा के अधिवासियो ने न केवल वौद्ध धर्म को ही ग्रहण किया प्रत्युत यहां की बहुत सी शिल्प और ललित कलाओ को भी अपने देशो मे प्रचारित किया था।

रोम के साथ भी उस समय भारतवर्ष का व्यापार जोरो मे चल रहा था। कुछ समय हुआ दक्षिण मे बहुत सी रोमन स्वर्ण मुद्राएं उस समय.की मिली हैं। इनसे पता चलता है कि, उस समय रोम और भारत का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बहुत ही गहरा था। और बाहर से बहुतसा द्रव्य सिक्को के रूप में यहां पर आता था।

साहित्य की उन्नति

यद्यपि सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के पहले भी भारतवर्ष के अन्दर कई सम्राट् ऐसे हो गये है जिन्होने अपने अलौकिक सुकृत्यों से संसार के इतिहास में नाम कमाया है, और जिनके काल मे भारतवर्ष ने सभी विषयो मे आशातीत तरक्की की थी। पर, इतना होने पर सम्भवतः दूसरे विषयो की तरह इन सम्राटो के काल में साहित्य की इतनी उन्नति नहीं हुई थी। यद्यपि बौद्धों के प्रचुर साहित्य ने उस समय भी वहुत तरक्की करली थी. तथापि वह प्रसिद्ध साहित्य जो आज भी संसार की आंखों मे चकाचौंधी पैदा कर रहा है, गुप्तवंशी सम्राटो के समय में ही निर्मित हुआ था। गुप्त राजाओं के शासन काल मे यहां के साहित्य, विज्ञान और शिल्प कलाओंने आशातीत उन्नति की। इसीलिए भारतवर्ष के इतिहास में गुप्त राजाओ का काल, यूनान के इतिहास मे पैरोक्लीज के काल के समान माना जाता है।

जिस कालिदास को आजकल के विद्वान भारतवर्ष का शेक्सपीयर कहकर सम्बोधन करते है, जिस कालिदास को लोग कविकुल गुरु की उपाधि से अलंकृत करते है, जिस कालिदास की रचनाओं को देखकर आज भी यूरोप के विद्वान दान्तों तले उँगली दबाते हैं और जिस कालिदास के निर्माण किये हुए शकुन्तला नाटक का अध्ययन कर जर्मन महाकवि गेटे नाच उठे हैं उस महाकवि कालिदास का अस्तित्व भी द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में ही माना जाता है। इसी काल मे गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र की भी चरमोन्नति हुई। कहने का मतलब यह कि, साहित्यिक दृष्टि से भारतवर्ष के इतिहास मे चन्द्रगुप्त

का काल अद्वितीय है। स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त अद्भुत विद्या प्रेमी थे। वे कवियो का अत्यन्त सत्कार करते थे। कहा जाता है कि इनकी सभा मे कालिदासादिक नौरत्न हमेशा उपस्थित रहते थे जिनका सहस्रो रुपयो का व्यय उन्हें उठाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त बाहर के दूसरे विद्वान भी उनके कोष से अपनी वृत्तियो के बदले मे लाखो रुपये पाते थे।

इसके अतिरिक्त सङ्गीत, स्थापत्य, चित्र और आलेख्य विद्याओ ने भी इस काल में बहुत उन्नति की। यद्यपि दुष्ट काल के कुचक्र मे पड़कर उस समय की बहुतसी कारीगरी नष्ट भ्रष्ट हो चुकी है, फिर भी जो कुछ इस समय प्राप्त है वह उस समय के गौरव की सूचना दे रहा है। देवगढ़ के मन्दिर की चित्रकारी आज भी दर्शको के मन मुग्ध कर देती है। सुलतानगज की मूर्ति जो ऊंचाई मे साढ़े सात फुट है और अब बिरदीम के अजायबघर की शोभा बढा रही है द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय मे बनवाई गई थी। अजन्ता की गुफाओ के आलोक और चित्रकारी-जो चंद्रगुप्त के राज्यकाल के समय के आस पास मे बनाई गई थी—भी इतनी उच्चकोटि की है कि संसार के दूर २ देशो के चित्रकार उन्हें देखने के लिये आते है और मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशसा करते है। मतलब यह कि, द्वितीय चन्द्रगुप्त के राज्यकाल मे भारत के साहित्य, विज्ञान और ललित कलाओं ने बहुत उन्नति की थी।

द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में धार्मिक स्थिति।

सम्राट् समुद्रगुप्त की जीवनी मे हम लिख आये है कि गुप्तवंशी सभी सम्राट् वैष्णव धर्मावलम्बी थे। पर वैष्णव मता-

वलम्बी होने पर भी-इन लोगो की दूसरे धर्मों के साथ कोई शत्रुता न थी। सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय मे भी समुद्र-गुप्त के समय की ही तरह यद्यपि बौद्ध धर्म का ही प्राधान्य था, तथापि वैदिक धर्म्म भी इस समय बहुत शीघ्रता के साथ उन्नति कर रहा था। वैदिक धर्म्म की इस उन्नति का एक बहुत ही गूढ़ कारण था। वह यह कि, वैदिक धर्म्म ने दबे छुपे बौद्ध-धर्म्म के प्रायः उन सभी लोकप्रिय सिद्धातो को अङ्गीकार कर लिया था जिन्हे जनता बहुत चाहती थी। यहां तक कि, वेद धर्मावलम्बी लोग स्वय बुद्धदेव को ही परमात्मा का एक अवतार मानने लग गये थे। फल यह हुआ कि, वैदिक धर्म्म मे सभी लोकप्रिय सिद्धान्तो के आजाने से जनता की रुचि उस धर्म्म की ओर प्रवृत होने लगी। जिसमे बौद्ध-धर्म्म का अवपात और वैदिक धर्म्म का पुनरुदय होने लगा।

जीवन निर्वाह की सुलभता।

सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय के कुछ लेख ऐसे भी मिले है, जिनसे पता चलता है कि, उस समय के साधारण जीवन निर्वाह मे कितना व्यय होता था।

इस ढङ्ग का एक लेख गढ़वा से मिला है। उसमे पता चलता है कि, उस समय दस 'दीनारों' के व्याज से एक आदमी का प्रति दिन का व्यय चल सकता था।

इसके अतिरिक्त गुप्त संवत् ९३ अर्थात् ईस्वी संवत् ४१२ का एक लेख इस आशय का मिला है।

"पांचबीसी अर्थात् सौ दीनारें दी जाती हैं। उनमे से आधी दीनारों से महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के सब गुणों की पूर्त्ति के निमित्त जब तक सूर्य्य और चन्द्रमा रहें तब तक पांच भिक्षु भोजन करते रहे। और बुद्ध भगवान् के रत्नगृह में एक दीपक जले। तथा बाकी की आधी अर्थात् शेष ५० दीनारो से भी पांच भिक्षु भोजन करें। और रत्नगृह मे दीपक जले।

इससे पता चलता है कि, दस दीनारो के व्याज से जो प्राप्ति होती थी, उससे एक भिक्षुक का भोजन खर्च मजे मे चल सकता था। अब प्रश्न यह होता है कि उस समय व्याज की दर क्या थी? पण्डित हरि रामचन्द्र दिवेकर ने दक्षिण के शालिवाहन लोगों के शिलालेखो के आधार से सिद्ध किया है कि, उस काल में व्याज की दर ५) से ७॥) तक प्रतिशत के हिसाब से थी। अतः औसतन यदि हम ६) प्रतिशत व्याज की दर मान ले, तो यह सिद्ध होता है कि, दो आदमियो के एक साल के भोजन और दो दीपकों के एक साल के तैल का मूल्य छः "दीनार" था। अब हमे देखना यह है कि, दीनार का उस समय क्या मूल्य था। उस समय की दीनार मे करीब आठ मासे सोना रहता था, और एक तोला सोने के बदले में उस समय १० तोला चान्दी आती थी। इस हिसाब से छः दीनारो के बदले मे करीब ४० तोला चान्दी होती है। अब हम यदि प्रत्येक व्यक्ति के नित्य के भोजन मे कम से कम आध सेर आटा, और छटांक भर घी ही समझलें तो दो मनुष्यों के लिए साल भर मे नौ मन आटा, पैंतालीस सेर घृत, और सवा दो मन दाल होती है। इसके अतिरिक्त यदि हम प्रत्येक दीपक में आध पाव तेल का

प्रतिदिन जलना मानले तो करीब ढाई मन तेल भी होना चाहिए।
इस प्रकार कम से कम—

४० तोला चान्दी के बदले मे	नौ मनं गेहूँ, पैतालीस सेर घी ढाई मन तैल और सवा दो मन दाल आती थी।

सम्भव है यह हिसाब गलत भी हो। क्योंकि, यह केवल हमारा क्षुद्र अनुमान है। एक लेखक ने उपरोक्त लेखो मे ही हिसाब लगाकर सिद्ध किया है कि, उस समय ।=)।। का सवा मन तेल आता था।

कुछ भी हो पर इसमे सन्देह नहीं कि, उस समय जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ बहुत ही सुलभ थीं।

सम्राट् चन्द्रगुप्त का शासन

सम्राट् चन्द्रगुप्त का शासनकाल भारतवर्ष के लिए बहुत मधुर था। सम्राट् समुद्रगुप्त और अशोक की अपेक्षा भी इस समय के शासनकाल में बहुत मधुरता आगई थी। चारों ओर शान्ति छाई हुई थी, न कोई किसी पर अत्याचार करता था। न कोई किसी के अत्याचार सहता था। अपराधों की संख्या मौर्य्य कालीन समय से भी अब बहुत घट गई थी। सब से बड़ी विशेषता जो इस काल की शासन नीति में हुई यह यह थी कि, मौर्य्य साम्राज्य की अपेक्षा गुप्त साम्राज्य का दण्ड विधान बहुत ही कोमल हो गया था। अब उन भयङ्कर दण्डों में से एक का भी उपयोग नहीं किया जाता था जो मौर्य्य साम्राज्य के समय में प्रयुक्त होते थे। दण्डविधान भी इस

कोमलता के लिए गुप्त साम्राज्य की प्रशंसा करते हुए एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक लिखते हैं—

"ऐसा प्रतीत होता है कि, इस विषय मे गुप्तवंश पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। जिस बात का कलङ्क अशोक के समान कोमल हृदय, दयावान और लोकप्रिय शासक पर भी रह गया था उसको गुप्त राजाओं ने दूर कर दिया। जो राज्य प्रजा की बातों मे बहुत अधिक हस्तक्षेप करता है वह कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सकता। लोगों को दीर्घ काल के लिए बन्दी रखना अथवा मृत्यु दण्ड देना सभ्यता का चिह्न नहीं। इस दृष्टि से गुप्त राजाओं का शासनकाल भारतवर्ष मे सब से उत्तम और अनुकरणीय काल हो चुका है। इतना कोमल दण्डविधान होने पर भी देश का प्रबन्ध उतना ही उत्तम था जितना मौर्य्य काल मे।"

फाहियान की भारतयात्रा

हम ऊपर लिख आए है कि, सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय मे कई चीनी पर्यटक भारतवर्ष मे आये थे। उनमे से फाहियान का नाम सब से अधिक प्रसिद्ध है। उसने अपनी यात्रा के वर्णन में एक ग्रन्थ लिखा है। यद्यपि इस ग्रन्थ मे धार्मिक भाव और दन्त कथाएं अधिकतर है, फिर भी उससे भारत की तत्कालीन परिस्थिति को जानने मे बड़ी सहायता मिल सकती है। इसी ग्रन्थ के आधार पर हम संक्षिप्त में उसकी यात्रा का विवरण देते हुए तत्कालीन भारत की परिस्थिति पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं।

ईस्वी सन् ४०० में फाहियान ने "विनय पिटक" (बौद्ध ग्रन्थ) की खोज करने के निमित्त भारतवर्ष की यात्रा की। वह अपना यात्रा-विवरण उद्यान जनपद से प्रारम्भ करता है। उद्यान जनपद सम्भवतः काबुल के आस पास के प्रान्त को कहते हैं। फाहियान उद्यान को उत्तरी भारत का देश कहता है। वह लिखता है "यहाँ के लोग मध्य हिन्दुस्थान की भाषा बोलते हैं। साधारण जनता का खान, पान, मध्य देश का सा ही है। सामान्यतः सर्वत्र बौद्ध धर्म्म का प्रभुत्व है। श्रमणों के रहने के स्थान को "संघाराम" कहते हैं। यहाँ बौद्ध भिक्षुओ के पाँच सौ संघाराम है, सबके सब हीनयानानुयायियों के हैं। अतिथि भिक्षुओं को यहाँ पर तीन दिन तक मुक्त भोजन दिया जाता है" यहाँ से चलकर हमारा यात्री स्वात, गान्धार और तक्षशिला होता हुआ पुरुषपुर अर्थात् पेशावर पहुँचता है। यहाँ पर वह कनिष्क द्वारा निर्मित ऊँचा बौद्ध स्तूप देखकर आश्चर्य्य चकित हो जाता है। उस स्तूप के विषय में वह लिखता है कि "यह स्तूप चार सौ हाथ ऊँचा है। अनेक रत्नो से जटित होने के कारण बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। इस यात्रा में मैंने अनेक स्तूप और मन्दिर देखे पर इतना सुन्दर और भव्य कोई न मिला। कहते हैं कि, जम्बूद्वीप में यह स्तूप सबसे उत्तम है।" पेशावर से नगरहार होता हुआ यह यात्री लोई और पोना जनपद में पहुँचा, इस स्थान पर उसके साथी हेकिंग की मृत्यु होगई. जिससे उसे बहुत दुःख हुआ। यहाँ से पंजाब होता हुआ फाहियान मथुरा पहुँचा। मथुरा का वर्णन करते हुए फाहियान लिखता है:—

"यह नगर यूना (यमुना) नदी के किनारे बसा हुआ है

नदी के दहिने बायें बीस बौद्ध बिहार हैं। जिनमे तीन सहस्र से अधिक बौद्ध भिक्षु रहते हैं। यहाँ पर बौद्ध धर्म्म का बहुत अच्छा प्रचार है। मरुभूमि से पश्चिम सभी जनपदो मे जनपदो के अधिनायक बौद्ध धर्मानुयायी मिले। भिक्षु सघ को भिक्षा देते समय ये अपने मुकुटो को उतार डालते हैं। अपने बन्धु और अमात्यों सहित अपने हाथों से भोजन परोसते हैं। परोस कर महा स्थविर (संघ का नायक) के सम्मुख आसन बिछवा कर बैठ जाते हैं। संघ के सम्मुख खाट बिछा कर बैठने का साहस नहीं करते।" यह तो हुई धार्मिक परिस्थिति। राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति का वर्णन करते हुए यह यात्री लिखता है:—

"यहाँ से दक्षिण मे वह देश है जो मध्यदेश कहलाता है। यहाँ शीत ऊष्ण सम है। प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखापढ़ी व पंच पंचायत कुछ भी नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहाँ चाहे जांय जहाँ चाहे रहें, राजा न प्राण दण्ड देता है न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी को कानून के अनुसार उत्तम साहस व मध्यम साहस का अर्थ दण्ड दिया जाता है। बार २ नीच कर्म करने पर दाहिना हाथ काट लिया जाता है। राजा के प्रतीहार और सहचर वेतन भोगी हैं। सारे देश मे चाण्डाल के सिवा कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है न मद्य पीता है और न लहसुन और प्याज खाता है। चाण्डाल लोग नगर के बाहर रहते हैं और जब नगर के अन्दर आते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते हुए चलते हैं। जिसमे कि लोग सावधान होकर

इनसे बचकर चलें। जनपद में सूअर और मुर्गी नही पालते
न जीवित पशु बेचते हैं। न कही सूनागार और मद्य की दूकानें
हैं। क्रय विक्रय में कौड़ियो का व्यवहार है। केवल चाण्डाल
मृगया करते एवं मांस मछली बेचते है।"

"बुद्ध निर्वाण के पश्चात् से लेकर आजतक इन देशो के
अनेक राजाओ, रईसो और गृहस्थों ने यहाँ पर विहार बनवाए
हैं और उनके व्यय के लिए खेत, घर, बगीचे आदि प्रदान
किये हैं। दान पत्र ताम्बे के पतरे पर खुदे हुए हैं जो प्राचीन
राजाओं के समय से चले आते है। किसी ने भी आजतक उनमें
हस्तक्षेप नही किया, आजतक वैसे ही है। विहार मे संघ को खान
पान मिलता है, वस्त्र मिलता है, वर्षा ऋतु मे आवास मिलता है।

मथुरा से चलकर फाहियान संकाश्य पहुँचा। संकाश्य से
चलकर वह कन्नौज आया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि
कन्नौज उस समय में गुप्तवंशी राजाओं की बढ़ी चढ़ी राजधानी
थी, लेकिन न मालूम क्यों फाहियान ने यहाँ के केवल दो संघा
नामों का वर्णन करके ही अपने विवरण को आगे बढा दिया है।
कन्नौज से फाहियान सांची गया। कहते हैं कि, यहां पर बुद्धदे
ने दतुवन करके दतुवन की लकड़ी को भूमि पर फेंक दिया था। व
वैसा का वैसा ही लग गया। सांची से चलकर वह बुद्धों के
प्राचीन राजधानी श्रावस्ती पहुँचा। पहले यह नगरी राजा प्रसे
जित जो भगवान बुद्ध के समकालीन थे उनकी राजधानी थी और
बहुत अच्छी अवस्था में थी, पर अब यह बहुत ही उजाड़
गई थी। फाहियान लिखता है कि—"नगर में बहुत कम अधि
वासी हैं, जो हैं सब तितर बितर हैं। सब मिला कर दो सौ

कुछ अधिक घर होंगे। महाप्रजापति के प्राचीन विहार की जगह, सेठ सुदत्र की भीत और कुओ पर, अंगुलिमात्र के अर्हत होने पर और निर्वाणांकर उसके चैत्य के स्थान पर पीछे के लोगो ने स्तूप बनाए वे अब तक नगर मे मौजूद हैं। नगर की शोभा चली जाने पर भी श्रावस्ती के पास वाले जेतवन (जहां पर भगवान् बुद्ध ने कई दिनो तक उपदेश दिया था) विहार की शोभा अभी भी वैसी ही बनी हुई है। विहार के दाये बायें स्वच्छ निर्मल और जलपूर्ण सरोवर है। उसके आस पास सदा बहार वृक्षों के बन हैं जिनमे रङ्ग बिरङ्गे फूल खिले रहते है। जेतवन विहार में रहने वाले सन्यासियो ने हमे देख कर पूछा कि, तुम कहां से आते हो ? हमने कहा कि, हम "हान" (चीन) देश से आते हैं। तब उन्होंने बड़ा आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा कि, "हम लोग गुरु शिष्य परम्परा से आने वालों को देखते आये हैं पर अभी तक हान देश के मार्गी (बौद्धानुयायी) लोगो को आते न देखा।"

श्रावस्ती से कश्यप कुकुच्छन्द और कनक मुनी के जन्म स्थानों को देखते हुए फाहियान कपिलवस्तु को आया। इस समय का कपिलवस्तु भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु की तरह स्मृद्ध नहीं था। फाहियान लिखता है कि, "इस नगर मे न कोई राजा है न प्रजा। इस समय वह एक बियाबान की तरह मालूम होता है। उसमें दस घर गृहस्थों के है और कुछ संन्यासी रहते हैं। कुशिनगर का भी—जहां कि भगवान् बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए थे—यही हाल है। वह भी अब नगर नहीं रह गया है"।

यहां से चलकर फ़ाहियान वैशाली में आया जो कि किसी समय में प्रतापी लिच्छवि वंश की राजधानी थी। इस नगर में भगवान् बुद्धदेव ने अम्बपाली वेश्या का आतिथ्य ग्रहण किया था। इसी वेश्या ने इस नगर में भगवान् बुद्धदेव का एक स्तूप भी बनवाया था। इसी नगर में बौद्धों की दूसरी सभा भी हुई थी। इसके विषय में फ़ाहियान लिखता है कि "बुद्ध निर्वाण के करीब १०० वर्ष पश्चात् वैशाली के कुछ भिक्षुकों ने दस बातों में विनय के नियम को यह कह कर तोड़ डाला कि, बुद्ध ने ऐसा करने की आज्ञा दी है। उस समय अर्हतो और सत्य मतावलम्बी भिक्षुओं ने जो कि गिन्ती में १०० थे विनयपिटक को फिर से मिलान कर संगृहीत किया।"

गङ्गा नदी को पार कर फाहियान मगध प्रान्त की राजधानी पुष्पपुर अर्थात् पाटलिपुत्र पहुँचा। इस नगर को पहले पहल अजातशत्रु ने उत्तरी सीमा के शत्रुओं को रोकने के लिए बनवाया था। और जो पीछे जाकर प्रसिद्ध सम्राट् अशोक की राजधानी हुई। इस नगर के सम्बन्ध मे फाहियान लिखता है:— "नगर में अशोक राजा का प्रासाद और सभाभवन है। ये सब देवों द्वारा निर्मित है। ऐसी सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी इस लोक के लोग नहीं बना सकते। अब तक वह ज्यों की त्यों है। अशोक के स्तूप के निकट महायान सम्प्रदाय का एक संघाराम बना हुआ है। यह बहुत सुन्दर और भव्य है। यहां हीनयान सम्प्रदाय का विहार भी है। सब में सात सौ आठ सौ के करीब भिक्षुक रहते हैं। आचार विचार, पठन, पाठन आदि सभी विधियां दर्शनीय हैं। चारों ओर के महात्मा, श्रमण, विद्यार्थी

सत्य, और हेतु के जिज्ञासु, इस स्थान का आश्रय लेते हैं। यहां के आचार्य्य एक ब्राह्मण कुमार हैं जिनका नाम मंजु भी है। जन पद के महात्मा, श्रमण और हीनयान के भिक्षुक उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं।"

"मध्यदेश में इस जनपद का यह सब से बड़ा नगर है। अधिवासी सम्पन्न और स्मृद्धिशाली है। दान और सत्य के कामो मे इन लोगों के अन्तर्गत बड़ी स्पर्द्धा चलती रहती है। दूसरे मास की आठवी तिथि को यहाँ पर रथयात्रा निकलती है। चार पहियो का एक रथ बनवाया जाता है, उस पर बांसो को बांधकर उसे पांच खण्ड का बनाते हैं और उस के बीच मे एक खम्भा बनाते हैं जो तीनफले भाले की नाई होता है। और ऊँचाई मे बाईस फीट या उससे भी अधिक होता है। इस प्रकार यह एक मन्दिर की तरह दिखाई देने लगता है। तब वे उसे भड़कीले रङ्गों से रङ्गी हुई मलमल से ढंकते हैं। फिर देवो की मूर्त्तियां बनाकर उन्हे सोने चान्दी और कांच से आभूषित कर कामदार रेशमी चन्दुए के नीचे बैठाते हैं। उसके पश्चात रथके चारो कोने पर वे ताखा बनाते हैं, उसके बीच मे बुद्धदेव की मूर्त्ति विराजमान करते हैं, और उनकी सेवा मे एक बोधिसत्व खड़ा किया जाता है। बीस रथ होते हैं, एक से एक सुदर और भड़कीले। इस यात्रा में आस पास वाले ग्रामो के यती गृहस्थ भी सम्मिलित होते हैं। गाने बजाने वाले रथके साथ रहते हैं। फूल और गध से पूजा करते हैं। फिर ब्राह्मण आते हैं और बुद्धदेव को नगर में पधारने के लिए निमन्त्रित करते हैं। तब बौद्ध लोग एक २ करके नगर में प्रवेश करते हैं। इन सब यात्रों

में दो रातें बीत जाती हैं। सारी रात रोशनी लगी रहती है, गाना बजाना होता है, पूजा होती है। नगर और बाहर के जितने लोग एकत्रित होते है, सब इस प्रकार के कार्य्य करते हैं।"

पाटलिपुत्र के अस्पतालों का इससे भी अधिक मनोरंजक विवेचन फाहियान ने किया है। वह लिखता है:—"इस जनपद के अमीर और गृहस्थ लोगों ने नगर मे सदावर्त और चिकित्सालय बनवाए हैं उनमे देश के निर्धन, अनाथ, विधवा, निःसन्तान लूले, लङ्गड़े, और रोगी लोग रक्खे जाते हैं। ऐसे लोगों की यहां पर सब तरह से सहायता की जाती है। वैद्य लोग उनके रोगों की चिकित्सा करते हैं। वे अनुकूल औषध और पथ्य पाते हैं, और जब अच्छे हो जाते है घर चले जाते हैं।"

पाटलिपुत्र से चलकर फाहियान बिम्बसार की राजधानी राजगृह पहुँचा। यहां पर उसने उस प्रथम बौद्ध संघ का वर्णन किया है जो कि बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् पवित्र पाठों को सगृहीत करने के लिए हुआ था। यहां से चलकर वह "गया" गया। फाहियान की यात्रा के समय गया उजाड़ हो रहा था। यहां पर उसने प्रसिद्ध बोधिवृक्ष बुद्ध की सर्वज्ञता प्राप्ति से सम्बन्ध रखने वाले सभी स्थानों को देखा। अपनी यात्रा के विवरण में उसने उन सब दन्तकथाओं को लिखा है जो भगवान बुद्ध की निर्वाणप्राप्ति के अनन्तर गढ़ी गई हैं। यहां से वह बनारस आया. यहां पर उसने उस मृगदाव को देखा जहां पर भगवान बुद्ध ने पहले पहल सत्य धर्म को प्रकट किया था। वहां पर उस समय दो संघाराम बन गए थे। वहां से वह कौशा-

म्बी होता हुआ पुनः 'पाटलिपुत्र गया। जिन "विनय पिटक" नामक ग्रंथों की खोज में हमारे यात्री ने इतनी लम्बी यात्रा की थी, वे अभीतक उसे नहीं मिले थे।

पाटलिपुत्र आकर उसने फ़िर 'विनय पिटक' की खोज करना प्रारम्भ की। इतने में परम्परा से मौखिक शिक्षा देने वाला एक आचार्य्य मिला। पर मूल प्रति उसके पास भी न थी। फिर एक महायान के संघाराम में एक निकाय का विनय मिला। बुद्धदेव जब संसार में थे, तब प्रथम महासघ में इसका प्रचार हुआ था। शेप ७८ निकाय अपने आचार्य्यों के मत और सिद्धान्तानुसार प्रधान विषयो मे समानता और छोटे २ विषयो मे विभेद रखते थे। जैसे एक का आदि है तो दूसरे का अन्त। यह प्रति फिर भी सर्वांगपूर्ण, विवृति और भाष्य युक्त थी।

एक और निकाय का विनय मिला, जो लगभग सात सौ गाथा का था। यह सर्वास्तिवाद निकाय का विनय था। चीन देश के भिक्षु-संघ मे इसीका प्रचार था। इसकी भी शिक्षा गुरुपरम्परा से मौखिक ही चली आती थी। लिखित न थी। इसी संघ में संयुक्त धर्म हृदय नामक ग्रन्थ लगभग ६०० गाथा का मिला। एक और निकाय का सूत्र २५०० गाथा का, परिनिर्वाण वैपुल्य सूत्र का एक अध्याय ५०० गाथा का और महासांघिक अभिधर्म मिला।

पाटलिपुत्र में तीन साल तक रहकर फाहियान ने संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। साथ में वह विनय पिटक भी लिखता रहा। उसके साथी "ताउचिंग" ने जब यहां के श्रमणों का नम्र आचार व्यवहार देखा, तो उसे चीनी भिक्षुओं के अधूरे और

विनयहीन आचारों का स्मरण हो आया। उसने शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा की कि, "अब से जब तक सच्चा बौद्ध न हो जाऊँगा तबतक प्रान्त की भूमि मे वापस न लौटूँगा।" यह प्रतिज्ञा कर वह तो वहीं रह गया। पर फ़ाहियान को तो अपने देश में जाकर विनय पिटक का प्रचार करना था, इसलिए वह अकेला ही वहां से लौटा।

फ़ाहियान गगा के तीर पर चलता २ अठारह योजन पारकर चंपापुरी पहुँचा। चम्पापुरी उस समय पूर्वीय बिहार की राजधानी थी। यहां से पचास योजन चलकर वह ताम्रलिप्ती (तमामक) पहुँचा। ताम्रलिप्ती उस समय गगा के मुहाने पर एक भारी बन्दरगाह था। इस देश में बौद्धभिक्षुओं के चौबीस संघाराम थे। श्रमण लोग संघ मे रहते थे। यहां पर बौद्ध धर्म्म का अच्छा प्रचार था। इस स्थान पर फ़ाहियान दो साल तक रहा। वहां पर उसने सूत्रों को लिखा और मूर्तियो के चित्र बनाये।

यहां से फ़ाहियान ने सिंहलद्वीप अर्थात् लङ्का की लम्बी यात्रा की। चौदह दिनों तक जहाज में चलते रहने पर वह लङ्का पहुँचा।

लंका के विषय में फ़ाहियान लिखता है:—यहाँ पर पहले मनुष्य निवासी नहीं थे। धीरे २ व्यापारी लोग यहाँ पर आकर बसने लगे और कुछ दिनों मे यह एक बड़ा राज्य हो गया। तब बौद्ध लोगों ने आकर यहाँ पर अपने धर्म्म का प्रचार किया। लङ्का की जलवायु अच्छी थी, और वहाँ वनस्पति हरी भरी रहती थी। नगर के उत्तर ओर ४७९ फ़ीट का एक बड़ा गुम्बज

और एक संघाराम था। जिसमें पाँच हज़ार सन्यासी थे। इतने सुहावने दृश्यों के होते हुए भी फाहियान का हृदय यहाँ पर घबराने लगा, क्योंकि उसे अपनी जन्म-भूमि से जुदा हुए बहुत दिन हो गये थे। इतने ही मे एक अवसर पर एक व्यापारी ने बुद्ध की एक २२ फीट ऊँची रत्न-जटित मूर्ति को चीन का बना हुआ एक पंखा भेंट किया। उसे देखकर फाहियान और भी अधिक व्याकुल हो उठा। लका मे दो वर्ष तक रह कर उसने विनय पिटक तथा दूसरे ग्रन्थो को जो कि, अबतक चीन मे न पहुँचे थे नकल करके वह अपने देश को वापस लौटने के लिए जहाज पर सवार हुआ। रास्ते में एक बड़ा तूफान आया, उसमे फाहियान को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। पर दैव सुयोग से अन्त मे वह सकुशल जावा सुमात्रा पहुँच गया। यहाँ के विषय मे वह लिखता है कि इस देश मे नास्तिक और ब्राह्मण लोग अधिकता से रहते हैं।

यहाँ पाँच मास रहकर वह फिर जहाज पर सवार हुआ, मार्ग मे फिर एक तूफान आया, इस तूफ़ान का मुख्य कारण दूसरे यात्रियो ने फाहियान को समझा। और वे उसे जबरन् उतारने लगे। पर फाहियान के साथियो ने बड़ी वीरतापूर्वक उन लोगों को रोका और ८२ दिन की यात्रा के पश्चात वे लोग चीन के दक्षिण किनारे पर पहुँच गये।

ऊपर के पृष्ठों पर फाहियान की यात्रा का सक्षिप्त विवेचन कर दिया गया है। यद्यपि फाहियान यहां पर केवल धार्मिक ग्रन्थों की खोज करने आया था, और यद्यपि उसने अपने यात्रा विवरण में धार्मिक दन्त-कथाओं के अतिरिक्त राजनैतिक और

सामाजिक परिस्थिति का बहुत ही कम वर्णन किया है, तथापि जितनी भी सामग्री उसके यात्रा विवरण से प्राप्त हो सकती है, वह उपेक्षणीय नहीं की जा सकती। इस थोड़ीसी सामग्री से भी तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। इसकी आलोचना हम आगे चलकर करेंगे।

सम्राट चन्द्रगुप्त का अवसान।

अपने ३८ वर्ष के शासन से भारतवर्ष को सम्पन्न कर सन् ४१३ ईस्वी में भारत का यह आदर्श सम्राट् अपनी ध्रुव स्वामिनी नामक सम्राज्ञी से उत्पन्न पुत्र कुमारगुप्त को उत्तराधिकारी बनाकर परलोकगामी हुआ।

सम्राट् कुमारगुप्त

हम ऊपर लिख आए हैं कि, सन् ४१३ ईस्वी में सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का स्वर्गारोहण हुआ, और उनके उपरान्त उनके पुत्र कुमारगुप्त उस विशाल साम्राज्य के अधिपति हुए।

कुमारगुप्त के समय की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियां प्रायः वे ही थीं, जो पूर्ववर्ती सम्राटों के समय में थीं, अतः उन पर दुबारा कुछ विशेष विवेचन करना व्यर्थ है।

कुमारगुप्त ने अपने शासन के पूर्वकाल में साम्राज्य का बहुत ही उत्तम ढंग से संचालन किया। यद्यपि चन्द्रगुप्त कालीन साम्राज्य में वे अपनी ओर से कुछ भी नवीन प्रान्त नहीं मिला सके थे, तथापि जितना कुछ साम्राज्य उनके अधिकार में था, उसका शासन वे एक योग्य शासक की तरह करते थे। इसी समय में उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था पर शासन के उत्तर काल में उनका शासन बहुत ढीला पड़ गया था, साम्राज्य

के सभी अंगों में कुछ न कुछ कमजोरियां आने लग गई थीं, और ऐसा मालूम होने लग गया था मानो साम्राज्य के भीतर ही भीतर किसी प्रकार का भयंकर घुन लग गया हो। इसी ढीलेपन के कारण भविष्य मे जाकर किस प्रकार गुप्त-साम्राज्य का पतन हुआ यह पाठको को आगे चलकर मालूम होगा। यद्यपि यह ठीक है कि उनके जीते जी साम्राज्य की कोई क्षति न हुई थी पर इसके साथ यह भी मानना ही पड़ेगा कि भविष्य मे होने वाली क्षति के कारण इस समय पैदा हो चुके थे। अस्तु। ये कारण किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसका पता पाठको को आगे चलकर स्वयं ही मालूम हो जायगा।

सम्राट् कुमारगुप्त का वृद्ध विवाह

सम्राट् कुमारगुप्त के समय के वहुत से सोने के सिक्के इस समय उपलब्ध हुए है। उनमें राजमूर्ति के साथ दो पट्ट महिषियों की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। इन सिक्को पर से कई पुरातत्व के पंडितो ने अनुमान निकाला है कि, सम्राट् कुमारगुप्त ने वृद्धावस्था मे किसी युवती से विवाह किया था। इस युवती का नाम "आनन्ददेवी" अथवा "अनन्तादेवी" था। इसके कुटिल कटाक्षों के फेर में पड़कर सम्राट् कुमारगुप्त ने प्रथम पट्ट महादेवी की जीवितावस्था में ही साम्राज्य के तमाम महाबलाधिकृतों के विरोध करते हुए भी इसे पट्ट महादेवी का आसन दे दिया था। कहा जाता है कि, इसी घटना ने सारे साम्राज्य में असंतोष छा गया था। इधर तो यह असंतोष छा ही रहा था, उधर सम्राट् कुमारगुप्त तमाम राज कार्यों को छोड़ नवीन पट्ट महादेवी के साथ

विलास मंदिरों मे आनंद कर रहे थे। इसका नतीजा यह हुआ कि सम्राट् की इस विलास प्रियता के कारण साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होना आरंभ हुआ। इधर तो साम्राज्य की शक्ति का इस प्रकार ह्रास हो रहा था, उधर दो एक भयंकर आपत्तियां उठ खड़ी हुई, जिससे साम्राज्य महा विपत्ति का ग्रास होने से बाल २ बच गया। उनमे से पहली आपत्ति।

पुष्यमित्रीय जाति का आक्रमण*

था। कुमारगुप्त की विश्रृंखल शक्ति देखकर पुष्यमित्र नामक राजा ने उस पर आक्रमण किया। दोनो ओर से भयंकर युद्ध हुआ। प्रारंभ मे तो साम्राज्य की सेना उसके भयंकर आक्रमण को सहन न कर सकने के कारण भाग निकली, पर पीछे से युवराज भट्टारक स्कन्दगुप्त ने बड़ी ही कठिनाई से अपनी सेना को वापस फेरा, और फिर बड़े ही जोश के साथ पुष्यमित्रीय सेना पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। इस विपत्ति से तो ज्यों त्यों कर रक्षा हुई। पर इसके पश्चात् जो दूसरी महा भयंकर विपत्ति भारतवर्ष पर अवतीर्ण हुई, उससे गुप्तसाम्राज्य लाख चेष्टा करने पर भी त्राण न पा सका। यह विपत्ति संसार प्रसिद्ध हूण जाति का आक्रमण था। हम पाठकों की जानकारी

---

* राय बहादुर गौरीशंकर जी ओझा के मतानुसार, किसी भी पुष्यमित्रीय जाति का कुमारगुप्त के शासन पर आक्रमण नहीं हुआ था। उनका कथन है कि, इतिहासकारों ने "युद्धमित्रैन" की जगह "पुष्यमित्रैन" का गलत पाठ कर लिया है। असल में उस शिलालेख का अर्थ एक युद्ध का उल्लेख है जो हूणों का होना चाहिए। पुष्यमित्रीय जाति का उल्लेख कहीं भी नहीं पाया जाता।

के निमित्त इस स्थान पर हूण जाति का संक्षिप्त इतिहास देना उचित समझते हैं।

संसार में ईश्वरीय महादण्ड

(The Scourge of God)

हूण* जाति का संक्षिप्त इतिहास

ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग मध्य एशिया की गोचारण भूमियो से एक नृशंस जाति का उदय हुआ। यह जाति बहुत ही थोड़े ही समय में यूरोप में और एशिया के अंदर फैल गई। यह जाति स्वभावतः ही बड़ी क्रूर थी। ये लोग दुर्भिक्ष से भी अधिक भयंकर, महामारी से भी अधिक क्रूर, और मृत्यु से भी अधिक भयंकर, होते थे।

यह जाति क्या थी मानो एक "ईश्वरीय महादण्ड" संसार पर उतरा था। गांव गांव को जला देना और मनुष्य समूह का कत्ले आम कर देना इनके बायें हाथ का खेल था। इनके कंधे चौड़े, नाक चपटी, आंखें छोटी और, भीतर को घुसी हुई होती थीं। दाढ़ी मूछें तो इन लोगों के बिलकुल ही न होती थीं। इस कारण ये न तो जवानी में ही सुंदर मालूम होते थे और न बुढ़ापे में ही।

चीनीयात्री "सुंगयुन" अपने यात्रा विवरण में हूणजाति के रहन सहन का वर्णन करते हुए लिखता है।—

(*) हूण जाति का मूल स्थान भारत के पड़ोस का [illegible] मालूम होता है। [illegible] "हूणिया" कहते हैं। सम्भव है [illegible] के लोग मध्य एशिया से गये हों। (लेखक)

"हूणों के देश के खेतों में पहाड़ी नदियों का पानी बहुत अधिक भरजाता है। घर २ के सामने नदियां बहती हैं। शान्ति रक्षा स्थायी सेना से होती है। वह इधर उधर फिरती रहती है। गरमी मे लोग पहाड़ पर चले जाते हैं। सर्दी में वहां से भाग कर गांवो मे आ जाते हैं। इन लोगों की कोई लिपि नही है, नक्षत्रो की गति का भी इन्हे कुछ ज्ञान नहीं है। सब आस पास की जातियां इन लोगों को कर देती हैं। हूणों की रानियां भी राजवस्त्र धारण करती है। ये राजवस्त्र प्रायः तीन २ फुट या इसके भी अधिक पृथ्वी पर लोटते चलते हैं। इन वस्त्रों को उठाने के लिए परिचारिकाएँ रहती हैं। इस वस्त्र के अतिरिक्त सिर पर इससे भी लम्बी आठ फुट की एक सींग धारण करती हैं। यह सींग तीन फीट तक लाल मूँगे की होती है। यह अनेक रंगों में रंगी जाती हैं। यही उनका शिरोभूषण है। जब रानिया कहीं जाती हैं, तो उन्हे उठाकर ले जाती हैं। जब अन्त.पुर में रहती हैं तो सुनहली चौकी पर बैठती हैं। चौकी मे एक छदन्ता सफेद हाथी और चार सिंह बने रहते हैं। बडे २ मन्त्रियो की महिलाएँ भी रानियो के समान ही रहती हैं। वे भी सिरपर ऐसा ही सींग धारण करती है। सींग पर चंदोवे की भांति बहुमूल्य पर्दा लटकता रहता है। धनियों और दरिद्रियो के पहनावे अलग २ हैं। चारो बराबर जातियो मे यही जाति सबसे अधिक प्रबल है। अधिकांश लोग बुद्धदेव को नहीं मानते, ये लोग जीते प्राणियों को मारते और उनका मांस खाते हैं। हमारी राजधानी मे इस देश की दूरी करीब चार हजार माइल समझी जाती है।"

अस्तु ! जब उस देश में इन लोगो की तादाद बहुत अधिक
बढ़ गई, तो दूसरे देशों को विजय करने के निमित्त, इन लोगों
ने निकलने का विचार किया और शीघ्र ही इन लोगो के दो
दल हो गये जिनमें से एक पश्चिम की ओर और दूसरा पूर्व की
ओर अग्रसर हुआ। पश्चिम वाले दल ने यूरोप मे जाकर रोम के
समान विशाल साम्राज्य को धूल धूसरित कर दिया। इसी दल
ने यूरोप की गाथ जाति को मिट्टी मे मिला दिया। इस दल का
मुख्य सर्दार "एटिला" था। उसकी निर्दयता और निठुरता की
कहानियां आज भी यूरोपीय साहित्य मे प्रचुरता से पाई जाती
हैं। एक दूसरे झुण्ड ने आक्सस की घाटी पर अधिकार कर लिया
और वे श्वेत हूण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एशिया मे भी हूणो की शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई
और उन लोगों ने सन ४८४ ईस्वी मे फारस के राजा फीरोज़
के मारे जाने पर काबुल की ओर पैर बढाया। और वे कुशान
साम्राज्य का ध्वंस कर भारतवर्ष मे बढने लगे।

उनका पहला आक्रमण कुमारगुप्त के ही समय में हुआ।
उसे नाक मण्डल के प्रधान और कुमारगुप्त के छोटे भाई गोविद
गुप्त ने युवराज स्कन्दगुप्त की सहायता से रोका। इस युद्ध में
उन्होंने हूणों को एक बड़ी भारी हार भी दी।

पर इधर तो कुमारगुप्त की विलास प्रियता से दिन पर दिन
साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होता गया. और उधर हूणों की
शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती गई। फल यह हुआ कि कुमारगुप्त
के जीते जी ही साम्राज्य पर किसी प्रकार की विपत्ति न आई

पर उनकी मृत्यु के *पश्चात् सम्राट् स्कन्दगुप्त के शासन काल में, यह विपत्ति इस भयङ्करता से आई कि जिसको कर्मशील स्कन्दगुप्त भी न सम्हाल सके और जिसके कारण विशाल गुप्त साम्राज्य का भयङ्कर अधःपतन हुआ।

खैर, इस बात का विवेचन आगे के पृष्ठों में किया जायगा। यहां पर इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि, सम्राट् कुमारगुप्त का जीवन उनके वृद्ध विवाह के पश्चात् सुख पूर्वक नहीं बीता, और सन् ४५५ ईस्वी में उनके इस कष्टमय जीवन का अन्त भी हो गया।

---

* ऊपर कुमारगुप्त के अपनी मौत से मरने का उल्लेख है, पर भितरी [illegible] स्कन्दगुप्त के लेख में पाया जाता है कि, कुमारगुप्त हूणों से युद्ध करते [illegible]। और उनकी मृत्यु के पीछे तीन मास तक हूणों से युद्ध कर उनके पुत्र स्कन्दगुप्त ने [illegible] अपनी रोती हुई माता को सान्त्वना दी। [illegible]

और गुप्त साम्राज्य का पतन।

हम ऊपर लिख आए हैं कि, सम्राट् कुमारगुप्त स्वयं अपने हाथों ही से गुप्त साम्राज्य की समाधि बना गए थे। जिस प्रकार फ्रांस के चौदहवें लुई के पाप का प्रायश्चित सोलहवें लुई को करना पड़ा था, उसी प्रकार कुमारगुप्त पापों का फल कर्मशील स्कन्दगुप्त को भुगतना पड़ा। और आज भी इतिहास गुप्त साम्राज्य के पतन का कलङ्क स्कन्दगुप्त के सिर पर मढ़ता है। अस्तु लिखने का मतलब यह है कि, गुप्तवंश की राज्य लक्ष्मी कुमारगुप्त के समय में ही विचलित हो गई थी। उसको स्थिर करने के लिए, स्कन्दगुप्त ने बहुत ही यत्न किया पर वह स्थिर न रह सकी।

हम लिख आए हैं कि, हूण लोग पहली बार परास्त होकर चुप नहीं बैठ गए थे। उन्होंने उत्तरापथ पर कई बार आक्रमण करके प्राचीन कपिशा और गांधार पर अधिकार कर वहां अपना नया राज्य स्थापित कर लिया था। सन् ४५७ तक अन्तर्वेदी पर स्कन्दगुप्त का ही अधिकार था, पर पीछे जाकर वह भी उनके हाथ से निकल गई। उसी समय कुछ तो भीतरी उपद्रवों

के कारण और कुछ बाहरी शत्रुओं के आक्रमणों के कारण गुप्त साम्राज्य की शक्ति घटने लग गई थी। प्रान्तीय शासक लोग सम्राट् के नाम का उल्लेख किये बिना ही लोगों को जागीरें वगैरह देने लग गये थे। ४५५ से ४६५ तक फिर भी साम्राज्य का कार्य्य निरापद ढङ्ग से चलता रहा। पर ४६५ ईस्वी से पुनः हूणों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये। स्कन्दगुप्त ने यद्यपि इस समय भी कितने ही छोटे बड़े युद्धों मे हूणों का मुकाबिला किया, पर साम्राज्य की शक्ति बहुत क्षीण हो जाने के कारण वे अधिक समय तक उनका मुकाबिला न कर सके, और अन्त मे एक हूण युद्ध मे ही उनके प्राण भी गये।

विन्सेएट स्मिथ लिखते हैं कि, गोरखपुर जिले के पूर्व पटने से नव्वे मील के अन्तर पर एक जैन ने एक विचित्र स्तम्भ खडा किया, और बुलन्दशहर के जिले में एक धर्मात्मा ब्राह्मण ने गङ्गा और यमुना के बीच मे सूर्य्य का एक मन्दिर बनवाया। इससे पता चलता है कि, हूण जाति के आक्रमण के पूर्व स्कन्दगुप्त के राज्य की सीमाओं में कोई न्यूनता न हुई थी। पर हूण युद्ध के पश्चात् उनकी सीमाएं और राज्य शक्ति बहुत संकुचित हो गई थी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि, उनके आरम्भिक शासन काल के सिक्कों का सोना और तौल दोनों वैसे ही हैं जैसे उनके पूर्वज सम्राटों के सिक्कों के हैं। पर अन्तिम काल के सिक्कों मे शुद्ध सोना प्रायः तीन चौथाई से भी कम पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि, दूसरों के साथ युद्ध करने में राज्य कोष का बहुत सा धन निकल गया था। इसके अतिरिक्त एक और विचित्र बात उनके सिक्कों में पाई जाती है। वह यह कि,

और गुप्त सम्राटों की तरह उनके सिक्के मे किसी भी पट्ट महादेवी का उल्लेख नहीं मिलता, और न उनके किसी पुत्र का ही पता इतिहास देता है। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि, सम्राट् स्कन्दगुप्त का विवाह ही नही हुआ था लेकिन उनके विवाह न करने का क्या कारण है इस विषय मे इतिहास बिलकुल चुप है।

हम ऊपर लिख आए है कि, हूण युद्ध मे सम्राट् स्कन्दगुप्त का प्राणान्त हुआ। उनके पश्चात् सन् ४८० ई० मे कुमारगुप्त की नवीन पट्ट महादेवी से उत्पन्न पुरुगुप्त गुप्त साम्राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। स्कन्दगुप्त के समय मे सिक्को के अन्दर जो मिलावट हो गई थी वह इनके समय में निकाल दी गई। इसके अतिरिक्त इनके जीवन काल में और कोई भी उल्लेख योग्य घटना न हुई। पुरुगुप्त ने केवल पांच वर्ष तक राज्य किया। इनके पश्चात् सन् ४८५ मे उनके पुत्र नरसिंहगुप्त बालादित्य सिंहासन पर बैठे। उन्होंने बौद्धों के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नालन्द में एक ईंटों का मन्दिर बनवाया। इसकी ऊँचाई तीन सौ फीट के करीब थी। इसमें नाना प्रकार के जवाहिरात प्रचुरता से जड़े गये थे। नरसिंहगुप्त के पश्चात् उनके पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त राज्य सिंहासन पर बैठे। यही गुप्त साम्राज्य के अन्तिम सम्राट् थे। इन्हीं के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का दीप निर्वाण हो गया।

गुप्त साम्राज्य पर एक दृष्टि

संसार में प्रायः दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। एक तो वे जो अपनी कर्मशीलता, उत्साह और साहस के बल पर आत्म

पास की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेते हैं, और दूसरे वे जिन्हें परिस्थिति स्वयं अपने अनुकूल बना लेती है।

इस कसौटी पर जब हम मौर्य्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त और गुप्तवंश की स्थापना करने वाले चन्द्रगुप्त इन दोनों को जांचते है तो हमें मालूम होता है कि, मौर्य्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त पहली श्रेणी के मनुष्यों में से थे और गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय श्रेणी के। प्रथम सम्राट् ने घोर परिश्रम के द्वारा भाग्य को अपने अनुकूल बनाया था, और दूसरे सम्राट् का भाग्य स्वयमेव उनके अनुकूल हो गया था। पहले सम्राट् का जीवन यदि तदबीरवाद का अनुमोदन करता है तो दूसरे का जीवन तकदीरवाद का अनुमोदक है। अस्तु, इस विषय में अधिक निवेदन करना यहाँ पर युक्ति सङ्गत नहीं. अतः अब हम अपने प्रधान विषय की ओर झुकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि, मौर्य्य और गुप्त साम्राज्य की स्थापना भारतवर्ष के इतिहास में युगान्तर उपस्थित करनेवाली घटनाएँ हैं। सारे भारतवर्ष के इतिहास में इन साम्राज्यों की शताब्दियाँ प्रकाश पुंज की तरह चमक रही हैं। बल्कि यहाँ तक कहने में भी अत्युक्ति न होगी कि भारतवर्ष के ज्ञातव्य इतिहास में भारतीय सभ्यता का जितना विकास इन शताब्दियों में हुआ उतना कभी भी नहीं हुआ। मौर्य्य साम्राज्य की संक्षिप्त आलोचना हम पहले कर चुके हैं। इस अध्याय में हम गुप्त साम्राज्य पर एक सरसरी निगाह डालने का प्रयत्न करेंगे।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना के पूर्व की परिस्थिति पर हम पहले संक्षिप्त में लिख चुके हैं। अतः उसी बात को पुनः यहाँ

पर लिखना व्यर्थ है। इस स्थान पर हम केवल उस समय की सामाजिक स्थिति पर संक्षिप्त मे विचार करेंगे।

गुप्त साम्राज्य के शासन की सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि अबतक जितने भी शासन अशोक के पश्चात् भारतवर्ष मे हुए उन सबमें बौद्ध धर्म की ही धार्मिक प्रधानता रही थी पर गुप्त साम्राज्य में वह प्रधानता कुछ अंशो में कम होने लग गई थी और राज्याश्रय तो प्राय बहुत अशो मे बन्द हो गया था। गुप्त वंश के प्रायः सभी सम्राट् वैदिक मतावलम्बी थे। दूसरी विचारणीय बात यह है कि स्वयं बौद्ध धर्म के अन्दर भी उस समय बहुत अधिक विशृङ्खला उत्पन्न हो गई थी। फाहियान के वर्णन से स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय बौद्ध मत मे कितनी आडम्बर-प्रियता, कितना कर्मकाण्ड और कितना मनगढ़न्त पन घुस गया था। सचमुच उस काल का बौद्ध-धर्म्म वास्तविक बौद्ध-धर्म्म से बहुत दूर जा पड़ा था। जिस उच्च आदर्श के लिए भगवान बुद्धदेव ने इस पवित्र धर्म्म की नींव को डाला था, वह आदर्श बिलकुल नष्ट हो गया था। बौद्ध धर्म की इस दयनीय दुर्गति के वर्णन को पढ़ कर सचमुच बड़ा दुःख होता है। पर यह नियम विधि बद्ध है। जो लोग मनोविज्ञान के रहस्यों को जानते है, उन्हे इस दुर्गति पर विशेष आश्चर्य नहीं हो सकता।

बौद्ध धर्म्म ही क्या, संसार का कोई भी ऐसा धर्म्म नहीं जो इस प्रकार की दुर्गति से बचा हो। ईसाई धर्म्म को लीजिए; जिसके पवित्र सिद्धान्तों पर महात्मा क्राइस्ट ने इस धर्म की नींव को रक्खा था। पर भविष्य में इसका क्या परिणाम

हुआ ? वही जो बौद्ध धर्म्म का हुआ। बल्कि उससे भी अधिक भयङ्कर। महायान और हीनयान की ही तरह, उसमे भी रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेंट दो विभाग हो गये, और उन दोनो विभागो में आपस मे ही—जो खून खराबा हुआ, उसके वृत्तान्त को पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या यही महात्मा क्राइस्ट की शिक्षा थी ? इसी प्रकार वैदिक धर्म्म को लीजिए। कितने ऊँचे आदर्शों पर इसकी इमारत खड़ी की गई थी, पर अन्त मे इसके भी दो टुकड़े हुए, शैव और वैष्णव। इन दोनों से भी कितना वैमनस्य बढ़ा, इसका पता इतिहास दे रहा है। इसी प्रकार मुसलमान धर्म्म में शिया और सुन्नी, जैन धर्म्म मे श्वेताम्बरी और दिगम्बरी आदि विभाग हो गये। और उनमें भयङ्कर विरोध चलता रहा। मतलब यह कि संसार का कोई भी धर्म ऐसा नहीं, जिसमें इस प्रकार का कोई समय उपस्थित न हुआ हो। हर एक धर्म में कभी न कभी इस प्रकार की विश्रृंखला का होना अनिवार्य्य है।

पर इसका मुख्य कारण क्या है ? किसी भी धर्म्म की नींव प्रारम्भ मे बड़े ही पवित्र सिद्धान्तो पर रक्खी जाती है। फिर भविष्य मे जाकर उसकी ऐसी दुर्गति क्यों होती है ? यह एक बड़ा ही गम्भीर प्रश्न है। इसका उत्तर विना मनोविज्ञान का अध्ययन किये नहीं मिल सकता।

मनस्तत्व के विद्वान मनुष्य हृदय की उन भावनाओं को भली प्रकार जानते है, जो मनुष्य हृदय मे हमेशा अपना कार्य्य करती रहती हैं। इन भावनाओं में दो भावनाएँ प्रधान रहती हैं, एक स्वार्थ-भावना और दूसरी परार्थ-भावना। जिन लोगो में दैवी-सम्पद् और सतोगुण की अधिकता रहती है उनमें स्वार्थ-भावना

की अपेक्षा परार्थ-भावना का अंश अधिकता से रहता है। एवं जिन लोगों में आसुरी सम्पद् तथा रजो और तमोगुण की अधिकता रहती है उनमे परार्थ-भावना की अपेक्षा स्वार्थ-भावना का अश अधिक रहता है। प्रत्येक काल की प्रत्येक समाज में दोनों प्रकार के मनुष्यो का अस्तित्व रहता है। जब किसी भी नवीन धर्म्म की सृष्टि होती है उस समय यह होता है कि संस्थापक के व्यक्तिगत प्रभाव के सन्मुख पराजित होकर स्वार्थ-प्रबल व्यक्ति भी उस धर्म की हाँ मे हाँ मिलाते हुए उस धर्म की दीक्षा ले लेते हैं, और कुछ समय तक—जब तक कि उस धर्म के असली सिद्धान्तो का प्राबल्य रहता है—वे उसके असली सिद्धान्तों के अनुसार ही कार्य्य करते हैं। पर समाज से धर्म संस्थापक का अस्तित्व लोप हुए पश्चात्, वे समय समय पर आचार्य्य के ढोंगी रूप धरकर उस असली धर्म्म में अपनी ओर से कुछ नये नये सिद्धान्तो, जो उनकी स्वार्थ-वृत्ति के अनुकूल हों—मिलाना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि उस समय समाज में दैवी सम्पद् से युक्त मनुष्यो की अधिकता हुई तब तो वे फौरन इन पाखण्डियों का विरोध प्रारम्भ कर देते हैं, और यदि इन्हीं पाखण्डियों के विचार वालों की अधिकता हुई, तो समाज का नक्शा फिर बदल जाता है। पर दोनों ही अवस्था में इस सम्प्रदाय के दो दूसरों का होना आवश्यक है। और उनका सम-र्थन करना भी जरूरी है।

स्वयं अशोक भी बुद्ध का उपासक था, इसलिए उनका वह पाखण्ड अधिक समय तक न चला, और वे सब पाखण्डी समाज से अलग कर दिये गये। पर कनिष्क के समय मे इन लोगो मे फिर जोर बढ़ा और यहां तक बढ़ा, कि स्वयं कनिष्क भी इन लोगो के फेर मे आगया। फिर क्या था। राज्याश्रय मिलते ही इनका बल और भी अधिक बढ़ गया। फल यह हुआ कि, कश्मीर में इन लोगो का सम्प्रदाय महायान (बडा पन्थ) की सञ्ज्ञा से मशहूर हुआ, और सच्चे बुद्धानुयायियो का पन्थ हीनयान कहलाया। बस फिर क्या था, इनके पन्थ को जोर मिलते ही इन लोगों ने जो २ अनर्थ करना प्रारम्भ किये, वे वर्णनातीत है। गुप्तकाल में ये अनर्थ बहुत ही जोरो पर हो गये थे। यहां तक कि अकेले पाटलिपुत्र मे कई सघारामो के अन्तर्गत इनके षड्यन्त्र, पाखण्ड, अनाचार और व्यभिचार चला करते थे। इन घटनाओ का फल यह हुआ कि बहुत से सज्जन पुरुषो को इन लोगो से घृणा हो आई, और इस कारण वे स्वयं अपना धर्म परिवर्तित करने लगे। क्या आश्चर्य यदि गुप्त सम्राटों ने भी इनकी लीलाओ को देखकर, वैदिक मत का पोषण किया हो।

उपरोक्त कथन का सारांश यह है कि उस समय बौद्ध धर्म अपनी उन्नत अवस्था से गिरकर बहुत अधःपतित अवस्था में पहुँच गया था, और इसी कारण सर्व-साधारण का उन पर से विश्वास उठता जा रहा था।

यह तो हुई धार्मिक स्थिति, अब तत्कालीन शासन-नीति पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। मौर्य्य साम्राज्य के शासन

और गुप्त साम्राज्य के शासन मे केवल एक ही अन्तर सबसे
बड़ा दिखलाई देता है। वह यह कि मौर्य्य कालीन दण्डविधान
मे गुप्त कालीन दण्डविधान बहुत कोमल हो गया था।
अंग्रेज लेखकों के कथनानुसार मौर्य्य साम्राज्य का यह कलंक
गुप्त सम्राटों ने अपने शासन मे मिटा दिया था। वास्तव मे गुप्त
साम्राज्य ने इस विषय मे बहुत ही उन्नति करली थी। और इस
विषय में आधुनिक संसार के सब शासनो से भी यह शासन
उन्नत हो गया था।

फाहियान के यात्रा विवरण से मालूम होता है कि, तत्का-
लीन समाज मे अछूतो के प्रति घृणा के भाव बहुत बढ़ गये
थे। शायद बौद्ध धर्म के अधःपात के कारण ही ये भाव अधिक-
तर फैले होंगे। पर इसमे संदेह नहीं कि, मौर्य्य शासन काल
की अपेक्षा गुप्त शासन काल मे अछूत भाव बहुत अधिक फैल
गये थे। जान पड़ता है कि छुआछूत की यह भयंकर बीमारी
उस समय से अभी तक बराबर चढ़ती हुई चली आ रही है।
इस पर विशेष आलोचना करना व्यर्थ है। प्रत्येक शिक्षित इस
बीमारी की भयंकरता को बखूबी समझता है।

अब गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणो पर विचार कीजिए।
किसी भी उन्नत साम्राज्य का पतन कब होता है? यद्यपि
साम्राज्य के पतन के कई कारण हो सकते हैं, पर उनमें से
मुख्य कारण निम्नोक्त हो सकते हैं—

(१) जब कि, शासक और प्रजा के बीच किसी प्रकार का
... वैमनस्य हो, और उससे प्रजा को दबाने के लिए शासक
की ओर से भयङ्कर अत्याचार होने लगे।

(२) जब शासक विलासप्रिय होकर, शासन की बागडोर अनजान और स्वार्थी लोगों के हाथ में दे दे। इससे परिणाम यह होता है कि इन लोगों की मूर्खता से साम्राज्य की शक्ति बिखर जाती है, जिससे आस पास की दूसरी जातियों को सिर उठाने का अवसर मिलता है।

इसी प्रकार के और भी कई कारण ऐसे होते हैं जिनसे राज्य का अधःपात हो जाता है। पर गुप्त साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण प्रायः दूसरा ही है। यह बात निर्विवाद है कि गुप्त साम्राज्य-काल में राजा और प्रजा के स्वार्थों में बहुत कुछ साम्य था। इसके अतिरिक्त कुमारगुप्त के द्वितीय विवाह करने के पूर्व साम्राज्य की शक्ति भी काफ़ी सुदृढ़ थी। पर कुमारगुप्त के दूसरा विवाह कर लेने और नवीन महिषी को पट्ट महिषी का पद दे देने से, सारे साम्राज्य के अंदर बहुत असतोष छा गया। कुमारगुप्त ने उस असन्तोष की कुछ परवाह न की, और वे अपने समय को विलास मंदिरों में ही बिताने लगे। राज्य की बागडोर अननुभवी आदमियों के हाथ में चली गई। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि, साम्राज्य की शक्ति बहुत अस्तव्यस्त हो गई। ऐसे नाजुक समय में हूण जाति ने पूरे बल के साथ साम्राज्य पर आक्रमण किया। फिर भी एक बार वे लोग साम्राज्य की बची खुची शक्ति से भी पराजित कर दिये गये। दूसरी बार के युद्ध में साम्राज्य शक्ति विजयी न हुई, और अन्त में वही परिणाम हुआ, जो प्रायः ऐसी स्थिति में सभी साम्राज्यों का हुआ करता है।

इस प्रकार प्रतापी गुप्त साम्राज्य का दीप निर्वाण हुआ।

सम्राट् हर्षवर्द्धन

उस समय का भारत

पाठकों को अब हम मौर्य्य और गुप्त साम्राज्य के उन्नतिमय सुन्दर समय से निकाल कर धीरे धीरे ऐसे समय में ला रहे हैं, जो हमारे लिए आल्हादजनक नहीं। जिसके इतिहास की बहुत सी घटनाएं हमारे हृदय को दुःखित करती हैं। यह समय ईसा की छठवीं शताब्दी का है। पहले के भारत में और इस समय के भारत में बहुत अधिक अन्तर पड़ गया था। गुप्त साम्राज्य का पतन होते ही देश की राजनैतिक स्थिति डावांडोल होने लग गई थी। स्कन्दगुप्त के पश्चात कोई भी ऐसा प्रतापी सम्राट् अभी तक नहीं हुआ था, जो सूत्रबद्ध साम्राज्य की रक्षा कर सके। सुयोग्य शासक के अभाव में सारा साम्राज्य

ही चुका था, और उसने महाराजाधिराज की उपाधि भी धारण कर ली थी। सन् ५१० ईस्वी में वह मर गया, और उसके पीछे क्रूरता का दूसरा अवतार मिहिरगुल गद्दी नशीन हुआ। पंजाब के अन्तर्गत सियालकोट में इसने अपनी राजधानी स्थापित की।

मिहिरगुल भी एटिलमा की ही तरह दुष्ट और नराधम था। ये लोग अत्यन्त निर्दयता से प्रजा का वध करके रक्त की नदियां वहाते थे। फसलें उजाड़ देते थे और गांव जला देते थे। मिहिर-गुल को एक विशेष प्रकार का शौक भी था। वह बड़े २ हाथियों को ऊँचे २ पर्वतों पर चढ़ा कर उन्हें वहां से गिरवाता था। और उनका करुणास्पद चिंघाड़ना हर्षित चित्त से सुनता था। इसीसे पता चल जायगा कि, वह कितना अधिक क्रूर था।

अस्तु, उसकी इस क्रूरता से तङ्ग आकर मगध के राजा वालादित्य और मध्य भारत के राजा यशोधर्म्मन ने मिलकर उसे एक वड़ी भारी हार दी, एवं उसे कैद भी कर लिया। परन्तु भारतीय उदारता के वशीभूत होकर वालादित्य ने उसे कारागार मुक्त कर सन्मान पूर्वक वापस भेज दिया। यहां से छूटकर मिहिर गुल कश्मीर पहुँचा। कश्मीर के राजा ने शरणागत वत्सल हो उसे एक छोटा सा प्रदेश जागीर में भी दे दिया। परन्तु इस एह-सान फरामोश ने कुछ दिनों में शक्ति संचित कर अपने आश्रय-दाता को ही राजच्युत कर दिया और स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। कश्मीर को हस्तगत कर इसने गान्धार पर आक्रमण किया। वहाँ भी उसने वड़ी ही क्रूरता के साथ अपनी ही जाति के राजपरिवार को नष्ट कर दिया। और वहां से आगे बढ़कर सिन्धु नदी तक कत्ले आम करता हुआ चला गया। इस अर्से

में उसने अनेक मन्दिरों, विहारों और समाधि स्थलों को तोड़ कर उन्हें लूट लिया। अन्त में सन् ५४० के करीब इस नराधम का भार पृथ्वी पर से हलका हुआ।

कहते हैं कि, जिस समय इसकी मृत्यु हुई उस समय जोर से आंधी चली, भयङ्कर रूप से बादल कड़के और भूकम्प हुआ। इससे कई लोगों ने अनुमान लगाया कि, इसके कृत्यों की सजा पाने के लिए यह नर पिशाच घोर नरक में डाल दिया गया।

कहने का मतलब यह है कि, हर्षवर्द्धन के पूर्व देश की राजनैतिक परिस्थिति बहुत ही डांवाडोल हो रही थी। सारे देश में अशान्ति का भयङ्कर दौरदौरा था।

धार्मिक स्थिति

राजनैतिक स्थिति की तरह भारत की धार्मिक स्थिति भी उस समय बहुत डांवाडोल हो रही थी। यह तो हम पहले ही लिख आए हैं कि, महाराज कनिष्क के कुछ समय पश्चात् से ही बौद्ध धर्म का पतन और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हो गया था। फिर भी उस समय भी देश में प्रधानता बौद्धधर्म की ही थी।

यात्री हजारो की संख्या मे बढ़ रहे थे। तात्पर्य्य यह कि, उस समय के भारत में धार्मिक धींगाधींगी भी बहुत बढ रही थी।

मतलब यह कि, छठवी और सातवी शताब्दी में भारतवर्ष अशान्ति का घर हो रहा था। इसी भयङ्कर परिस्थिति में सम्राट् हर्षवर्द्धन का जन्म हुआ।

हर्षवर्द्धन का जन्म।

हर्ष-वर्द्धन स्थाणवीश्वर के राजा प्रभाकरवर्द्धन के कनिष्ट पुत्र थे। हर्षवर्द्धन के जन्म के विषय मे प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट अपने हर्षचरित मे लिखते है कि.—

"एक समय रानी यशोमती (प्रभाकर वर्द्धन की रानी) और प्रभाकर वर्द्धन रात्रि के समय सुख पूर्वक सोये हुए थे। एकाएक रानी यशोमती की निद्रा भङ्ग हुई, और वह "भगवन्! रक्षा करो! रक्षा करो!" कहकर चिल्ला उठी। राजा ने सजग होकर उसके चिल्लाने का कारण पूछा। तब रानी ने कहा कि, "भगवन! मुझे हाल ही मे एक विचित्र स्वप्न दिखाई दिया। मैंने देखा कि, कुण्डल कवच और शस्त्रधारी दो प्रतापी राजकुमार सूर्य्य मण्डल से उतरे। उनके पीछे २ एक सुन्दरी कन्या भी थी। उन्होंने यहां आकर मेरा पेट चीरा और उसमें प्रवेश करने की कोशिश करने लगे। यह देख कर मै भयभीत होकर चिल्ला उठी।" इस स्वप्न को सुन कर राजा प्रभाकर वर्द्धन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रानी को सान्त्वना देते हुए कहा "सुभगे! यह स्वप्न विषाद सूचक नहीं, प्रत्युत बहुत ही आनन्द सूचक है। सूर्य्य

देव हम पर प्रसन्न हुए हैं। वे तुम को शीघ्र ही तीन सन्तानों की माता कहलाने का गौरव प्रदान करेंगे।"

उपरोक्त कथन के अनुसार क्रमशः राजा को पहले राज्य वर्द्धन और दूसरे हर्षवर्द्धन नामक पुत्र एवं तीसरे राज्यश्री नामक कन्या प्राप्त हुई।

बाल्यकाल इन तीनों का बड़े ही आनन्द से व्यतीत हुआ। इनका विद्याध्ययन भी बहुत उत्तम ढङ्ग से हुआ था। भारतीय इतिहास के अन्दर ये ही सम्राट् एक ऐसे नजर आते हैं जो सम्राट् के साथ २ कवि भी थे। इनकी कविता इतनी सुन्दर, इतनी काव्यमय और इतनी प्रतिभा सम्पन्न होती थी कि, आज भी इनका नाम भारतीय काव्य के इतिहास में बहुत ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित होता है। इनके लिखे हुए कई ग्रन्थों में से नागानन्द, रत्नावली, और प्रियदर्शिका इस समय भी प्राप्त हैं। जैसे ये विद्वान थे वैसे ही विद्वानों का सत्कार करने में भी अग्रगण्य थे। महाकवि बाणभट्ट इन्हीं के आश्रित थे. और इनसे बहुत सी सम्पत्ति भी मिली थी। और बाणभट्ट ने हर्षचरित नामक पुस्तक में उनका चरित्र गूंथ कर इनका नाम अमर कर दिया है। इसके अतिरिक्त ये चित्र विद्या में भी बड़े निपुण थे। इनकी चित्र विद्या का नमूना इनके [illegible] के [illegible] में जो [illegible] संवत् [illegible] में खुदवाया गया था, उनके हस्ताक्षरों में पाया जाता है।

राज्यश्री की शिक्षा का बहुत उत्तम प्रबन्ध किया गया था। [illegible] [illegible] भी बड़ी विदुषी निकली। इसका विवाह मौखरीवंश (कन्नौज के) के राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ।

हर्षवर्द्धन का राज्यारोहण।

सन ६० ५–६ ईस्वी से कुछ पूर्व प्रभाकर वर्द्धन की दाह-ज्वर से अचानक मृत्यु हो गई। रानी यशोमती पति को मरणासन्न देख कर पहले ही जल चुकी थी। राज्य वर्द्धन उस समय हूणों से युद्ध करने के लिए गये हुए थे। हर्ष वर्द्धन को पिता की मृत्यु से वहुत दुःख हुआ। वे अत्यन्त कातर हो उठे। कुछ समय पश्चात् राज्यवर्द्धन भी आ पहुँचे। उन्हें भी पिता की मृत्यु से अत्यन्त दुःख हुआ। यहां तक कि, वे राज्य की ओर से भी उदासीन हो गये। वे हर्ष को सिंहासनासीन करके वानप्रस्थ होना चाहते थे। हर्पवर्द्धन और उनके मन्त्री उन्हें ऐसा करने के लिए रोकने की चेष्टाएँ करते थे।

इतने ही में एक दिन समाचार आया कि, प्रभाकर-वर्द्धन की मृत्यु का समाचार सुन कर मालव देश (जिसे प्रभाकर वर्द्धन ने जीता था) का राजा विरोधी हो उठा है। उसने कन्नौज पर चढ़ाई करके उनके वहनोई गृहवर्म्मा को मार डाला है। और उनकी वहन "राज्यश्री" कारगार के अन्दर डाल दी गई है।

इस समाचार को सुनते ही राज्यवर्द्धन आग वबूला हो उठे। वे क्रोध के आवेश में अपने सव विचारों को भूल गये। और तत्काल १०००० सवारों को साथ मे लेकर उन्होंने मालवे पर चढ़ाई की। सहज ही में उन्होंने मालवा के राजा को परास्त कर दिया। पर गौड़ के राजा शशाङ्क ने उन्हें मीठी २ वातों में भुलाया। देकर धोखे से मार डाला। राज्यश्री भी इतने में अवसर

पाकर कारागृह से छूट गई। पर वह भाई के पास न जाकर पहाड़ पर चली गई।

हर्ष पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। शोक, चिन्ता, नैराश्य और क्रोध की प्रवृत्तियों ने उसके हृदय मे भयङ्कर तहलका मचा दिया। वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। पर शीघ्र ही सेनापति सिंहनाद के उत्साहित करने पर इनके हृदय में प्रतिहिंसा की प्रबल अग्नि धधक उठी। उन्होने उसी समय तलवार पर हाथ रख कर प्रतिज्ञा की कि—

"यदि परिगणितैरेव वासरैर्निर्गौड़ा न करोमि मेदिनी ततः पीतसर्पिषी पतङ्ग इव पातयाम्यात्मानम्"।

(अर्थात—यदि थोड़े दिनों में मैं पृथ्वी से गौड के राजवंश को निर्मूल न कर दूँ तो पतङ्ग की तरह आग में कूद कर जल मरूँगा।)

इसी समय भण्डि आदि खास २ मन्त्रियों के अनुरोध से हर्षवर्द्धन सिंहासन पर आसीन हुए और सन ६०६ में उन्होंने अपने नाम का एक नया संवत् चलाया।

अब हर्षवर्द्धन ने अपने दो कर्त्तव्य निश्चित किये (१) अपनी बहन राज्यश्री को खोज करवाना और (२) शशाङ्क से प्रतिहिंसा लेना।

राज्यश्री का पता लगाया। जिस समय हर्षवर्द्धन उसके पास पहुँचे उस समय वह अपने जीवन से उदासीन होकर अपनी सखियों के साथ जलकर प्राण देने के लिए उतारू हो रही थी। सामने ही चिता धाँय २ जल रही थी। राज्यश्री उसमें कूदने ही को थी कि, हर्षवर्द्धन वहाँ पर पहुँच गये। उन्होंने उसे समझा बुझा कर शान्त किया। इसपर राज्यश्री ने जलने का विचार तो छोड़ दिया, पर वह घर चलने को राजी न हुई। उसका इरादा वैराग्य ग्रहण कर अपने शेष जीवन को शान्ति पूर्वक जगल मे व्यतीत करने का हुआ। पर हर्षवर्द्धन ने उसको बहुत समझा बुझा कर रोका, और वे उसे राजधानी मे ले आये।

राज्यश्री को राजधानी मे पहुँचाते ही हर्ष को अपने दूसरे कर्तव्य को पूरा करने की चिन्ता हुई। और उसके साथ [illegible] साथ उन्हे भारत की तत्कालीन दुर्गति का भी खयाल हो आया। उनके आगे चन्द्रगुप्त और अशोक कालीन भारतवर्ष के एकच्छत्री साम्राज्य का चित्र घूमने लगा। उन्होंने फिर से एक बार-चन्द्रगुप्त की तरह भारत को एक सूत्र में बाँधने का इरादा किया। उन्होंने सोचा कि, भारत की ये बिखरी हुई शक्तियाँ उसी हालत में केन्द्रीभूत हो सकती हैं, जब इन पर एकच्छत्री साम्राज्य हो जाय। इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने शीघ्र ही भारतवर्ष में एक महा साम्राज्य की नींव डालने का पवित्र संकल्प किया।

सचमुच हर्ष के समान राजा के लिए इस संकल्प को पूरा करना अत्यन्त दुःसाध्य था। जिसमें भी खास कर उन परिस्थितियों में जिनमें हर्षवर्द्धन को काम करना था। पर हर्षवर्द्धन का उत्साह, उनकी वीरता, उनकी बुद्धिमानी उनकी विद्या और

उनकी महत्त्वाकांक्षा इतनी बलवती थी कि, उन्हें इतना भयङ्कर काम भी साधारण जान पड़ता था। सचमुच नीतिज्ञों का यह कथन है कि, "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः" बिलकुल सत्य है। हर्षवर्द्धन को अपनी कमजोरी का खयाल बिलकुल ही न था, यह बात नहीं है। पर ज्यों ही उन्हें अपनी कमजोरी का खयाल आता, त्यों ही चन्द्रगुप्त का चित्र उनके सामने घूम जाता था, वे तत्काल उत्साहित हो उठते थे। ऐसे उत्साही पुरुषों ही के लिए शायद बाणभट्ट ने निम्नलिखित शब्द लिखे।

अंगनवेदि वसुधा कुल्या जलधिः स्थलीव पातालम वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य।

(प्रतिज्ञाबद्ध वीर की दृष्टि में सारी वसुधा घर के आंगन के समान, सागर क्षुद्र नदी के तुल्य, और सुमेरु वल्मीक (मिट्टी का ढूहा) की तरह दिखाई देता है।

कहने का मतलब यह है कि अन्त में हर्षवर्द्धन का दिग्विजय करने का विचार निश्चित हो गया।

साफ़ ज़ाहिर होता है कि, वे लोग दिग्विजय के कुलक्षेत्र को भारत के ही अन्तर्गत समझते थे। जो कुछ भी हो, यह चर्चा यहां पर असामयिक है, अतः हम इसे यहीं पर समाप्त करते हैं।

हर्षवर्द्धन ने दिग्विजय प्रारम्भ किया। उन्होंने पहले छोटे २ राज्यों को जीत कर अपने राज्य में मिलाया। सबसे पहले उनका युद्ध शशाङ्क से हुआ। लगभग १२ वर्ष तक यह राजा उत्पात मचाता रहा। पर अन्त मे इसका राज्य हर्ष के राज्य मे मिला लिया गया।

उसके पश्चात् सम्राट् हर्षवर्द्धन ने पूर्वीय पंजाब और बंगाल का अधिकांश भाग जीत लिया था।

उसके बाद वल्लभी जीता गया। वल्लभी के राजा दूसरे ध्रुवसेन ने पहले तो भड़ौच के राजा से सहायता माँगी पर अन्त में ध्रुवसेन और भडौंच के राजा दोनो ही को हर्ष का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। आनन्दपुर, कच्छ और सूरत भी इसी समय मे जीते गये।

इसके बाद बङ्गाल की खाड़ी के पास का प्रदेश जीता गया। इसी समय में आसाम के प्रतापी नरेश ने भी हर्ष का आधिपत्य स्वीकार किया।

हर्ष के पास ५००० हाथी, २०००० सवार, ५०००० पैदल सेना थी, पर हाथियों की सेना बढते २ साठ हज़ार और सवारों की एक लाख हो गई थी।

पूर्वीय पंजाब और बङ्गाल को विजय कर लेने पर हर्षवर्द्धन की दृष्टि दक्षिण के प्रदेश पर पड़ी। उस समय दक्षिण में महा

प्रतापी चालुक्य वंश का राज्य था। जिस प्रकार हर्ष का प्रताप उत्तर में था, उसी प्रकार उसका प्रताप दक्षिण में था। या यों कहिए कि हर्ष उत्तर का सम्राट् था तो द्वितीय पुलकेशी दक्षिण का सम्राट् था। हर्षवर्द्धन ने पूरी तैयारी के साथ दक्षिण पर चढ़ाई की। दोनों नरेशों में मुठभेड़ हुई। जिसमें हर्षवर्द्धन पराजित हुए। उसी समय से नर्मदा नदी उनके राज्य की दक्षिणा सीमा हो गई।

यद्यपि हर्ष के राज्य का विस्तार चन्द्रगुप्त और अशोक के बराबर नहीं हुआ था तथापि इस बात का ख़याल करते समय यह भी मद्दे नज़र रखना चाहिए कि, चन्द्रगुप्त के समय की परिस्थिति से हर्षवर्द्धन के समय की परिस्थिति कितनी अधिक नाज़ुक थी? चन्द्रगुप्त के समय में भी भारत पर विदेशी आक्रमण हो चुके थे पर हर्षवर्द्धन के समय विदेशियों की जितनी धूमधाम भारतवर्ष में हो गई थी, उसकी चौथाई भी चन्द्रगुप्त के समय में न थी। इसके अतिरिक्त चालुक्य राज्य के समान विशाल साम्राज्य से भी चन्द्रगुप्त को सामना करने की ज़रूरत न पड़ी थी। असल में देखा जाय तो हर्षवर्द्धन की दिग्विजय में [illegible] यह बात बहुत ही बड़ा बाधक हुआ। इन सब बातों के [illegible] चन्द्रगुप्त के पास और भी एक ऐसी शक्ति थी जिसने उसे साम्रा-ज्य संगठन में बहुत बड़ी सहायता [illegible] [illegible] चाणक्य के रूप में। यदि [illegible] [illegible] का जो गौरवपूर्ण [illegible] [illegible] कौन सह सकता है। हर्षवर्द्धन के [illegible] [illegible] हर्ष ने [illegible]

साम्राज्य को बनाया था। उनकी मृत्यु के बाद ही वह साम्राज्य बालू की भींत की तरह गिर कर तीन तेरह हो गया। हर्षवर्द्धन ने बहुत चेष्टा की थी कि, देश में फिर से नवजीवन सचार हो, लोगों मे जातीयता की भावना पैदा हो पर देश के दुर्भाग्य से हर्ष इस वात में कृतकार्य्य न हो सके। हर्ष ने अपने बाहुबल से इतने वड़े साम्राज्य को अवश्य जीत लिया पर वे लोगो के हृदय को न जीत सके। उन्होंने एकच्छत्री विशाल साम्राज्य की प्रतिमा अवश्य बना कर तैय्यार कर दी, पर वे चन्द्रगुप्त की तरह उसमें प्राणप्रतिष्टा न कर सके। और इसी कारण वे जहां तक जीवित रहे वहां तक साम्राज्य भी बना रहा। ज्यों ही उनकी मृत्यु हुई साम्राज्य भी बिखर गया।

दैशिक शास्त्र का नियम है कि, जब किसी भी देश का पतन होना प्रारम्भ होता है तो सब से पहले उस देश का अथवा वहाँ पर बसने वाले मनुष्यों के चरित्र का पतन होने लगता है। लोगों का मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है, जाति की जातीयता भ्रष्ट हो जाती है। रह जाता है केवल स्वार्थ, जो जाति, और व्यक्ति में घुस कर देश को पतन की ओर ढकेलता है। जहाँ तक जाति के अन्दर चिति (दैशिक शास्त्र का एक तत्त्व) और विराट् शेष रहते हैं, वहाँ तक कभी उसका पतन नहीं हो सकता। चिति और विराट् के नष्ट होते ही जाति अपने आपको नहीं सम्हाल सकती। क्या नैतिक दृष्टि से; क्या आर्थिक दृष्टि से, और क्या राजकीय दृष्टि से चारों ओर से उसका पतन हो जाता है। और अन्त में वह जाति किसी चिति और विराट् सम्पन्न जाति की गुलाम होकर रहती है।

हर्ष के पश्चात् उपरोक्त सब बातें इस देश मे पाई जाने लगी थी। जिले २ में अलग २ राज्य हो गये थे। गाँव के बाहर निकले, बस विदेश हो गया। धार्मिक उमङ्ग भी लोगों के हृदय में नष्ट हो चुकी थी। बौद्ध धर्म धीरे २ सनातन धर्म में विलीन होने लग गया था। पुराने वैभव की स्मृति अब भी स्नेहहीन दीपक की तरह थोड़ी २ टिमटिमा रही थी। वैदिक धर्म की शक्तियाँ बौद्ध धर्म को नष्ट करने में लगी हुई थी। इस तरह धार्मिक दृष्टि से भी भारत का पतन हो चुका था। नैतिक पतन हुआ। धार्मिक पतन भी हुआ। रहा राजकीय पतन सो कई अंशों में तो वह भी हो चुका था, पर फिर भी उनमें अभी कुछ बाकी था। वह बाकी भी कुछ समय के बाद पूरी हो गई। इधर तो यह हो रहा था, उधर उसी समय अरबस्तान के अन्दर एक ऐसी घटना हुई, जिसने थोड़े ही समय में संसार के इतिहास का काया पलट कर दिया। वह घटना और कुछ नहीं थी, वह इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे। सन ६२२ का साल संसार के एक नवीन

उनके धर्म में मुसलमान मुसलमान में कोई भी भेद भाव नही रक्खा गया है। दीन के नाम पर प्रत्येक मुसलमान को मर जाना चाहिए, यह उपदेश कुरान की आयतों मे साफ़ तौर से लिखा हुआ है। इस धर्म ने अरबकी अर्द्ध सभ्य जातियों में नवजीवन का संचार कर दिया। इस धर्म के सिंहनाद सुनते ही वहां के मृत प्राय लोगों में प्राण प्रतिष्ठा हो गई। यह धर्म क्या चला मानों उन लोगो के हाथ ऐहिक और पार लौकिक सुखों की कुंजियां हाथ लग गई। कुछ ही समय के पश्चात् इस संगठन ने विस्तृत रूप धारण किया। और अन्त मे हिंदुस्थान पर भी इस धर्म की दृष्टि पड़ी।

इस तरह इस काल में एक ओर तो असभ्य जातियां नये जीवन, नई शक्ति, और नये उत्साह के साथ उठ रही थी, दूसरी ओर वे सभ्य जातियां जो प्राचीन सभ्यता की स्तंभ स्वरूप थी, अपने ही हाथों अपनी समाधियां बना रही थी। इसके पश्चात साम्राज्य का जो काया पलट हुआ उसे इतिहास बतला रहा है।

हर्षवर्द्धन की मृत्यु

सन् ६४८ ईस्वी का साल भारत के लिए बड़ा ही दु:खप्रद था। उसी वर्ष मे हिंदुस्थान के अन्तिम सम्राट् हर्षवर्द्धन की मृत्यु हुई। उसी साल से भारत का पतन-काल प्रारंभ हो गया। प्रारंभ तो पहले ही हो चुका था, पर हर्षवर्द्धन ने अपनी बुद्धिमानी के बल से उस गिरती हुई इमारत को अपने हाथों के बल ठहरा रक्खा था। उनका पतन होते ही वह कच्ची इमारत बालू के ढूँह की तरह गिर पड़ी।

हर्षवर्द्धन के मरते ही उसके अर्जुन नामक सेनापति ने राजवंश को हटा कर स्वयं राज सिंहासन ग्रहण किया। इसके राजा बनते ही बहुत से अधीन राज्य फिर से आजाद हो गये। हर्षवर्द्धन ने अपने जीवन काल मे चीन के साथ एक राजनैतिक मैत्री की थी। उसी के फल स्वरूप चीन का राजदूत "वाङ्गह्युएनत्सें" तीस सवारों के साथ हर्ष के राज दरबार में आ रहा था। इसी बीच उसके पहुँचने के पहले ही हर्षवर्द्धन की मृत्यु हो गई। इधर अर्जुन ने जब यह बात सुनी तो उसने चीनियों पर धावा कर दिया। इस आकस्मिक विपत्ति से ये सब लोग घबरा गये। केवल वाङ्गह्युएन और उसके एक साथी ने किसी प्रकार भाग कर प्राण बचाए, बाकी उसके २८ साथी वहीं पर मार डाले गये। यहां से वाङ्गह्युएन नेपाल पहुँचा। नेपाल उन दिनों तिब्बत के राज्य में था। वहां की राजमहिषी चीन की राजकुमारी थी। उन्होंने वाङ्ग को ८००० सिपाहियों की सहायता दी। इसी सेना की सहायता से वाङ्गह्युएन ने तिरहुत को जीता, वहां पर उसने तीन हजार सिपाहियों को काट डाला और १०००० को जल में डुबा दिया। इसके बाद अर्जुन और उसके कुटुम्ब को भी वाङ्ग ने पकड़ लिया। केवल ८००० सेना के बल से उसने १२००० सिपाहियों को कैद किया, [illegible] पशु [illegible] हांका, और ५८० नगरों पर उसने अधिकार कर लिया।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने चालीस वर्षों के [illegible] परिश्रम से जिस [illegible] बड़े विशाल साम्राज्य की सृष्टि की थी, वह [illegible] में [illegible] विशाल साम्राज्य [illegible] के गर्भ में लीन हो गया। [illegible]

चित्र, जो आज भी इतिहास के पृष्ठो पर अङ्कित है। हा दुर्दैव।

सम्राट् हर्षवर्द्धन का शासन

सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय में प्रजा से बहुत हलका कर लिया जाता था। कृषकों के लाभ का छटवां हिस्सा लगान स्वरूप लिया जाता था। हर्षवर्द्धन के समय मे राजकीय आमदनी का सब से बड़ा ज़रिया यही मालगुज़ारी थी।

मालगुज़ारी अथवा दूसरे प्रकार के करो द्वारा राज्य मे जो आमदनी होती थी उसको चार भागो में विभक्त कर दिया जाता था। एक भाग के द्वारा सरकारी नौकरों का वेतन चुकाया जाता था। दूसरा भाग विद्वानो और गुणियो के आदर सत्कार मे खर्च होता था, तीसरे भाग के द्वारा धार्मिक खर्च और चौथे से राजा के दूसरे २ खर्च चलते थे।

एक डिपार्टमेन्ट ऐसा खोला गया था जिसके द्वारा प्रत्येक प्रान्त मे ऐसे २ कर्मचारी भेजे जांय जो उस प्रान्त में होनेवाली तमाम अच्छी बुरी घटनाओ को नोट कर लिया करें।

पुलिस का प्रबध उस समय बहुत अच्छा था। यद्यपि हूणों वगैरह के आक्रमण से जनता मे कुछ विशृंखलता आ गई थी; डाके और चोरी भी बढ़ने लग गई थी; पर दण्ड विधान की सख्ती और पुलिस के सुप्रबन्ध से वह शीघ्र ही दूर हो गई। सड़को का प्रबन्ध उस समय अच्छा न था।

हर्षवर्द्धन के समय में मन्त्रियो के अधिकार बहुत बढ़ गये थे। यों तो चन्द्रगुप्त के समय मे भी मन्त्रियों का बहुत आदर था, तथापि हर्षवर्द्धन के समय में वह और भी अधिक बढ़

[illegible] था। मन्त्रियों के परामर्श के बिना राजा कोई भी महत्व-पूर्ण कार्य्य एकाएक नहीं करता था।

मतलब यह है कि हर्षवर्द्धन इतने बड़े साम्राज्य का शासन [illegible] योग्यता-पूर्वक करते थे। साल भर में वर्षा ऋतु को छोड़ [illegible] वे प्रायः दौरे पर ही रहा करते थे। राज्य के सभी निवा-[illegible] को सम्राट् के सन्मुख अपने सुख दुख निवेदन करने का अवसर मिला करता था। हर्ष बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से प्रजा की मनोवृत्तियों का अध्ययन करके उनके अनुकूल कार्य्य करने की [illegible] किया करते थे। उन्होंने देश में एक राष्ट्रीयता स्थापन [illegible] के लिये प्रयाग के अन्दर त्रिवेणी के तीर पर एक मेला [illegible] प्रारम्भ किया था। प्रति पांचवें वर्ष यह मेला पड़ता था। [illegible] को किसी प्रकार का राजनैतिक रूप देना उचित न [illegible] कर उन्होंने धार्मिक रूप ही देना अधिक पसन्द किया। [illegible] का प्रधान उद्देश्य दान देना रक्खा गया। हर्षवर्द्धन [illegible] इस मेले में उपस्थित रह कर साधारण जनता की मनो-[illegible] की थाह लेते रहते थे। उन्होंने ऐसे अवसरों पर [illegible] झगड़ों को शान्त भी किया। गङ्गा और यमुना के [illegible] एक रेतीले विशाल मैदान में यह मेला पड़ा करता था।

धार्मिक क्रियाएँ प्रारम्भ हुईं। पूजा वगैरह हो चुकने पर हर्ष ने दान देना प्रारंभ किया। पहले दस हजार बौद्ध भिक्षुओं को एक महाभोज दिया गया। उसके पश्चात् उन सबको सौ २ अशर्फी एक २ मोती और एक २ सूती वस्त्र दक्षिणा स्वरूप देकर विदा किया। उसके पश्चात् एक मास तक ब्राह्मण, जैन आदि भिन्न २ मतों के साधुओं को दान दिया गया। बाद में एक मास तक सभी अनाथ, रोगी, अपाहिज आदि लोग दान पाते रहे।

अन्त में सम्राट् ने राजकीय विभाग की आवश्यक सम्पत्ति को छोड़ कर गत पांच वर्षों में एकत्रित किया हुआ सब धन बांट दिया। यहां तक कि उन्होने अपनी निजि सम्पत्ति भी सब की सब बाँट दी। पहनने के लिये वस्त्र भी अपनी बहन से भिक्षा में लेकर उन्होने पहना। वस्त्र पहन कर उन्होने बड़े ही प्रसन्न चित्त से दसों दिशाओं के बुद्धों की पूजा की।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युएनसङ्ग

उपरोक्त मेले मे जिस समय हर्षवर्द्धन गये थे उस समय प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युएनसंग भी उनके साथ थे। ह्युएनसंग बौद्ध-धर्म के बड़े प्रकाण्ड विद्वान थे। नालन्द के विश्वविद्यालय में रह कर इन्होने योगशास्त्र का अध्ययन किया था। जिस समय नालन्द में ये योगाभ्यास कर रहे थे उसी समय हर्षवर्द्धन ने इन्हें कई बार बुलवाया पर योगाभ्यास छोड़ कर इन्होंने वहां जाना अस्वीकार कर दिया। हर्षवर्द्धन के पश्चात् एक बार आसाम के राजा भास्करवर्म्मा ने इन्हे बुलाया। पहले तो इन्होंने जाने से इनकार कर दिया, पर अन्त में उनके बहुत

आग्रह करने पर ये उनके यहां गये। यह सुन कर हर्षवर्द्धन को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने भास्करवर्म्मा को लिखा कि, ह्युएनसंग को तुरंत हमारे पास भेज दो। पहले तो भास्करवर्म्मा राजी न हुए, पर अंत में बहुत धमकी देने पर वे स्वयं ही उन्हें लेकर हर्ष के राजदरबार में चले आये।

यों तो पहले ही से हर्षवर्द्धन को धर्म पर बहुत रुचि थी, पर ह्युएनसंग के सत्संग से वह बहुत अधिक बढ़ गई। बौद्धों का एक संघ नियुक्त हुआ था जिसका प्रतिवर्ष अधिवेशन होता था। ह्युएनसंग के साथ होने के पूर्व सम्राट् हीनयान मतानुयायी थे, पर ह्युएनसंग के कई प्रमाणों ने महायान पंथ को उत्तम साबित कर दिया। इस पर हर्षवर्द्धन ने कई दार्शनिकों को ह्युएनसंग से शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया। पर पन्द्रह दिन तक निरंतर घोषणा करने पर भी जब कोई ह्युएनसंग से शास्त्रार्थ करने को तैय्यार न हुआ तो सब लोगों ने ह्युएनसंग को विजयी माना, और तदनुसार सम्राट् ने और उनकी प्रजा के कई लोगों ने महायान पंथ को स्वीकार किया।

उस सभा के सभापति ह्यूएनसङ्ग ही बनाये गए थे। उन्होंने सारी जनता को इस आशय का एक चैलेञ्ज दिया कि, "जो कोई मेरे सिद्धान्त अथवा तर्कों को गलत साबित कर देगा, उसे पूर्ण अधिकार है कि वह उसी समय मेरे सिर को काट डाले"। बहुत दिनो तक शास्त्रार्थ हुआ, पर ह्यूएनसङ्ग को कोई भी पराजित न कर सका।

इधर तो शास्त्रार्थ वगैरह का पचड़ा खतम हो रहा था, लोग हर्षोल्लास मे मग्न थे, उधर एकाएक मण्डप मे आग लगी। मण्डप का एक भाग धांय २ कर जलने लगा। लोग होश हवास भूल कर इधर उधर भागने लगे। इसी धमाचौकड़ी मे एक व्यक्ति छुरा लेकर हर्षवर्द्धन को मारने के लिये दौड़ा। परन्तु वह तुरंत ही पकड़ लिया गया। उससे मालूम हुआ कि यह सब करतूत धर्म द्वेषी ब्राह्मणों की है। ब्राह्मणों ने ही उस मण्डप में आग लगवाई है। इस पर कई ब्राह्मणो को फांसी दी गई और कईयों को देश निकाला।

कई लेखकों का अनुमान है कि, यह सब हर्षवर्द्धन की चालबाजी थी। उस व्यक्ति को धमकी वगैरह देकर उन्होंने ब्राह्मणों के विरुद्ध बनावटी प्रमाण इकट्ठे कर लिये। और धर्मांधता के वशीभूत होकर कई निरपराध ब्राह्मणों को मरवा डाला। इस कथन की पुष्टि में वे एक और घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि—"मुलतान में एक बार हर्षवर्द्धन ने लकड़ी का एक उत्तम मकान बनवाया। और उसमें बड़े ही आदर सत्कार के साथ कई पारसी उपदेशकों को रक्खा। अन्त में एक दिन धोखे

है उसने उस मकान में आग लगाकर १२००० निरपराध मनुष्यों की हत्या करवा डाली।

दोनों बातों में से कौनसी बात सत्य है यह तो नहीं कहा जा सकता। पर हर्षवर्द्धन के समान उदार नरेश के द्वारा ऐसा हेय कार्य सम्पन्न हो सकता है इस बात का समर्थन हमारा अनुमान तो नहीं कर सकता।

ह्यूएनसङ्ग का वर्णन

मेगास्थनीज ही की तरह ह्यूएनसङ्ग ने भी तत्कालीन भारत-वर्ष का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। राज्य-प्रबन्ध के विषय में उसने जो कुछ लिखा है उसका सार हम ऊपर लिख आए हैं। शेष अन्य बातों का संक्षिप्त रूप में नीचे विवेचन कर देते हैं।

विद्या-विभाग

का पालन करते हुए विद्याध्ययन करते थे, उसके पश्चात् गुरु-दक्षिणा चुका कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते थे।

शिक्षा प्रायः मौखिक ही हुआ करती थी। उस समय के अध्यापकों की प्रशंसा करते हुए चीनी यात्री ह्यूएनसङ्ग लिखते हैं कि, वे आलसियों को कर्मण्य और मन्द बुद्धियों को तीव्र बनाते थे। इन अध्यापकों के अतिरिक्त उस समय परिव्राजक भिक्षु भी बहुत काम करते थे।

उस समय कई स्थानों पर बड़े २ विश्वविद्यालय बने हुए थे। जिनमें तक्षशिला, काशी, उज्जैन और नालन्द के विश्वविद्यालय बहुत ही प्रसिद्ध थे। तक्षशिला में वैद्यक की, उज्जैन मे ज्योतिष की और नालन्द मे सभी शास्त्रों की उच्चतम पढ़ाई होती थी। पाठकों की जानकारी के निमित्त हम यहां पर बहुत ही संक्षिप्त में दो विद्यालयो का विवेचन कर देते हैं। इनके विवेचन से केवल हर्षवर्द्धन के समय के विद्या प्रचार का ही पता न चल जायगा, प्रत्युत पूर्व लिखित सभी सम्राटो के समय के विद्या-विभाग की जानकारी इस विवेचन से हो जायगी। क्योंकि ये विश्वविद्यालय प्रायः सभी सम्राटों से पहिले के बने हुए थे।

तक्षशिला विश्वविद्यालय

ईसवी सन के ६०० पूर्व भारतवर्ष के विश्वविद्यालय की ख्याति सारे संसार में फैली हुई थी। उस समय में यह भारत का सब से बड़ा विश्वविद्यालय था। इसके अन्दर सोलह विभाग थे, जिनमें भिन्न २ प्रकार के सोलह विषयों की शिक्षा दी जाती थी। जो मनुष्य जिस विषय का पारदर्शी विद्वान् होता,

वही उस विषय का प्रोफेसर बनाया जाता था। साहित्य, विज्ञान दर्शन, व्याकरण, राजनीति, धर्म्मशास्त्र, आदि सभी विषयों की पढ़ाई इसमें होती थी। संसार प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कौटिल्य, और प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ने इसी विद्यालय में शिक्षा पाई थी। खास करके वैद्यक विद्या के लिए तो यह विद्यालय अद्वितीय था। बौद्धकाल के सुप्रसिद्ध वैद्य जीवक जिन्होंने राजा बिम्बसार को एक असाध्य बीमारी से मुक्त किया था इसी विद्यालय के विद्यार्थी थे। जीवक ने सात वर्ष तक इस जगत प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में औषधि विज्ञान का अध्ययन किया था। स्वयं बुद्धदेव भी इसी विद्यालय में आत्रेय ऋषि के पास वैद्य-विज्ञान का अध्ययन करने आए थे।

अशोक के समय में इस विद्यालय ने बहुत उन्नति की। उसके पश्चात् इसकी उन्नति उत्तम अवस्था तो न रही फिर भी साधारणतया सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय में भी इसका गौरव अक्षुण्ण बना रहा था।

नालन्द विश्वविद्यालय

समय यह विश्वविद्यालय अपने ज्ञान किरणों को सारे संसार में फैला रहा था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूएनसङ्ग ने भी इस विद्यालय मे विद्याध्ययन किया था। इस विद्यालय की इमारत बड़ी विशाल और सुन्दर थी। उसमें एक ऐसा बृहत् पुस्तकालय था, जिसकी जोड़ का पुस्तकालय तत्कालीन संसार मे कही भी न था। इस विद्यालय मे धार्म्मिक और व्यवहारिक दोनों ही प्रकार की शिक्षाएँ दी जाती थी। बौद्ध धर्म्म सम्बन्धी शिक्षा की प्रधानता होते हुए भी वैदिक-धर्म्म-शिक्षा की उपेक्षा नही की जाती थी। न्याय, दर्शन, व्याकरण, विज्ञान, शिल्प–कला, अध्यात्म, तत्त्वज्ञान आदि कई विषयों की शिक्षा इस विद्यालय में दी जाती थी। इस विद्यालय मे किसी भी प्रकार की मानसिक परतन्त्रता न थी। सभी को अपने २ विचार प्रकाशित करने की बिलकुल आज़ादी थी। फलतः यहां पर तर्कशास्त्र का बहुत अच्छा विकास हुआ था। इसमें दूर २ के विद्यार्थी तर्कशास्त्र में भरती होने के लिए आते थे। पर उनमे से थोड़े से तीव्र मस्तिष्क लोगो को छोड़ कर सब के सब इस गहन विषय से घबरा जाते थे और लाचार होकर दूसरे विषय की शरण लेते थे। बहुत ही कम विद्यार्थी ऐसे निकलते थे जो तर्कशास्त्र को अन्त तक निबाहते थे।

इस विद्यालय में विद्यार्थी बड़े उत्साह से पढ़ते थे। कहीं पर दङ्गा फ़िसाद नहीं होता था। हर्षवर्द्धन के समय मे १००० साधु सूत्र और शास्त्र सम्बन्धी दस ग्रन्थों के पण्डित थे। ५०० ऐसे थे जो २० ग्रन्थों में पारङ्गत थे। ह्यूएनसङ्ग और उसके साथी ५० ग्रन्थों के पण्डित हो गये थे। शीलभद्र नामक

विद्यार्थी सब शास्त्रों में पारङ्गत था। हूएनसङ्ग ने इनको "सद्धर्म्म-कोष" संज्ञा से सम्बोधित किया है।

मतलब यह कि, हर्षवर्द्धन के समय में यहां का विद्या विभाग बहुत उन्नति पर था। स्वयं हर्षवर्द्धन बड़े विद्या-व्यसनी थे। अपनी ही प्रतिभा के बल से उन्होंने हिन्दुस्थान के बड़े २ कवियों में स्थान पा लिया। उनके लिखे हुए "नागानन्द" "रत्नावली" और "प्रियदर्शिका" नामक तीन नाटक आज भी संस्कृत साहित्य के गौरव को बढ़ा रहे हैं।

ग्राम्यशासन।

हर्षवर्द्धन के समय में ग्राम्यशासन का प्रबन्ध बहुत उत्तम था। प्रत्येक ग्राम में एक २ पंचायत या सभा नियुक्त की जाती थी। इसकी देखभाल के लिए राज्य की ओर से एक कर्म्म-चारी नियुक्त रहता था। इसमें अधिकार बहुत ही कम होते थे। कई ग्राम्य सभाओं के ऊपर एक महासभा रहा करती थी। यदि ग्राम्य सभा कभी किसी मामले में त्रुटि करती, तो महासभा उसे दण्डित करती थी। महासभा के सदस्य [illegible] विभागों में विभक्त रहते थे। (१) [illegible] विभाग (२) उद्यान-विभाग

(१) जो आदमी कम से कम दो बीघा ऐसी भूमि का स्वामी हो, जिसका लगान वह सरकार में जमा करवाता है। इसके अतिरिक्त ग्राम मे उसका एक घर बना हुआ हो।

(२) वह कम से कम ३५ वर्ष का और अधिक से अधिक ७० वर्ष का हो।

(३) जो आदमी मंत्र ब्राह्मण पढ़ाने की योग्यता रखता हो, जो एक वेद और एक भाषा जानता हो वह एक बीघा भूमि का स्वामी होने पर भी सदस्य हो सकता है।

(४) जो आदमी मद्य को स्पर्श भी न करता हो।

(५) जो आदमी गत तीन वर्षों में महासभा का सदस्य न चुना गया हो।

इन पांचों ही शर्तों से युक्त वहुत से मनुष्यो के नाम चुन २ कर ग्रामवासी कागज़ के पुर्जों पर लिख देते थे। उन सब पुर्जों को बांध कर मन्दिर के अन्दर लाते थे। वहां पर सब लोग इकट्ठे होकर एक नाबालिग लड़के को चुनते थे। वह लड़का इन सब पुर्जों को बिखेर कर उनमे से मन चाहे तीन पुर्जों को अलग कर देता था। उन तीनो पर जिनके नाम निकलते वे ही महासभा के सदस्य चुने जाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि, चुनाव की यह प्रणाली बिलकुल निर्दोष नहीं, कई अयोग्य आदमी भी चुनाव में घुस सकते हैं, फिर भी उस समय के अनुकूल यह बहुत ही अच्छी थी।

सम्राट् पुलकेशी के पूर्वज

सम्राट् पुलकेशी सोलंकी वंश के क्षत्रिय थे। सोलंकियो के कितने ही ताम्रपत्रों, शिलालेखों और विक्रवांक देवचरित्र से पाया जाता है कि उनका राज्य पहले अयोध्या में रहा और उसके पश्चात् ये लोग दक्षिण मे गये। उदयन के पश्चात् ५९ राजाओं ने अयोध्या में और उसके पीछे १६ राजाओ ने दक्षिण में राज्य किया। उसके पश्चात् सोलंकियो की राजलक्ष्मी कुछ समय तक दूसरो के हाथ में रही। और उसके पश्चात् राजा जयसिंह ने सोलङ्की राज्य की पुनः स्थापना की। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि सोलंकियो का नवीन इतिहास वस्तुतः राजा जयसिंह से ही आरम्भ होता है। जयसिंह ने राठौड़ो तथा अन्यवंश के राजाओ को पराजित कर सोलंकियों के राज्य का पुनरुद्धार किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र रण राग और रणराग के बाद उसका पुत्र प्रथम पुलकेशी सिंहासनारूढ़ हुआ। प्रथम पुलकेशी सोलंकीवंश का बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ। इस राजा ने "वातापी" * नगरी को अपनी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि इसने अश्वमेध, अग्निष्टोम, अग्निचयन, वाजपेय, बहुसुवर्ण और पौण्डरीक नामक यज्ञ किये थे। इसके पश्चात् इसका बड़ा पुत्र कीर्त्तिवर्म्मा ईस्वी सन् ५६७ मे सिंहासनारूढ़ हुआ। एहोल के शिलालेख मे लिखा है कि, इस राजा ने नल, मौर्य्य और कदम्बवंश को नष्ट किया। उस

* वातापी (बादामी) बम्बई अहाते के बीजापुर जिले का बादामी नामक शहर है।

समय में नलवंशी राजा नलवाड़ी* के मौर्यवंशी कौंकण के और कदम्बवंशी राजा उत्तरी कानड़ा प्रदेश के मालिक थे। कीर्त्तिवर्म्मा के पश्चात् उसका छोटा भाई मंगलीश उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने कलचुरी वंश के राजा को पराजित किया।

मंगलीश ने अपने बड़े भाई कीर्त्तिवर्म्मा के पुत्र द्वितीय पुलकेशी को जो कि राज्य का कानूनन हकदार था, राज्य का उत्तराधिकारी न बना कर अपने पुत्र को राज्य देने का यत्न किया, पर इस विषय में वह कृतकार्य्य न हो सका, और अन्त में इसी कारण उसे अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा। इसके पश्चात् हमारे चरित्र नायक द्वितीय पुलकेशी सिंहासनारूढ़ हुए।

पुलकेशी के आगे उन्हें मुँह की खानी पड़ी और वे यहाँ से पराजित होकर वापस लौटे।

पुलकेशी की विजय के वृत्तान्त एहोल के शिलालेख में मिलते हैं। पाठकों की जानकारी के निमित्त हम उस शिलालेख का हिन्दी अनुवाद नीचे उद्धृत करते हैं—

"छत्र भंग होने के अर्थात् मंगलीश के मारे जाने के पश्चात् राज्य पर शत्रुओं का घना अन्धकार छा गया जिसको पुलकेशी ने अपने अतुल प्रताप रूप प्रकाश से मिटाया। ऐसे समय में अवसर पाकर अप्पायिक और गोविन्द (राठौड़ वंशी) अपनी हाथियों की सेना के साथ भीमा नदी के उत्तर प्रदेश पर चढ़ आये। जिनमे से अप्पायिक तो हार कर भाग गया और गोविन्द ने सन्धि का लाभ उठाया। अपनी महान् सैन्य के साथ पुलकेशी ने वरदा नदी के तट बड़े स्मृद्धिवाले वनवासी (कदम्ब वंशियो की राजधानी) के किले पर घेरा डाल कर उसे विजय किया। गंगा वंशी (गंगा वंशी उस समय मैसूर राज्यान्तर्गत गंगवाड़ी के राजा थे) और नागवंशी (मलाबार के राजा) राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार की। कौंकण के मौर्य्य वंशी राजाओं को उसकी प्रचण्ड सेना ने परास्त किया। पश्चिम समुद्र की लक्ष्मी रूपिणी पुरी (कौंकण के मौर्य्य वंश की राजधानी) पर सैकड़ों नौकाओ से हमला कर उसे जीत लिया। लाट (मही और नर्मदा नदी के बीच वाला गुजरात देश का हिस्सा) मालव और गुर्जर के राजाओ ने उसकी अधीनता स्वीकार की। उसने अपरिमित स्मृद्धिशाली अनेक [illegible] वाले राजा श्रीहर्ष की हस्ति सैन्य का संहार कर उसके

र्ष को मिटा दिया। विन्ध्याचल पर्वत के निकट नर्मदा-नदी के तट पर उसने अपनी प्रबल सेना रख छोड़ी थी। अपनी उत्साह शक्ति और प्रभुत्व शक्ति के प्रभाव से उसने ९९००० गाँवों से युक्त तीन देशों से बने हुए महाराष्ट्र प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया (जान पड़ता है यह संख्या बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण है) दूसरे कई राजाओं को जीतने वाले कौशल और कलिङ्ग के राजा उसके सैन्य बल को देखकर भयभीत हो गये। पिष्टपुर (मद्रासप्रान्त-

इतिहास लेखक अपने अरबी ग्रन्थ में लिखता है कि, ईरान के बादशाह द्वितीय खुसरु के छत्तीसवे राज्यवर्ष में उसका दूत एक पत्र और कुछ भेंट की वस्तुएँ लेकर पुलकेशी के राजदरबार में गया। इसके वदले मे पुलकेशी का दूत भी पत्र और सौगात की वस्तुएँ लेकर ईरान गया था।

पुलकेशी का शासन तथा अन्य बातें

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग—जिसका विस्तृत वर्णन हर्ष-वर्द्धन के इतिहास में कर दिया गया है—घूमता घामता सन् ६३९ ईस्वी मे महाराष्ट्र देश में पहुँचा था। अपनी यात्रा के विवरण में उसने वहां की तत्कालीन परिस्थिति और राज्यशासन का वर्णन किया है। हुएनसग लिखता है—"इस देश की परिधि लगभग १००० माइल है। राजधानी के पश्चिम ओर एक वड़ी नदी वहती है। राजधानी की परिधि करीब ६ माईल है। यहां की जमीन उत्तम और उपजाऊ है जिसमें खेती वरावर होती रहती है। आवहवा यहां की ऊष्ण है। लोग सादे, प्रमाणिक, ऊँचे कद वाले, स्वभाव के कठोर, वदला लेने वाले, उपकार का एहसान माननेवाले, और शत्रु के लिए निर्दयी हैं। अपमान करने वाले का वदला चुकाते समय वे अपनी जान की भी परवाह नहीं करते। लेकिन यदि कोई आपत्ति के समय मदद मांगे तो वे अपने सुख दुख की पर्वाह न करते हुए उसकी सहायता को तैय्यार हो जाते हैं। किसी शत्रु से वदला लेने के पूर्व उसे साव धान कर देना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। फिर दोनों शस्त्र लेकर एक दूसरे पर हमला करते हैं, जब एक भाग जाता है तो

देखरेख में युद्ध किया, फिर भी वे यहां की सेना को न जीत सके।"

"यहां के लोग विद्यानुरागी हैं। वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनो के ग्रन्थों को पढ़ते हैं। इस देश में करीब १०० संघाराम हैं जिनमें ५००० साधु रहते है जो महायान तथा हीनयान दोनो मतों को मानने वाले हैं। यहां पर करीब १०० देव मन्दिर हैं जिनमें बहुत से भिन्न २ मतावलम्बी वेद धर्मानुयायी रहते हैं।"

"यहां पर राजधानी के भीतर और बाहर मिला कर पांच स्तूप हैं। जो ४ अतीत बौद्धो के फिरने और बैठने के स्थानो के सूचक हैं। ये सम्राट् अशोक के बनाए हुए हैं। इनके अतिरिक्त ईट और पत्थर के बने हुए स्तूप तो बहुत से हैं। राजधानी से थोड़ी दूर पर एक संघाराम है जिसमें अवलोकितेश्वर बौधिसत्व की पाषाण मूर्त्ति है। उस मूर्त्ति का चमत्कार दूर २ तक प्रसिद्ध है। क्योंकि उसकी गुप्त प्रार्थना करने वालो मे से बहुतो की कामना पूर्ण हुई है।"

"इस देश की पूर्वीय सीमा पर ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला एक पहाड़ है जिसकी श्रेणी बहुत लम्बी चली गई है। इस पर्वत के नीचे के अन्धेरे हिस्से में एक संघाराम बना हुआ है (यह अजण्टा की प्रसिद्ध गुफाओं का वर्णन है जो विंध्याद्रि पर्वत को खोद २ कर बनाई गई हैं) जिसके ऊंचे मण्डप और उसके बाजू के स्थान, चट्टानों को खोद कर भीतर बनाए गए हैं। यह संघाराम अर्हत अचल का बनवाया हुआ है जो पश्चिमी भारत का निवासी था।"

ह्युएनत्संग के इस वर्णन से तत्कालीन परिस्थिति पर साधा-

[illegible] अच्छा प्रकाश पड़ जाता है अतः इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। हां, इतना अवश्य है कि, जिस समय ह्युएनसंग वहां पर गया था, उस समय पुलकेशी राज्य पूर्ण उन्नति पर था। लेकिन यह स्थिति अन्त तक न रही। क्योंकि, तत्कालीन शिलालेखों से मालूम होता है कि, नृसिंह वर्म्मा नामक किसी पल्लववंशी राजा ने पुलकेशी को हटा दिया था। यद्यपि यह शिलालेख पुलकेशी के शत्रुओं का लिखा हुआ है, तथापि उसकी सत्यता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता क्योंकि पल्लववंशी राजा नन्दिवर्म्मा के ताम्रपत्र में भी नृसिंह वर्म्मा को वातापी जीतने वाला लिखा है। इसके अतिरिक्त महा-[illegible] में भी लिखा है कि पुलकेशी और नृसिंह वर्म्मा के बीच घोर युद्ध हुआ था।

केवल नृसिंह वर्म्मा ही उसका शत्रु हो यह बात न थी। [illegible] चोल, पाण्ड्य और केरल के राजा भी नृसिंह वर्म्मा के [illegible] थे। मतलब यह कि, पुलकेशी अपने देहान्त के समय राज्य को बहुत विपत्तिग्रस्त अवस्था में छोड़ गया था?
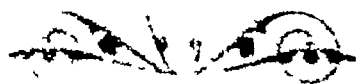
देखरेख में युद्ध किया, फिर भी वे यहां की सेना न
जीत सके।"

"यहां के लोग विद्यानुरागी हैं। वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म
दोनो के ग्रन्थों को पढ़ते हैं। इस देश मे करीब १०० संघाराम
हैं जिनमें ५००० साधु रहते है जो महायान तथा हीनयान
दोनो मतों को माननेवाले हैं। यहां पर करीब १०० देव मन्दिर
हैं जिनमें बहुत से भिन्न २ मतावलम्बी वेद धर्मानुयायी रहते हैं।"

"यहां पर राजधानी के भीतर और बाहर मिला कर पांच
स्तूप हैं। जो ४ अतीत बौद्धो के फिरने और बैठने के स्थानो
के सूचक हैं। ये सम्राट् अशोक के बनाए हुए हैं। इनके अति-
रिक्त ईंट और पत्थर के बने हुए स्तूप तो बहुत से हैं। राज-
धानी से थोड़ी दूर पर एक संघाराम है जिसमे अवलोकितेश्वर
बौधिसत्व की पाषाण मूर्त्ति है। उस मूर्त्ति का चमत्कार दूर २
तक प्रसिद्ध है। क्योंकि उसकी गुप्त प्रार्थना करने वालो में से
बहुतो की कामना पूर्ण हुई है।"

"इस देश की पूर्वीय सीमा पर ऊँचे ऊँचे शिखरो वाला एक
पहाड़ है जिसकी श्रेणी बहुत लम्बी चली गई है। इस पर्वत
के नीचे के अन्धेरे हिस्से में एक संघाराम बना हुआ है (यह
अजण्टा की प्रसिद्ध गुफाओं का वर्णन है जो विंध्याद्रि पर्वत को
खोद २ कर बनाई गई हैं) जिसके ऊंचे मण्डप और उसके बाजू
के स्थान, चट्टानों को खोद कर भीतर बनाए गए हैं। यह संघा-
राम अर्हत अचल का बनवाया हुआ है जो पश्चिमी भारत
का निवासी था।"

हुएनसंग के इस वर्णन से तत्कालीन परिस्थिति पर साधा-

चौहान-साम्राज्य

सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच भारतवर्ष की स्थिति

महाराजा हर्षवर्द्धन तक का क्रम-बद्ध इतिहास हम पाठको की सेवा मे उपस्थित कर चुके हैं। साथ ही हम यह भी लिख चुके हैं कि हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ ही उनका निर्माण किया हुआ साम्राज्य भी बिखर गया था। अब हम पाठको के सम्मुख उसके पश्चात् भारत की जो गति हुई उसका संक्षिप्त विवरण रखना चाहते हैं।

भारतवर्ष पर मुसलमानी आक्रमण

हम पहले लिख आए हैं कि जिस समय संसार की प्राचीन सभ्य जातियाँ अपने हाथो अपने समाधि मंदिर बना रही थीं— जिस समय संसार-प्रसिद्ध आर्य्य-जाति सीढ़ी दर सीढ़ी पतन के गड्ढे की ओर खिसकती हुई जा रही थी, उस समय अरब की अर्द्ध-सभ्य जातियां शीघ्रतम गति से अपनी उन्नति कर रही थी। महम्मूद साहब का नवीन मजहब उस समय संसार के अन्दर एक क्रान्ति उत्पन्न कर रहा था। इस मजहब की कुछ मुख्य २ बातो का विवेचन भी हम ऊपर कर आए हैं।

अस्तु, ज्यों २ इस मजहब का प्रचार होता गया—ज्यों ज्यों इसके अनुयायी बढ़ते गये त्यों २ इस मजहब में राजनीतिकता भी घुसने लगी। अब इस मजहब के अनुयायियों को अपना निजी प्रदेश बहुत सकीर्ण मालूम होने लगा। उन्हें उनके हृदय में दूसरे देशों को विजय कर, अपना राज्य बढ़ाने और उन देशों को लूटने की धुन सवार हुई और इसके साथ ही उनकी गतिदृष्टि भारतवर्ष पर भी पड़ी।

महम्मद कासिम की चढ़ाई

सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच भारतवर्ष की स्थिति

महाराजा हर्षवर्द्धन तक का क्रम-बद्ध इतिहास हम पाठकों की सेवा में उपस्थित कर चुके हैं। साथ ही हम यह भी लिख चुके है कि हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ ही उनका निर्माण किया हुआ साम्राज्य भी बिखर गया था। अब हम पाठको के सम्मुख उसके पश्चात् भारत की जो गति हुई उसका संक्षिप्त विवरण रखना चाहते है।

भारतवर्ष पर मुसलमानी आक्रमण

हम पहले लिख आए हैं कि जिस समय संसार की प्राचीन सभ्य जातियाँ अपने हाथो अपने समाधि मंदिर बना रही थीं—जिस समय संसार-प्रसिद्ध आर्य्य-जाति सीढ़ी दर सीढ़ी पतन के गड्ढे की ओर खिसकती हुई जा रही थी, उस समय अरब की अर्द्ध-सभ्य जातियां शीघ्रतम गति से अपनी उन्नति कर रही थीं। महम्मूद साहब का नवीन मजहब उस समय संसार के अन्दर एक क्रान्ति उत्पन्न कर रहा था। इस मजहब की कुछ मुख्य २ बातो का विवेचन भी हम ऊपर कर आए हैं।

अस्तु, ज्यों २ इस मजहब का प्रचार होता गया—ज्यों ज्यों इसके अनुयायी बढ़ते गये त्यों २ इस मजहब में राजनीतिकता भी घुसने लगी। अब इस मजहब के अनुयायियों को अपना निजी प्रदेश बहुत संकीर्ण मालूम होने लगा। उन्हें उनके हृदय में दूसरे देशों को विजय कर, अपना राज्य बढ़ाने और उन देशों में लूटने की धुन सवार हुई और इसके साथ ही उनकी शनिदृष्टि भारतवर्ष पर भी पड़ी।

मुहम्मद कासिम की चढ़ाई

जिस समय खलीफ़ा इनका सतीत्व नष्ट करने को उतारू हुआ; उस समय इन्होंने एक कौशल रचकर अपने सतीत्व की रक्षा कर ली। इन्होंने खलीफा को बड़ी नम्र भाषा में कहा कि हम आजन्म पर्यन्त आपकी सेवा में रहने को प्रस्तुत थीं। पर खेद है कि दुष्ट मुहम्मद कासिम ने हमें आपके काम की न रक्खा। उसने आपके पहले ही हमारा सतीत्व भ्रष्ट कर दिया है। यह सुनते ही खलीफा आग बबूला हो गया और उसने मुहम्मद कासिम को जीते जी ही मृतक जानवर की खाल में मढ़वा दिया। पर जब सच्ची घटना मालूम हुई तो उसे मुहम्मद कासिम के लिए बड़ा ही दुःख हुआ। और उन लड़कियो पर तो उसे इतना क्रोध आया कि उन्हें बड़ी निर्दयता से मरवा डाला।

मुहम्मद कासिम के आक्रमण के पश्चात् सिन्ध हमेशा मुसलमानों के अधिकार में रहा।

दूसरा मुसलमानी आक्रमण

महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ

मुहम्मद कासिम के आक्रमण के पश्चात् लगभग दो सौ ढाई सौ वर्ष तक भारतवर्ष पर कोई मुसलमानी आक्रमण न हुआ। पर सन् ९८६ में भारतवर्ष पर एकाएक विपत्ति का पहाड़ टूटा। इसी वर्ष गजनी के सुबुक्तगीन नामक अमीर ने बड़े ही जोर शोर के साथ भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उस समय पंजाब में जयपाल नामक राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी भटिण्डा में थी। जयपाल के साथ सुबुक्तगीन की

दो तीन लड़ाइयां हुई। इन लड़ाइयों में उसको तथा उसके साथियों की हार हुई। इसके पश्चात् सन ९९१ में संभवतः कई हिन्दू राजाओं ने एकत्रित होकर कुर्रम उपत्यका के पास सुबुक्तदीन का सामना किया। पर देश के दुर्भाग्य से वहां पर भी इन लोगों की हार हुई। इस पराजय से व्यथित हो राजा जयपाल ने आग में जल कर आत्म-हत्या कर ली। इसके पश्चात् सुबुक्तदीन के पुत्र महमूद गजनवी ने भारतवर्ष पर करीब सोलह आक्रमण और किये जिनमें से १२ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन सब में सोमनाथ के मन्दिर का आक्रमण सब से ही अधिक प्रसिद्ध है। इन सब आक्रमणों में महमूद गजनवी भारतवर्ष से अनुमानातीत सम्पत्ति लूट कर तथा लाखों मनुष्यों को कैद कर ले गया जिनको उसने वहां बहुत ही सस्ते दर में बेच दिया।

वह उस तेज के अभाव के कारण गुलामी के अन्धकार मे पड़ा।

जिस समय अधिकांश भारतवर्ष मुसलमानी आक्रमणों से जर्जरित होकर भयभीत हो रहा था, उस समय भी यहां पर कुछ राज्य ऐसे बचे हुए थे जो अब तक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा बिलकुल निर्भीक चित्त से कर रहे थे, जिनकी प्रजा मे अब तक विदेशी आक्रमणकारियों का भय न घुसा था, और जो अब भी अपने शौर्य्य के सम्मुख संसार की सब शक्तियो को तुच्छ समझते थे। इन राज्यों में से चौहान वंशियो का राज्य भी एक था। यह वंश उस समय उन्नति के शिखर पर आरूढ़ था। आगे जाकर इसी वंश के वंशजों ने अपने राज्य को इतना बढ़ाया कि उस राज्य को यदि साम्राज्य भी कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रसिद्ध सम्राट् पृथ्वीराज भी इसी वंश के वंशज थे। यदि दैव हिन्दुस्थान के अनुकूल होता तो निश्चय था कि यह वंश भी हिन्दुस्थान में एकच्छत्री साम्राज्य की स्थापना कर देता। पर दैव विपरीत था जिससे पांसा उलटा ही पड़ गया और आजाद होने के बदले भारतवर्ष गुलामी के ऐसे गहरे कीचड़ में फंसा कि आज तक वह उसमें से न निकल सका।

अस्तु, इस स्थान पर हम उसी प्रसिद्ध चौहान वंश का संक्षिप्त इतिहास देना आवश्यक समझते हैं।

चौहान वंश का इतिहास

चौहान वंश की उत्पत्ति "चाहमान" नामक एक व्यक्ति से हुई है। इस वंश की उत्पत्ति के इतिहास से इस पुस्तक का कोई सम्बन्ध नहीं। अतः इस विषय को बढ़ा कर लिखना हम व्यर्थ

समझते हैं। इस वंश में सब से पहला प्रसिद्ध व्यक्ति "अजय-
राज" हुआ। अजयराज के पूर्व इस वंश की राजधानी "सांभर"
में थी पर चूंकि इस समय मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो
गये थे और सांभर में कोई ऐसा किला या पहाड़ न था जो ऐसे
आक्रमणों के समय में राजधानी की रक्षा कर सके। इसलिए
अजयराज को अपनी राजधानी ऐसे स्थान पर ले जाने की आव-
श्यकता हुई जो चारों ओर से रक्षित हो और जिस पर एकाएक
बाहरी शत्रु आक्रमण न कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति
करने के लिए उसने [illegible] एक पहाड़ों से रक्षित स्थान पर
"अजयमेर" नामक नगर बसा कर वहां पर किला बनवाया।
यह अजयमेर, आज कल अजमेर के नाम से प्रसिद्ध है।

सुधवा से उत्पन्न तीन पुत्र थे। (१) जगदेव (२) दूसरे के नाम का पता अभीतक नहीं चला और (३) विग्रहराज जिन्हें बीसलदेव भी कहते हैं। गुजरात की कांचनदेवी से एक पुत्र हुआ था जिसका नाम सोमेश्वर था। यही सोमेश्वर प्रसिद्ध सम्राट् "पृथ्वीराज" के पिता थे।

आनाजी ने अजमेर में अपने नाम से एक तालाब बनाया था। यह आजकल आनासागर के नाम से प्रसिद्ध है।

संवत् १२०७ और १२१० के बीच मे किसी दिन राज्य-प्राप्ति की उत्कट लालसा से प्रेरित होकर आनाजी के पुत्र "जगदेव" ने अपने पिता की हत्या कर डाली।

विक्रम संवत् १२०७ के लिखे हुए दो शिलालेख शेखावाटी प्रान्त के जीणमाता के मन्दिर पर खुदे हुए मिले हैं। उनसे तथा चित्तौड़ के किले और पालडी के शिलालेखों से पाया जाता है कि गुजरात के राजा कुमारपाल की अर्णोराज (आनाजी) के साथ विक्रम संवत् १२०७ के आश्विन और कार्तिक मास में लड़ाई हुई। इसके सिवाय उन से यह भी मालूम होता है कि उसके पुत्र विसलदेव ने राज्य पाने के पश्चात् संवत् १२१० की माघ शुक्ल ५ को "हरकेलि" नामक नाटक समाप्त किया। इससे पता चलता है कि या तो पिता को मार कर भी जगदेव अपनी राज्यलालसा पूरी न कर सका और यदि उसने राज्यभोग किया भी तो बहुत थोड़े समय तक क्योंकि १२१० में तो विसलदेव राजा हो ही चुका था।

से मशहूर है। संवत् १२१० में उसने "हरकोलि" नामक नाटक की रचना की। इन दोनों नाटकों को बड़ी २ शिलाओ पर खुदवा कर उसने अपनी पाठशाला में रखवाया जिनमे से ढाई दिन के झोंपड़े को खोदते हुए पांच शिलाओ के टुकड़े एक मकान की नींव में से मिले हैं जो अब राजपूताना के अजायबघर की शोभा को बढ़ा रहे हैं। बीसलदेव ने चौहानो के इतिहास का एक पूरा काव्य कई शिलाओ पर खुदवा कर इसी स्थान पर लगवाया था जिसकी केवल पहली शिला अभी उपलब्ध हुई है। इसमे कई देवी देवताओं की स्तुति के पश्चात् सूर्य्य की स्तुति है और लिखा है कि सूर्य्य के वंश में इक्ष्वाकु, राम, आदि प्रतापी राजा हुए। उसी वंश में चाहमान (चौहान) हुआ। स्तुति मे ही जब इतनी बड़ी शिला भर दी है तो पूरा इतिहास न मालूम कितना बड़ा होगा पर खेद है कि अभीतक केवल एक ही शिला मिली है।

बीसलदेव ने अपने नाम से एक नगर भी बसाया था जो आजकल "बीसलपुर" (जयपुर राज्य मे) नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अजमेर के पास वाला "विसलसर" नामक तलाव भी इन्हीं का बनाया हुआ है।

सम्भवतः संवत् १२२०-२४ के बीच किसी वर्ष मे विसल-देव की मृत्यु हुई। मृत्यु समय इसने अपने उत्तराधिकारियों को सम्बोधन कर कहा—"हिमालय से विन्ध्याचल तक का प्रदेश तो मैंने अपने अधीन कर लिया है, शेष प्रान्तों को अधीन करने का बराबर प्रयत्न करते रहना।"

वीसलदेव के पश्चात उनके बालक पुत्र "अमरगांगेय" सिंहासनारूढ़ हुए। इन्होंने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। पितृघाती जगदेव के पुत्र द्वितीय पृथ्वीराज ने इनसे राज्य छीन लिया। द्वितीय पृथ्वीराज बड़ा ही दानी था। उसने बहुत सा सुवर्ण और कई नगर दान में दिये। इसने बिजोलिया के पास वाले पार्श्वनाथ के मंदिर को "मोराकुरी" नामक ग्राम दान में दिया। सन् १२२६ में इसका देहान्त हुआ और इसकी गद्दी पर "सोमेश्वर" सिंहासनारूढ़ हुआ।

सोमेश्वर

सम्राट् पृथ्वीराज

पृथ्वीराज की बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध उसकी माता "कर्पूरदेवी" अपने मंत्री कादम्बवास (कैमास) की सहायता से करती रही। जान पड़ता है कि सं० १२३९ में पृथ्वीराज ने राज्य का भार अपने हाथ में ले लिया।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है कि, देहली के तोमर वंशी राजा अनङ्गपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अंत में अनङ्ग-पाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिका-श्रम मे तप करने को चला गया। रासो मे अनन्द विक्रम संवत् ११२२ और प्रचलित विक्रम संवत् १२१२–१३ में पृथ्वी-राज का देहली गोद जाना लिखा है। उस समय पृथ्वीराज की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। पर कई प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि उस समय तक पृथ्वीराज का जन्म भी न हुआ था। न तो सोमेश्वर के समय में देहली का राजा अनङ्ग-पाल ही था, और न उसकी कन्या का विवाह सोमेश्वर के साथ

[illegible] हुआ। इसलिए पृथ्वीराजरासो का यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त देहली तो चतुर्थ वीसलदेव के समय से ही चौहानों के कब्जे में आ गई थी। संवत् १२२६ में खुदवाए हुए बिजोलिया के शिलालेख में लिखा है— "[illegible] (देहली) लेने से थके हुए और आशिका (हांसी) [illegible] करने से स्थगित अपने यश को उसने (विसलदेव) प्रतोली २ (प्राय) और वलभी २ (झरोखे २) में विश्रान्ति दी।" अर्थात् देहली और हांसी को जीत कर उसने अपने यश को घर २ [illegible]। देहली के शिवालिक स्तम्भवाले लेख में हिमालय से विन्ध्य तक के देश को विजय करना लिखा है। हांसी के [illegible] पृथ्वीराज दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से [illegible] जाता है कि उस समय वहां का प्रबन्धकर्ता वीसलदेव का [illegible] गुहिलवंशी किल्हण था। सम्भव है कि इसी प्रकार उस समय दिल्ली राज्य भी वीसलदेव के किसी सामंत अथवा रिश्तेदार के हाथ में होगा। तबकात–ई–नासिरी में शाहबुद्दीन [illegible] के साथ की पहली लड़ाई में देहली के राजा गोविन्दराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी के भाले से सुलतान का [illegible] होकर लौटना लिखा है तथा दूसरे युद्ध में जिसमें कि [illegible] पराजित हुए थे उसी गोविंदराज का मारा जाना [illegible] है। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय में [illegible] [illegible] के एक सामंत के अधिकार में थी। [illegible] [illegible] [illegible] है, पर उसमें गोविंदराज के स्थान [illegible] [illegible] है [illegible] फारसी अक्षरों के दोष से ही मूल से भिन्न [illegible] है।

पृथ्वीराज की बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध उसकी माता "कर्पूरदेवी" अपने मंत्री कादम्बवास (कैमास) की सहायता से करती रही। जान पड़ता है कि सं० १२३९ में पृथ्वीराज ने राज्य का भार अपने हाथ में ले लिया।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

पृथ्वीराजरासो मे लिखा है कि, देहली के तोमर वंशी राजा अनङ्गपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अंत में अनङ्गपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिकाश्रम मे तप करने को चला गया। रासो मे अनन्द विक्रम संवत् ११२२ और प्रचलित विक्रम संवत् १२१२-१३ में पृथ्वीराज का देहली गोद जाना लिखा है। उस समय पृथ्वीराज की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। पर कई प्रमाणो से यह सिद्ध हो चुका है कि उस समय तक पृथ्वीराज का जन्म भी न हुआ था। न तो सोमेश्वर के समय मे देहली का राजा अनङ्गपाल ही था, और न उसकी कन्या का विवाह सोमेश्वर के साथ

ही हुआ। इसलिए पृथ्वीराजरासो का यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त देहली तो चतुर्थ बीसलदेव के समय से ही चौहानों के कब्जे में आ गई थी। संवत् १२२६ में खुदवाए हुए बिजोलिया के शिलालेख में लिखा है—"दिल्ली (देहली) लेने से थके हुए और आशिका (हांसी) प्राप्त करने से स्थगित अपने यश को उसने (बिसलदेव) प्रतोली २ (द्वार) और वलभी २ (झरोखे २) मे विश्रान्ति दी।" अर्थात् देहली और हांसी को जीत कर उसने अपने यश को घर २ फैलाया। देहली के शिवालिक स्तम्भवाले लेख मे हिमालय से विन्ध्य तक के देश को विजय करना लिखा है। हांसी के मिले हुए पृथ्वीराज दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय वहां का प्रबन्धकर्ता बीसलदेव का मामा गुहिलवशी किल्हण था। सम्भव है कि इसी प्रकार उस समय दिल्ली राज्य भी बीसलदेव के किसी सामंत अथवा रिश्तेदार के हाथ मे होगा। तबकात–ई–नासिरी मे शाहबुद्दीन गोरी के साथ की पहली लड़ाई में देहली के राजा गोविन्दराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी के भाले से सुलतान का घायल होकर लौटना लिखा है तथा दूसरे युद्ध में जिसमें कि पृथ्वीराज पराजित हुए थे उसी गोविंदराज का मारा जाना लिखा है। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय मे देहली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार मे थी। तारिख–फरिश्ता में भी ऐसा ही लिखा है, पर उसमें गोविंदराज के स्थान खाण्डेराव लिखा है जो फ़ारसी अक्षरों के दोष से ही मूल से भिन्न हुआ है।

पृथ्वीराज की बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध उसकी माता "कर्पूरदेवी" अपने मंत्री कादम्बवास (कैमास) की सहायता से करती रही। जान पड़ता है कि सं० १२३९ में पृथ्वीराज ने राज्य का भार अपने हाथ मे ले लिया।

पृथ्वीराज का देहली गोद जाना

पृथ्वीराजरासो में लिखा है कि, देहली के तोमर वंशी राजा अनङ्गपाल ने अपनी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर के साथ किया जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अंत में अनङ्गपाल देहली का राज्य अपने दौहित्र पृथ्वीराज को देकर बद्रिकाश्रम मे तप करने को चला गया। रासो मे अनन्द विक्रम संवत ११२२ और प्रचलित विक्रम सवत् १२१२-१३ में पृथ्वीराज का देहली गोद जाना लिखा है। उस समय पृथ्वीराज की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। पर कई प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि उस समय तक पृथ्वीराज का जन्म भी न हुआ था। न तो सोमेश्वर के समय में देहली का राजा अनङ्गपाल ही था, और न उसकी कन्या का विवाह सोमेश्वर के साथ

ही हुआ। इसलिए पृथ्वीराजरासो का यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त देहली तो चतुर्थ बीसलदेव के समय से ही चौहानों के कब्जे में आ गई थी। संवत् १२२६ में खुदवाए हुए बिजोलिया के शिलालेख में लिखा है—"दिल्ली (देहली) लेने से थके हुए और आशिका (हांसी) प्राप्त करने से स्थगित अपने यश को उसने (बिसलदेव) प्रतोली २ (द्वार) और वलभी २ (झरोखे २) मे विश्रान्ति दी।" अर्थात् देहली और हांसी को जीत कर उसने अपने यश को घर २ फैलाया। देहली के शिवालिक स्तम्भवाले लेख मे हिमालय से विन्ध्य तक के देश को विजय करना लिखा है। हांसी के मिले हुए पृथ्वीराज दूसरे के वि० सं० १२२४ के शिलालेख से पाया जाता है कि उस समय वहां का प्रबन्धकर्ता वीसलदेव का मामा गुहिलवंशी किल्हण था। सम्भव है कि इसी प्रकार उस समय दिल्ली राज्य भी बीसलदेव के किसी सामंत अथवा रिश्तेदार के हाथ में होगा। तबकात-ई-नासिरी मे शाहबुद्दीन गोरी के साथ की पहली लड़ाई मे देहली के राजा गोविन्दराज का पृथ्वीराज के साथ होना और उसी के भाले मे सुलतान का घायल होकर लौटना लिखा है तथा दूसरे युद्ध में जिसमें कि पृथ्वीराज पराजित हुए थे उसी गोविंदराज का मारा जाना लिखा है। इससे निश्चित है कि पृथ्वीराज के समय में देहली अजमेर के उक्त सामंत के अधिकार मे थी। तारिख-फरिश्ता में भी ऐसा ही लिखा है, पर उसमें गोविंदराज के स्थान खाण्डेराव लिखा है जो फ़ारसी अक्षरों के दोष से ही मूल मे भिन्न हुआ है।

पृथ्वीराज की माता का नाम कमला नहीं प्रत्युत कर्पूरदेवी था। और वह देहली के अनङ्गपाल की नहीं बल्कि चेदि देश के राजा अचलराज की पुत्री थी। नयचन्द्र सूरि ने भी अपने हमीर महाकाव्य में पृथ्वीराज की माता का नाम "कपूरदेवी" ही लिखा है।

जब वीसलदेव के समय से ही देहली का राज्य अजमेर के चौहानों के अधीन हो गया था और पृथ्वीराज अनङ्गपाल का दौहित्र ही न था तो यह कल्पना कि पृथ्वीराज अपने नाना के यहां गोद गया था स्वयं ही निर्मूल हो जाती है।

शाहबुद्दीन गोरी

जिस समय सम्राट् पृथ्वीराज अजमेर में रहकर न्यायपूर्वक अपनी प्रजा का शासन कर रहे थे ठीक उसी समय शाहबुद्दीन गोरी नामक मुसलमान सुलतान भारतवर्ष पर मुसलमानी सल्तनत कायम करने की कोशिश कर रहा था। उसके अत्याचारों से तङ्ग आकर पश्चिम के कई राजा गोविन्दराज के पुत्र "चन्द्र" को अग्रगण्य कर पृथ्वीराज के पास आये। इन लोगों के उदास चेहरों को देख कर पृथ्वीराज कुछ शङ्कित हुए और उन्होंने उनसे आने का कारण पूछा। उत्तर में चन्द्र ने कहा—

राज! शाहबुद्दीन गोरी नामक एक शु ण
के राज्यों को नष्ट करने के लिए धूमकेतु के
उसने कई नगर लूट कर जला दिये हैं।
शस्त्र धारण करता है वह तत्काल ही
मान होता है।

यह सुनते ही पृथ्वीराज बड़े क्रोधित हुए उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि शाहबुद्दीन गौरी को गिरफ्तार कर यदि आपके पैरों मे न झुकाऊं तो मैं चौहान नही।

यह प्रतिज्ञा कर उसने अपनी सज्जित सेना के साथ मुलतान की ओर प्रस्थान किया। तराइन के पास भयङ्कर युद्ध हुआ जिसमे पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी को बड़ी भारी पराजय दी और उसे गिरफ्तार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। शरणागत राजाओं को अपने २ राज्यों पर नियुक्त कर यह विजयी वीर अपनी राजधानी को लौट आया। ऐसा कहा जाता है कि यहां आकर उसने शाहबुद्दीन से १२ हाथी और १०० घोड़े दण्ड स्वरूप लेकर उसे छोड़ दिया!

वास्तव में देखा जाय तो इस समय मुहम्मद गौरी को इस प्रकार छोड़ देना ही पृथ्वीराज के और भारत के लिए कालस्वरूप हो गया! जिस तिथि को मुहम्मद गौरी छोड़ा गया उसी तिथि से भारत के वास्तविक पतन का इतिहास प्रारम्भ होता है। कुछ लोग भारतीय उदारता का हवाला देते हुए इस घटना को पृथ्वीराज के जीवन की प्रशंसनीय घटना बतलाते हैं। पर राजनीति के कोष में इस उदारता को भयङ्कर मूर्खता के सिवाय कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि शत्रु के प्रति उदारता का व्यवहार करना भी भारतीय राजनीति का एक अङ्ग है। पर यह उदारता वहीं तक प्रशंसनीय हो सकती है, जहां तक उसमें बुद्धिमानी का अंश मिला हुआ रहता है। बुद्धिमानी को तिलाञ्जलि देकर इस प्रकार उदारता की पराकाष्ठा कर देना भयङ्कर मूर्खता है और यह मूर्खता भी साधारण नहीं, प्रत्युत सारे देश

को गड्ढे में डालनेवाली होती है। उदारता करते समय कर्त्ता को यह सोच लेना चाहिए कि उदारता को पाने वाला व्यक्ति पात्र है या नहीं, पर पृथ्वीराज ने इन बातो को न सोचा। उनकी भयङ्कर भूल का जो भयङ्कर परिणाम हुआ, उसे लिखते हुए आज भी कलेजा कांप उठता है। उसी उदारता का भयङ्कर परिणाम ७०० वर्षों से भारतवर्ष भुगत रहा है। अस्तु !

फ़ारसी तवारीखों में इस युद्ध का जो वर्णन किया गया है उसे भी नीचे दे देना हम उचित समझते हैं—

तवकात-ई-नासिरी में लिखा है—"सुल्तान शाहबुद्दीन ने सरहिन्द कर लिया। उसका भार वे जियाउद्दीन काजी को सौंप कर गजनी को लौट गये। पर रायकोला पिथौरा (पृथ्वीराज) की चढ़ाई का हाल सुनकर वे वापस आए, तराईन के पास लड़ाई हुई। हिन्द के सब राजा रायकोला के साथ थे। लड़ते समय सुल्तानने दिल्ली के राजा गोविन्दराय पर हमला किया। गोविन्दराय उस वक्त हाथी पर सवार था। सुल्तान ने उसके मुंह पर भाला मारा जिससे उसके दो दांत टूट गये। राजा ने क्रोधित होकर सुल्तान पर पीछा वार किया, जिससे सुल्तान का हाथ जख्मी हो गया। इस घाव की पीड़ा इतनी कठिन हुई कि सुलतान को घोड़े पर ठहरना मुश्किल हो गया। यह देख कर मुसलमानों की सेना भागने लगी। सुलतान घोड़े पर से गिरने ही को थे कि एक बहादुर खिलजी जवान बादशाह के घोड़े पर चढ़ गया, और सुलतान को भगा ले गया, यह देखकर राजपूतों ने उसका पीछा किया और भटिण्डे को घेर कर १३ महीने के बाद उसे फ़तह किया।"

तारीख-फरिश्ते में लिखा है कि सुलतान मुहम्मद गोरी ने हिजरी सन् ५८७ मे फिर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। और अजमेर की तरफ जाते हुए "भटिण्डे" को ले लिया। एवं एक हजार से अधिक सवार और उतने ही पैदलों के साथ मालिक जियाउद्दीन तुजुकी को वहां पर छोड़ कर वापिस लौट गया। लौटते समय सुलतान ने सुना कि अजमेर का राजा पिथोरा और उसका भाई चामुंडराय हिन्दुस्तान के कई राजाओ के साथ दो लाख सवार और ३०००० हाथियों को लेकर सेना सहित भटिण्डा को आ रहा है। यह सुनकर वह भटिण्डे से आगे बढ़कर सरस्वती के तट पर तराइन गांव के पास पहुँचा जो थानेश्वर से १४ और दिल्ली से ८० मील दूरी पर है। इसी जगह पर लड़ाई हुई। और पहले ही हमले में सुलतान की फौज भाग गई। पर वह थोड़े से आदमियों के साथ लडता रहा। चावण्ड-राय ने सुलतान पर अपना हाथी पेला, पर सुलतान ने चावण्ड-राय के मुंह पर एक भाला मारा जिससे उसके कई दन्त गिर गये। इतने में दिल्ली के राजा ने सुलतान के हाथ में तीर मारा जिससे उसका हाथ जखमी हुआ। वह जखम से मूर्छित होकर गिरने ही वाला था कि एक नौकर ने उसके घोड़े पर चढ़ कर उसे पकड़ लिया और घोड़े को भगा कर ले गया। करीब ४० मील तक राजपूतों ने उनका पीछा किया और बाद में भटिण्डे पर घेरा डाल कर १३ महीने में उस पर अधिकार कर लिया।

इस विजय से पृथ्वीराज की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल गई। इस विजय की यादगार में उसके राजकवि ने पृथ्वीराज विजय

नामक काव्य की रचना की। यह महाकाव्य चौहानों के इतिहास का एक प्रमाणिक ग्रन्थ है।

संयोगिता हरण की कल्पना

पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि कन्नौज के राजा विजयपाल ने देहली के तंपरराजा अनंगपाल पर चढ़ाई की। परंतु सोमेश्वर चौहान और अनङ्गपाल की सेना के सम्मुख वह पराजित हुआ। इसके पश्चात् विजयपाल ने अनंगपाल की दूसरी कन्या "सुन्दरी" से विवाह किया। इस कन्या से उनके जयचंद नामक पुत्र हुआ। विजयपाल ने दिग्विजय करते हुए पूर्वी समुद्र के तट पर कटक के सोमवंशी राजा मुकुंददेव पर चढ़ाई की। उसने उसका बड़ा स्वागत किया और बहुत से धन के साथ अपनी पुत्री भी उसके भेट कर दी। इसका विवाह विजयपाल ने अपने पुत्र जयचन्द के साथ कर दिया। इससे जयचन्द को संयोगिता नामक एक कन्या हुई। विजयपाल वहाँ से आगे बढ़ कर सेतुबन्ध तक पहुँचा। वहाँ से लौटते हुए उसने तैलङ्ग, कर्णाट, मिथिला, पुङ्गल, आसेर, गुर्जर, गुंड, मगध, और कलिंग आदि देशों को जीता। इसके पश्चात् उसने पट्टनपुर (पाटण अनहिल वाड़ा) के राजा भोलाभीम पर चढ़ाई की। भीम ने अपने पुत्र के साथ नजराना भेजकर उसे लौटा दिया। इस प्रकार उसने सब राजाओं को जीत लिया। पर अजमेर के चौहानों ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र जयचन्द कन्नौज का राजा हुआ। इसने राजसूय यज्ञ करना निश्चय कर सब राजाओं को इसने निर्मंत्रण

किया । पृथ्वीराज को भी उसने निमंत्रण भेजा, परन्तु उसने उसे स्वीकार न किया । इतना ही नहीं, किन्तु जयचन्द की इस धृष्टता से क्रुद्ध होकर उसने उसके भाई बालुकराय पर चढ़ाई कर दी । उसने बालुकराय के प्रान्त को उजाड़ कर उसके मुख्य नगर खोखन्दपुर को लूटा और युद्ध मे बालुकराय को मार डाला । उसकी स्त्री रोती हुई कन्नौज मे जयचन्द के पास पहुँची । और उसने चौहान के द्वारा अपना सर्वनाश होने का हाल कहा । जयचन्द ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार किया । पर उसके मंत्रियों ने उसे सलाह दी कि बिना मेवाड़ के राणा समरसिंह को अपने पक्ष मे मिलाए पृथ्वीराज को जीतना कठिन है । इस पर उसने रावल समरसिंह को यज्ञ मे बुलाने के लिए पत्र लिखा और बहुत कुछ लालच भी बतलाया, पर उन्होंने आना स्वीकार न किया । इस पर जयचन्द ने पृथ्वीराज और समरसिंह दोनो पर चढाई करने का निश्चय किया और पृथ्वीराज से अपने नाना अनङ्गपाल का देहली का आधा राज्य भी लेना चाहा । उसने अपनी सेना के दो विभाग कर एक को देहली पर और दूसरी को चित्तौड़ पर भेजा । दोनों स्थानो से उसकी फौज हार खाकर लौटी । इससे क्रुद्ध होकर जयचन्द ने राजसूय यज्ञ में पृथ्वीराज की एक सोने की मूर्त्ति बनाकर उसे द्वारपाल के स्थान पर खड़ी करवा दी । राजसूय यज्ञ के साथ २ जयचन्द की पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी होने वाला था । उस राजकुमारी ने पृथ्वीराज की वीरता का हाल सुन रक्खा था । वह उस पर मुग्ध थी, और मन ही मन उसने उसीको अपना पति चुन रक्खा था । स्वयंवर के समय वह वरमाला लेकर उपस्थित हुई,

दिया। दो वर्ष के भीतर वह अपनी सेना को सज्जित कर पुनः भारतवर्ष पर चढ़ आया। इस युद्ध का वृत्तान्त हमीर महाकाव्य मे इस प्रकार लिखा है:—

"शाहबुद्दीन गोरी अपनी पराजय का बदला लेने को सात बार पृथ्वीराज पर चढ़ आया और सातो बार उसने शिकस्त पाई; तब उसने छल से पृथ्वीराज को जीतने का विचार किया और "घटेक" देश के राजा की सहायता पाकर उसने अचानक दिल्ली पर हमला कर उस पर अधिकार कर लिया। यह खबर सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि मैंने कई बार इसको जीता तिस पर भी यह बालक की सी चाल चलता है। इस प्रकार अभिमान कर वह थोड़ी सी सेना के साथ उसकी तरफ चला। सुलतान को पृथ्वीराज का अच्छी तरह अनुभव हो चुका था और इस कारण वह पृथ्वीराज को देख कर घबरा गया। और सहज मे विजय प्राप्त करने की सम्भावना न देखकर, रात के समय उसने अपने विश्वासपात्र पुरुषों के द्वारा बहुत सा द्रव्य पृथ्वीराज के अश्वपाल और बाजा बजाने वालों के पास रिश्वत स्वरूप भिजवा दिया जिससे वे लोग भीतर ही भीतर उसकी ओर मिल गये। प्रातः काल होते ही सुलतान की फौज ने चारों ओर से राजपूत सेना को घेर लिया। पृथ्वीराज की सेना ने भी शस्त्र धारण किया, पर रिश्वतखोर अश्वपालने पृथ्वीराज को नाट्यारम्भ घोड़े पर चढ़ा दिया, वह घोड़ा रणवाद्य सुनते ही नाचने लगा जिससे पृथ्वीराज का लक्ष्य उस ओर को चला गया। इधर मौका पाते ही शत्रुओं ने उसके घोड़े को घेर लिया। यह हाल देखकर वह घोड़े पर से उतर गया, और हाथ में

खड्ग लेकर बड़ी देर तक सिंहनाद करता हुआ लड़ता रहा। इतने में किसी यवन ने पीछे से उसके गले मे धनुष डाल कर उसे गिरा दिया और दूसरे लोगो ने फुर्ती से उसे बांध लिया। इस प्रकार दैवयोग से पृथ्वीराज सुलतान के हाथ क़ैद हो गया। क़ैद होते ही उसने खाना पीना छोड़ दिया। इसी अरसे मे वीर उदयराज भी जिसको पृथ्वीराज ने पहले से सुलतान के मुल्क पर भेज रक्खा था, आ पहुँचा। उसको देख डर के मारे सुलतान दिल्ली शहर के भीतर घुस गया। उदयराज को पृथ्वीराज के बन्धन का बड़ा दुख हुआ, और अपने स्वामी को कष्ट मे छोड़ कर चल देना उसने उचित न समझा। वह एक मास तक नगर को घेर कर लड़ता रहा। एक दिन किसी ने बादशाह से निवेदन किया कि, पृथ्वीराज ने आपको अनेक बार युद्ध में पकड कर छोड़ दिया है तो आपको भी चाहिए कि, एकबार उसे छोड़ देवें। इस बात को सुनते ही सुलतान ने क्रुद्ध होकर कहा कि तुम्हारे जैसे मत्री मिल जांय तो राज्य को भ्रष्ट कर देवें, उसके पश्चात् उसने पृथ्वीराज को किले में भेज दिया जहाँ उसका देहान्त हुआ। यह खबर सुनते ही उदयराज गौड़ ने भी लड कर अपने प्राण दे दिये।"

जामि-उल-हिकायत में लिखा है कि जब शाहबुद्दीन गोरी दूसरी बार पृथ्वीराज से लड़ने को था, उस समय उसको मालूम हुआ कि दुश्मन हाथियों को एक अलग पंक्ति में रखते हैं जिससे घोड़े चमकते हैं, और यह बर्बादी का कारण है। जब दोनो सेनाएँ एक दूसरे के समीप पहुँची, और दोनों तरफ लश्कर में जलती हुई आग नज़र आने लगी तो

दिया। दो वर्ष के भीतर वह अपनी सेना को सज्जित कर पुनः भारतवर्ष पर चढ़ आया। इस युद्ध का वृत्तान्त हमीर महाकाव्य मे इस प्रकार लिखा है:—

"शाहबुद्दीन गोरी अपनी पराजय का बदला लेने को सात बार पृथ्वीराज पर चढ़ आया और सातो बार उसने शिकस्त पाई; तब उसने छल से पृथ्वीराज को जीतने का विचार किया और "घटेक" देश के राजा की सहायता पाकर उसने अचानक दिल्ली पर हमला कर उस पर अधिकार कर लिया। यह खबर सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि मैंने कई बार इसको जीता तिस पर भी यह बालक की सी चाल चलता है। इस प्रकार अभिमान कर वह थोड़ी सी सेना के साथ उसकी तरफ चला। सुलतान को पृथ्वीराज का अच्छी तरह अनुभव हो चुका था और इस कारण वह पृथ्वीराज को देख कर घबरा गया। और सहज मे विजय प्राप्त करने की सम्भावना न देखकर, रात के समय उसने अपने विश्वासपात्र पुरुषों के द्वारा बहुत सा द्रव्य पृथ्वीराज के अश्वपाल और बाजा बजाने वालो के पास रिश्वत स्वरूप भिजवा दिया जिससे वे लोग भीतर ही भीतर उसकी ओर मिल गये। प्रातः काल होते ही सुलतान की फौज ने चारों ओर से राजपूत सेना को घेर लिया। पृथ्वीराज की सेना ने भी शस्त्र धारण किया, पर रिश्वतखोर अश्वपालने पृथ्वीराज को नाट्यारम्भ घोड़े पर चढ़ा दिया, वह घोड़ा रणवाद्य सुनते ही नाचने लगा जिससे पृथ्वीराज का लक्ष्य उस ओर को चला गया। इधर मौका पाते ही शत्रुओं ने उसके घोड़े को घेर लिया। यह हाल देखकर वह घोड़े पर से उतर गया, और हाथ में

खड्ग लेकर बड़ी देर तक सिंहनाद करता हुआ लड़ता रहा ।
इतने में किसी यवन ने पीछे से उसके गले में धनुष डाल कर
उसे गिरा दिया और दूसरे लोगो ने फुर्ती से उसे बांध लिया ।
इस प्रकार दैवयोग से पृथ्वीराज सुलतान के हाथ क़ैद हो गया ।
क़ैद होते ही उसने खाना पीना छोड़ दिया । इसी अरसे मे वीर
उदयराज भी जिसको पृथ्वीराज ने पहले से सुलतान के मुल्क
पर भेज रक्खा था, आ पहुँचा । उसको देख डर के मारे सुल-
तान दिल्ली शहर के भीतर घुस गया । उदयराज को पृथ्वीराज
के वन्धन का बड़ा दुख हुआ, और अपने स्वामी को कष्ट मे छोड़
कर चल देना उसने उचित न समझा । वह एक मास तक नगर
को घेर कर लड़ता रहा । एक दिन किसी ने बादशाह से निवेदन
किया कि, पृथ्वीराज ने आपको अनेक बार युद्ध में पकड़ कर
छोड दिया है तो आपको भी चाहिए कि, एकबार उसे छोड़ देवें ।
इस बात को सुनते ही सुलतान ने क्रुद्ध होकर कहा कि तुम्हारे
जैसे मन्त्री मिल जांय तो राज्य को भ्रष्ट कर देवें, उसके पश्चात्
उसने पृथ्वीराज को किले में भेज दिया जहाँ उसका देहान्त
हुआ । यह खबर सुनते ही उदयराज गौड़ ने भी लड कर अपने
प्राण दे दिये ।"

जामि-उल-हिकायत में लिखा है कि जब शाहबुद्दीन
गोरी दूसरी बार पृथ्वीराज से लड़ने को था, उस समय उसको
मालूम हुआ कि दुश्मन हाथियों को एक अलग पंक्ति में खड़े
रखते हैं जिससे घोड़े चमकते हैं, और यह बर्बादी का एक
कारण है । जब दोनों सेनाएँ एक दूसरे के समीप पहुँचीं, और
दोनों तरफ लश्कर में जलती हुई आग नज़र आने लगी तो

दिया। दो वर्ष के भीतर वह अपनी सेना को सज्जित कर पुनः भारतवर्ष पर चढ़ आया। इस युद्ध का वृत्तान्त हमीर महाकाव्य मे इस प्रकार लिखा है:—

"शाहबुद्दीन गोरी अपनी पराजय का बदला लेने को सात बार पृथ्वीराज पर चढ़ आया और सातो बार उसने शिकस्त पाई; तब उसने छल से पृथ्वीराज को जीतने का विचार किया और "घटेक" देश के राजा की सहायता पाकर उसने अचानक दिल्ली पर हमला कर उस पर अधिकार कर लिया। यह खबर सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि मैने कई बार इसको जीता तिस पर भी यह बालक की सी चाल चलता है। इस प्रकार अभिमान कर वह थोड़ी सी सेना के साथ उसकी तरफ चला। सुलतान को पृथ्वीराज का अच्छी तरह अनुभव हो चुका था और इस कारण वह पृथ्वीराज को देख कर घबरा गया। और सहज मे विजय प्राप्त करने की सम्भावना न देखकर, रात के समय उसने अपने विश्वासपात्र पुरुषों के द्वारा बहुत सा द्रव्य पृथ्वीराज के अश्वपाल और बाजा बजाने वालो के पास रिश्वत स्वरूप भिजवा दिया जिससे वे लोग भीतर ही भीतर उसकी ओर मिल गये। प्रातः काल होते ही सुलतान की फौज ने चारों ओर से राजपूत सेना को घेर लिया। पृथ्वीराज की सेना ने भी शस्त्र धारण किया, पर रिश्वतखोर अश्वपालने पृथ्वीराज को नाट्यारम्भ घोड़े पर चढ़ा दिया, वह घोड़ा रणवाद्य सुनते ही नाचने लगा जिससे पृथ्वीराज का लक्ष्य उस ओर को चला गया। इधर मौका पाते ही शत्रुओं ने उसके घोड़े को घेर लिया। यह हाल देखकर वह घोड़े पर से उतर गया, और हाथ में

खड्ग लेकर बड़ी देर तक सिंहनाद करता हुआ लड़ता रहा। इतने में किसी यवन ने पीछे से उसके गले में धनुष डाल कर उसे गिरा दिया और दूसरे लोगो ने फुर्ती से उसे बांध लिया। इस प्रकार दैवयोग से पृथ्वीराज सुलतान के हाथ क़ैद हो गया। क़ैद होते ही उसने खाना पीना छोड़ दिया। इसी अरसे मे वीर उदयराज भी जिसको पृथ्वीराज ने पहले से सुलतान के मुल्क पर भेज रक्खा था, आ पहुँचा। उसको देख डर के मारे सुलतान दिल्ली शहर के भीतर घुस गया। उदयराज को पृथ्वीराज के वन्धन का बड़ा दुख हुआ, और अपने स्वामी को कष्ट मे छोड़ कर चल देना उसने उचित न समझा। वह एक मास तक नगर को घेर कर लड़ता रहा। एक दिन किसी ने बादशाह से निवेदन किया कि, पृथ्वीराज ने आपको अनेक बार युद्ध में पकड़ कर छोड़ दिया है तो आपको भी चाहिए कि, एकबार उसे छोड़ देवें। इस बात को सुनते ही सुलतान ने क्रुद्ध होकर कहा कि तुम्हारे जैसे मंत्री मिल जांय तो राज्य को भ्रष्ट कर देवें, उसके पश्चात् उसने पृथ्वीराज को किले मे भेज दिया जहाँ उसका देहान्त हुआ। यह खवर सुनते ही उदयराज गौड़ ने भी लड कर अपने प्राण दे दिये।"

जामि-उल-हिकायत में लिखा है कि जब शाहबुद्दीन गोरी दूसरी बार पृथ्वीराज से लड़ने को था, उस समय उसको मालूम हुआ कि दुश्मन हाथियों को एक अलग पंक्ति में खड़े रखते हैं जिससे घोड़े चमकते हैं, और यह बर्बादी का एक कारण है। जब दोनों सेनाएँ एक दूसरे के समीप पहुँची, और दोनों तरफ लश्कर में जलती हुई आग नज़र आने लगी तो

सुलतान ने आज्ञा दी कि प्रत्येक आदमी अपने तम्बू के आगे बहुत सी लकड़ियां एकत्र कर रक्खें; फिर रात के वक्त सेना के एक दल को यह हुक्म दिया कि, रात भर वे अपने डेरों में आग जलती रक्खें, ताकि दुश्मन को खयाल हो कि सुलतान का डेरा वहीं है। यह हुक्म देकर वह अपनी बाकी सेना सहित दूसरी तरफ चला गया। हिंदुओं ने आग जलती हुई देख विश्वास कर लिया कि सुलतान वहीं पर ठहरा हुआ है। सुलतान रात भर चलकर पृथ्वीराज की चन्दावल (सेना का पिछला भाग) के पास आ पहुँचा, और प्रातःकाल होते ही हमला कर बहुत से आदमियों को मार डाला। जब चन्दावल वाले खास लश्कर की तरफ पीछे हटने लगे, तो पृथ्वीराज ने चन्दावल की तरफ फिरना चाहा, पर इससे उसकी सेना का सिलसिला बिगड़ गया। और हाथी काबू में न रहे। फिर आम तौर से लड़ाई हुई, जिसमे पृथ्वीराज हार कर सुलतान के हाथ कैद हो गया और सुलतान विजयी हो वापस दिल्ली गया।"

ताजुलम आसिरी में लिखा है—"हि० सं० ५८७ (ई० ११९१) में सुलतान शाहबुद्दीन ने हिंदुस्तान पर चढ़ाई की और लाहौर में आकर उसने अपने सरदार किवामुलमुल्क रूहुद्दीन हमजा को अजमेर के राजा के पास भेज कर कहलाया कि, वह बिना लडे सुलतान की अधीनता स्वीकार कर मुसलमान हो जावें। उसने अजमेर पहुँच कर अपने आने का आशय पृथ्वीराज को कह सुनाया। लेकिन पृथ्वीराज को अपनी भारी सेना और ऐश्वर्य के मारे दुनिया भर को विजय करने का हौंसला हो रहा था। इसलिये उसके कथन का उस पर कुछ भी असर न

हुआ। इस पर सुलतान अपनी सेना सहित अजमेर की तरफ चला जिसकी खबर मिलते ही अजमेर का राजा कोला (पृथ्वीराज) जिसकी बहादुरी का रोब दूर २ तक फैला हुआ था, असख्य सेना के साथ सामना करने को चला, हाथियो पर चढ़े हुए काले चेहरे के हिंदू सफेद शंख बजाने लगे। बहुत युद्ध के पश्चात् अन्त मे मुसलमान फतहयाब हुए। एक लाख हिंदू मारे गये, और अजमेर का राजा सुलतान के हाथो कैद हुआ लेकिन उसकी जान बचाई गई। सुलतान ने अजमेर पहुँच कर वहां के मंदिरों को तुड़वाया और उनकी जगह मसजिदें बनवाई। अजमेर के राजा—को जो किसी तरह सजा से बच कर रिहाई पा गया था, मुसलमानों से दिली नफ़रत थी। जब उसके बारे मे यह मालूम हुआ कि, वह कुछ साजिश कर रहा है तो बादशाह ने उसे मार डालने की आज्ञा दी और उसका सिर तलवार से उड़ा दिया गया। अजमेर का राज्य राय पिथौरा के लड़के को सौंप सुलतान दिल्ली पर चढ़ गया। जहां के राजा ने मातहती स्वीकार कर खिराज देना कबूल किया। सुलतान गजनी लौट गया लेकिन उसकी सेना दिल्ली की हद के भीतर इन्द्रपत (इन्द्रप्रस्थ) मौजे में रही।

तबकात-ई-नासिरी में लिखा है—"दूसरे वर्ष सुलतान नई सेना तय्यार कर अपनी पराजय का बदला लेने हिंदुस्तान पर चढ़ा. मुईनुद्दीन नामक एक विश्वासपात्र आदमी ने जो उसके साथ था मिनहाजराज से कहा कि इस वक्त सुलतान के साथ एक लाख बीस हजार सवार थे। वह सन्नद्ध होता हुआ तराइन के पास लड़ कर विजयी हुआ। हिंदू भाग गये। पिथौरा

हाथी पर से उतर कर घोड़े पर चढ़ कर भागा, पर सरस्वती के पास पकड़ा गया और कत्ल कर दिया गया। दिल्ली का गोविंद राय भी लड़ाई मे मारा गया। सुलतान ने उसका सिर उन दो दांतो से पहचाना जो उसने तोड़े थे। अजमेर, सवालक की सब पहाड़ियें, हांसी, सरस्वती और दूसरे इलाके सुलतान के हाथ मे आये। यह विजय इसवी सन् ११९२ मे हुई।

पृथ्वीराज रासो मे लिखा है कि—शाहबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैद कर गज़नी ले गया और उसकी आंखें फुडवा डाली। कुछ दिनो पश्चात् चन्दबरदाई ने वहां पहुँच कर सुलतान के सम्मुख पृथ्वीराज की धनुर्विद्या की बड़ी तारीफ कर उसका कौशल देखने के लिये सुलतान को उत्सुक किया। इस पर बादशाह के कथनानुसार चन्द के संकेत पर पृथ्वीराज ने वाण चलाया, जिससे शाहबुद्दीन मारा गया। उसके पश्चात् चंद और पृथ्वीराज दोनो ने आत्महत्या कर ली। यह सारा वृत्तान्त बिलकुल ग़लत है। क्योंकि न तो पृथ्वीराज गज़नी ले जाया गया और न सन् ११५८ में वह अपना गला काट कर मरा। यह बात उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है। इसी प्रकार पृथ्वीराज के हाथ से सुलतान का मारा जाना भी निर्मूल है क्योंकि पृथ्वीराज तो वि० सं० १२४९ में मारा गया, और सुलतान १४ मार्च सन् १२०६ अर्थात् वि० सं० १२६३ में गज़नी जाते हुए मार्ग मे गक्खरो के हाथ से मारा गया।

पृथ्वीराज के समय के पांच शिलालेख मिले हैं। जिनमें मे एक संवत् १२३६ के आषाढ़ वदी १२ का लोहारी (मेवाड़) गांव से, दो शिलालेख मदनपुर (बुंदेलखंड) से, एक बिसलपुरमें

और एक मेवाड़ के जहाज़पुर ज़िले के अंवलदा नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है।

दीप-निर्वाण

पृथ्वीराज के पतन के साथ ही साथ भारतवर्ष में हिंदू साम्राज्य का भी दीपनिर्वाण हो गया। दैव दुर्वियोग से संसार की शिरोमणी आर्य्य जाति सदा के लिए अरब की अर्धसभ्य जातियो के अधिकार मे हो गई। आज़ादी का ताज़ हिंदुओ के सर से उतर कर मुसलमानों के मस्तक पर मंडित हुआ। वे क्षत्रिय जो किसी समय अपने पराक्रम के सम्मुख देवराज इन्द्र को भी तुच्छ समझते थे, मौत जिन के भय से कांपती थी, और अज़ादी जिनके पैरों पर हमेशा मस्तक झुकाए खड़ी रहती थी, जिनका मस्तक सिवाय परमात्मा के किसी के आगे न झुकता था, परिस्थितियों के फेर में पड़ कर मुसलमान बादशाहो के दरबारों मे सिर झुकाए हुए नज़र आने लगे। पाठक! क्या आपने इसके भयंकर कारणों पर कुछ विचार किया है?

संसार के इतिहास में यह एक आश्चर्यजनक और गहरे आशय की बात है कि अरब के मरुस्थल में पला हुआ एक सत्रह वर्ष का मुस्लिम युवक (मुहम्मद कासिम) केवल दस बारह हज़ार सेना को साथ लेकर हिंदुस्थान के समान विशाल और बहादुर देश पर चढ़ आवे और वहां से विजयश्री को लेकर वापस लौट जाय। गज़नी देश का एक मामूली सेनापति मामूली सेना के साथ हिंदुस्थान पर आवे और सत्रह बार बिना प्रतिकार के इस देश को लूट कर ले जाय। सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात तो

यह है कि पृथ्वीराज के समान बहादुर सम्राट् के रहते हुए शाहबुद्दीन के समान मामूली आदमी हिदुस्तान पर चढ़ कर विजय प्राप्त कर ले। शायद ही किसी दुर्भागे देश में जहां की मनुष्य संख्या तीस करोड़ हो—इस प्रकार की घटनाएँ संभव हो सकती हैं।

इन आश्चर्य्यजनक बातों का समाधान केवल यह कह देने से नहीं हो सकता कि तुर्क दल की सैनिक शक्ति यहाँ वालों से बढ़ कर थी। यह प्रश्न बहुत ही अधिक महत्त्व का है, प्रत्येक भारतवासी को ऐसे प्रश्नों पर विचार करने से बहुत लाभ हो सकता है।

इतिहास के पाठक भली प्रकार जानते हैं कि उन्हीं सत्यताओं को दिखलाने वाला अभिनय—जिसमे स्थान २ पर हिन्दुओं के चरित्र के इसी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं और जिसमें हिन्दुओं के सामाजिक और जातीय जीवन की न्यूनताएं प्रगट होती हैं—गत छः शताब्दियों में कई बार वैसी ही भयङ्करता और वैसे ही परिणाम के साथ हुआ है।

पृथ्वीराज का पतन क्यों हुआ? अन्तर्दृष्टि से देखने पर तो इस पतन के अनेक कारण दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे समाज में व्यक्ति वैमनस्य, क्षत्रियों की विलास प्रियता, वर्णाश्रम धर्म का पतन आदि। इन सब कारणों पर विचार करने के लिये एक अलग स्वतन्त्र पुस्तक की आवश्यकता है। इस स्थान पर इनमें से एक भी कारण पर विवेचन होना दुःसाध्य है। यहाँ पर हम केवल एक ऐसे मोटे कारण पर विचार करते हैं जो सहज ही में बालदृष्टि से प्रत्येक पाठक की दृष्टिगोचर होता है।

वह कारण है क्षत्रियों की राजनैतिक अज्ञता। पृथ्वीराज ने अपने शत्रु मुहम्मदगोरी को बार २ पकड कर भी छोड़ दिया। कई लोग शत्रु के प्रति की गई इस उदारता को बहुत ही महत्त्व पूर्ण समझते हैं, वे इसे एक ऐसा कार्य्य समझते हैं जिसे भारत के सिवाय संसार का कोई भी देश नहीं कर सकता। इस पक्ष का समर्थन करते हुए वे कहते हैं कि, "क्षत्रिय वीर होते हैं राज-नीतिज्ञ नहीं, उनका आदर्श युद्ध में वीरता के साथ मरना होता है, न कि युद्ध को जीतना। राजपूत का उद्देश्य माता के दूध को उज्वल करना होता है। सच्चा क्षत्रिय कभी कमर के नीचे या पीठ के पीछे वार नहीं करता; आक्रमण करने के पूर्व वह शत्रु को सावधान कर देता है। क्षत्रियों की आत्मा को पुष्ट करने वाले आदर्श परमार्थिक हैं, प्राकृतिक नहीं। वे आदर्श उन आदर्शों से जो दूसरी जातियों को उत्तेजित करते हैं बहुत ऊंचे हैं। उनसे मनुष्य सदाचारी बनता है। युद्ध में जिस प्रकार वह अपनी वीरता की पराकाष्ठा कर देता है उसी प्रकार दूसरे समयों में वह उदारता की भी पराकाष्ठा पर देता है।"

जो लोग इस प्रकार की दलीलें पेश करते हैं वे शायद वर्णाश्रम धर्म के उन असली तत्वों को नहीं जानते हैं जिनके अन्दर क्षत्रिय का कर्तव्य देश में शान्ति की रक्षा बतलाया गया है। क्षत्रिय का वास्तविक धर्म "युद्ध" कभी नहीं हो सकता। उसका असली धर्म समाज और देश की रक्षा करना होता है। समाज अथवा देश पर जब कोई आपत्ति आती है तो वह अपने बाहुबल से उसे शमन करने की कोशिश करता है, और साथ ही इसके यह भी कोशिश करता है कि भविष्य में इस प्रकार

की आपत्ति देश पर न आने पावे। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार क्षत्रिय का मुख्य कर्तव्य यही है। और इसी को राजनीति का एक अंश भी मानते हैं। जो क्षत्रिय इन नियमों से च्युत होता है, और देश देश के अन्दर हाथ कर आपत्तियो को निमंत्रित करता है वह क्षत्रिय धर्म से च्युत हो जाता है। इसी धर्म से क्षत्रियों का च्युत हो जाना भी देश की गुलामी का एक प्रधा[न] कारण है।

ऐसे शत्रु पर—"जो कभी भी शत्रुता को न भूले, जिसकी घृणा की प्यास कभी न बुझे, जिसका एक मात्र उद्देश्य अपने विरोधियो का नाश करना हो, और जिसका धर्म-विधर्मियो को नष्ट करने की आज्ञा देता हो"—दया करना मूर्खता है। उसका भयङ्कर परिणाम आत्महत्या और जातीय हितो का नाश है। इस घातक त्रुटि ने, क्षत्रियो को और देश को राजनैतिक दृष्टि से अपने से बहुत निम्न श्रेणी के और कम सभ्यता वाले पश्चिमोत्तर निवासियो के अधीन बनाया। इस प्रकार के उदाहरणों से भारतवर्ष का सारा इतिहास भरा पड़ा है। यदि सन् ५२८ के लगभग नरसिंहगुप्त बालादित्य निर्दयी हूणराजा मिहिरगुल को उदारता पूर्वक छोड़ न देता और यदि ११९० मे पृथ्वीराज अपने बन्दी शाहबुद्दीन गौरी को छोड़ न देता, यदि १४४० मे महाराणा कुंभ माण्डू के मुहम्मद खिलजी को स्वतन्त्र न कर देते, यदि राजपूतों के साथ की तीस वर्ष की लड़ाइयों में महाराणा राजसिंह औरङ्गजेब को अछूता न जाने देते, और यदि औरङ्गजेब का बेटा शाहजादा मुअज्जम युवराज जयसिंह की दया से बच कर न जाने पाता तो आज भारत के इतिहास का

मार्ग कुछ और ही होता। कर्नल टॉड लिखते हैं कि,—"यदि मूर्खता पूर्ण उदारता और अविचार पूर्ण मनुष्यत्व के ये उदाहरण न मिलते तो मुसलमानों का सिंहासन पूरी तरह से उलट जाता।"

प्रधानतय: इसी मूर्खतापूर्ण उदारता से पृथ्वीराज का पतन हुआ, इसी अविचार पूर्ण मनुष्यत्व से हिन्दू साम्राज्य का दीप निर्वाण हुआ और इसी भयङ्कर चूक से भारतीय स्वाधीनता का अन्त हुआ !
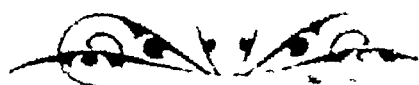
महाराणा संग्रामसिंह

एक तरह से देखा जाय तो पृथ्वीराज के अन्त के साथ ही साथ हमारी पुस्तक का भी अन्त हो गया। क्योंकि पृथ्वीराज ही भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् थे। उन्हीं के साथ हिन्दू साम्राज्य का अन्त भी हो गया। पर सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत का इतिहास एक ऐसे व्यक्ति का नाम लेता है, जिसका आसन राजनैतिक दृष्टि से हिन्दू सम्राटों के बराबर नहीं तो उनके अनकरीब ज़रूर है। यद्यपि पृथ्वीराज के बाद ही हिन्दू साम्राज्य का अभिनय खतम हो गया, पर उसमें एक दृश्य और अब शेष रह गया था, जो सोलहवीं शताब्दी के करीब अभिनीत हुआ। दैव यदि सीधा होता तो पृथ्वीराज की ही तरह महाराणा सांगा भी हिन्दू साम्राज्य का पुनरुद्धार करने से अवश्य सफल होते। पर दैव दुर्वियोग से यह कामना अधू ही रही। इतने प्रतापी राजा का संक्षिप्त वर्णन देना हम इस पुस्तक में उचित समझते हैं।

उस समय की परिस्थिति

अजमेर के चौहानों, कन्नौज के गहड़वालों और गुजरात के सोलंकियों का पतन होते ही मेवाड़ में गुहिलोत और मार-

वाड़ मे राठोड़ हिंदुस्तान के राजनैतिक गगन पर चमकने लगे। इनके चमकने से सारी राजपूत जाति मे पुनः नवजीवन का संचार होने लगा। इधर दिल्ली में अफ़गानो की शक्ति दिन प्रति दिन घटने लगी। राजपूतों की उन्नति और अफ़गानों की अवनति से देश के अन्दर ऐसे चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे कि, अब वह समय दूर नही है जब हिन्दू लोग पुनः अपना नष्ट साम्राज्य प्राप्त कर लें।

ऐसे अवसर पर पैतृक धन को पुनः प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्थान के रंग मंच पर महाराणा सांगा प्रकट हुए। तत्काल ही वे सारी हिन्दुजाति के नेता बन गये। उनका देश-प्रेम और कर्तव्य पालन, उनके उच्च विचार और उदारता, उनकी वीरता और महान् मनस्विता और हिन्दुस्थान के सब से अधिक शक्तिशाली राज्य के स्वामी होने की परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति ने उन्हें इस उच्च स्थान को ग्रहण करने के योग्य सिद्ध किया।

सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक हरविलास शारदा लिखते हैं कि सांगा भारत के वे अन्तिम सम्राट् थे जिनकी अधीनता में समस्त राजपूत जातियाँ विदेशी आक्रमणकारियों को निकाल कर बाहर करने के लिये एकत्रित हुई।

परवर्त्ती काल मे यद्यपि कई नेताओं का उत्थान हुआ, और कई वीरों ने अद्वितीय साहस के कार्य सम्पादन किये, महान युद्ध भी किये, अपने समय की सब से अधिक बलशाली शक्तियों का मुकाबिला भी किया, परन्तु राणा सांगा के पश्चात् कभी किसी ऐसे राजपूत का उत्थान न हुआ जिसने समस्त राजपूत जाति की हार्दिक भक्ति और सन्मान पर [illegible]

किया हो, और जिसने भारत के मुकुट के लिये मध्य एशिया के उन आक्रमणकारियों से–जिनके भाई बन्धुओं ने दक्षिणी यूरोप को तहस नहस कर डाला था,–लड़ने को भिन्न २ राजपूत जातियों को सम्मिलित कर उनका नेतृत्त्व ग्रहण किया हो। सांगा के समय में भारत का राजनैतिक गगन बहुत मेघाच्छन हो रहा था। कई आपत्तियां भारत के सिर पर मंडरा रही थी। साम्राज्य छिन्न भिन्न हो रहा था। एक ओर मुसलमान आक्रमणकारियों की धूम थी। दूसरी ओर राजपूत ही आपस में लड़ कर कट रहे थे। पारस्परिक द्वेष की अग्नि समाज में धांय २ करके जल रही थी। ऐसे कठिन समय में राणा संग्रामसिंह अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी बुद्धिमानी और पराक्रम के ज़ोर पर सारे साम्राज्य को फिर शृंखलाबद्ध कर दिया। और वह समय बहुत ही अनकरीब रह गया था जब वे दिल्ली में इब्राहिम लोदी के सिंहासन पर आरूढ़ होते। पर यह आशा-दैव दुर्वियोग से कहिए या हिन्दुओं के चरित्र की उन नाशकारी त्रुटियों के कारण कहिए-जो उनके सामाजिक और धार्मिक अन्ध विश्वासों के कारण उत्पन्न हुई थीं—शीघ्र ही निराशा में परिणित हो गई। विजय का प्याला जो होठों तक पहुँच चुका था, पृथ्वी पर गिरा दिया गया। हिन्दू साम्राज्य के स्थान पर हिन्दुओं की ही सहायता से मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी। इसका विवरण पाठकों को आगे चल कर मालूम होगा।

संग्रामसिंह का जन्म और राज्यारोहण

महाराणा सांगा मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा कुम्भा के पौत्र

और रायमल्ल के पुत्र थे। राणा रायमल्ल के ग्यारह रानियाँ थीं
जिन से उनको चौदह पुत्र और दो कन्याएं उत्पन्न हुईं। सब से
ज्येष्ठ पुत्र का नाम पृथ्वीराज था। ये बड़े ही वीर और तेजस्वी
थे। बदनौर के राव सुरतान की इतिहास प्रसिद्ध कन्या ताराबाई
इन्हीं की महिषी थीं। इन्होंने कई ऐसे बहादुरी के कार्य्य किये जो आज
भी इतिहास के अन्दर प्रसिद्ध हैं। अप्रासंगिक होने से उनका वर्णन
यहाँ पर करना व्यर्थ है। पृथ्वीराज को उनके बहनोई जयपाल ने
धोखे से विष देकर मार डाला। वीर रमणी तारा अपने पति के
साथ सती हुईं। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् राणा संग्रामसिंह युव-
राज की जगह चुने गये। ये राणा रायमल्ल के तीसरे पुत्र थे। विक्रम
संवत् १५६६ में राणा रायमल्ल का देहान्त हो गया। उनके स्थान
पर ज्येष्ठ सुदी पंचमी १५६६ के दिन संग्रामसिंह सिंहासना
रूढ़ हुए।

सिंहासन पर बैठते ही राणा सांगा ने अपने राज्य की सीमा
को बढ़ाना प्रारंभ किया। केवल पश्चिम को छोड़ कर जहां कि
राठौड़ों का सितारा तेजी पर था—सांगा का राज्य दिल्ली,
मालवा और गुजरात के मुसलमान राज्यों से घिरा हुआ था।
सांगा को इन तीनों राज्यों से युद्ध करना पड़ा। इन तीनों राज्यों
ने एकत्रित होकर सम्मिलित शक्ति से एक ही स्थान पर राणा
सांगा से युद्ध किया। परंतु संग्रामसिंह ने अपने [illegible] युद्ध
कौशल के बल से उस सम्मिलित शक्ति को परास्त कर दिया।
[illegible] शत्रु के कई प्रान्तों पर अधिकार भी कर लिया, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

राज्य नहीं कर सकता। उन्होंने अपने वीर कार्यों से भारत में
इतना उच्चासन प्राप्त किया कि,—एर्सकिन के कथनानुसार—
"उस समय समस्त भारतवासियो के हृदय मे ये तरङ्गें उठने
लगीं कि अब बहुत शीघ्र राज्य परिवर्तन होने वाला है। और
वे प्रसन्नता से भारत मे स्वदेशी राज्य की स्थापना का स्वागत
करने को तैय्यार हो उठे।" और १६ मार्च सन् १५२७ ई०
यदि खानवा के मैदान मे एक दुर्घटना न होती तो निश्चय
था कि भारत का शाही मुकुट एक हिन्दू के मस्तक पर विराज-
मान होता और प्रभुत्व की पताका इन्द्रप्रस्थ को छोड़कर चित्तौड़
की बुर्जों पर लहराती।

महाराणा संग्रामसिंह को अपने जीवनकाल मे कितने ही
युद्ध करने पडे। जिनमें से सुलतान इब्राहीम लोदी के साथ का
युद्ध, सुलतान मुहम्मद खिलजी के साथ का युद्ध, गुजरात का
आक्रमण और मुजफ्फरशाह का मेवाड़ पर आक्रमण विशेष
मशहूर हैं। इन सब युद्धो मे राणा संग्रामसिंह विजयी होते
रहे। एक युद्ध में उनका बायां हाथ बिलकुल कट गया, और
एक पैर लंगड़ा हो गया। एकाक्षी तो वे पहले ही हो गये थे, इस
प्रकार इन युद्धो की वजह से महाराणा सांगा एक आँख व एक
हाथ से बिल्कुल वंचित और एक पैर से अर्द्ध वंचित हो गये।

संग्रामसिंह का स्वेच्छासे शासनाधिकार छोड़ने की घोषणा करना

अंगहीन होने के कुछ दिनों पश्चात् ह...
महाराणा जब थ... गये तो इसके...

मनाने के निमित्त उन्होंने सब सरदारों और उमरावों को आमंत्रित किया। महाराणा इस बड़े दरबार में आए, और उनका उचित सत्कार भी हुआ, पर सदा के रिवाजानुसार उन्होंने दोनों हाथ छाती तक न उठाकर केवल दाहिना हाथ सिर तक उठाया और इस प्रकार सब लोगों के अभिवादन का जवाब दिया। और इसके पश्चात् हमेशा की तरह राज्य सिंहासन पर न बैठकर वे एक साधारण सर्दार की तरह ज़मीन पर ही बैठ गये। इस घटना से तमाम दरबारी आश्चर्य्य निमग्न हो गये। वे आपस में कानाफूसी करने लगे। इस पर महाराणा ने स्वयं ही खड़े होकर ऊँची आवाज़ से कहा—

"भारत का यह प्राचीन और दृढ़ नियम है कि जब कोई मूर्त्ति टूट जाय या उसका कोई हिस्सा खण्डित हो जाय तो फिर वह पूजा के योग्य नहीं रहती। उसके स्थान पर दूसरी मूर्त्ति स्थापित की जाती है। इसी प्रकार राज्य सिंहासन—जो कि प्रजा की दृष्टि में पूजनीय है—पर बैठनेवाला व्यक्ति भी ऐसा होना चाहिए जो सर्वांग हो। और राज्य की सेवा करने के पूर्ण योग्य हो। मेरी एक आँख के सिवाय एक भुजा और एक टांग भी निकम्मी हो गई है। ऐसी हालत में मैं अपने आपको कदापी इस योग्य नहीं समझता। इसलिये इस पवित्र स्थान पर आप सब लोग जिसे उचित समझें बिठलाँय और मुझे अपने निर्वाह के लिए कुछ दे दें। जिससे मैं भी अन्य सामन्तों की तरह अपनी हैसियत के अनुसार राज्य की सेवा कर सकूँ।"

इस पर सब दरबारियों ने कहा कि महाराणा की अंग हानि रणक्षेत्र में हुई है। इसलिए यह हानि राज्य सिंहासन के

गौरव को घटाने की अपेक्षा वर्द्धित ही अधिक करेगी। यह कह कर सब लोगों ने महाराणा का हाथ पकड़ कर उन्हें रिक्त सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया।

घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देश्यों को बतलाने वाली है। यह घटना बतलाती है कि, हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि, राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है। और उसका शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि, अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए।

भारतवर्ष पर मुग़ल आक्रमण

जिस समय भारतवर्ष के [illegible]
खड़ा कर गिरने वाली थी [illegible]
योग्यता वाले पुरुष का [illegible] की
जाहिरुद्दीन [illegible] में
फ़रगाना [illegible] लड़
बाबर का [illegible]
बाप [illegible]

कारण उसे ऐसी भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ा कि, कभी २ तो उसके पास खाने को चने तक नहीं रहे । पर उत्साही बाबर के हृदय पर इन विपत्तियों का विशेष प्रभाव न पड़ा, इन विपत्तियों के आने से उसकी महत्वाकांक्षाओं को अधिकाधिक बल मिलता गया । यदि हो सका तो "भारत के मुगल सम्राट्"❀ नामक पुस्तक में हम इसके जीवन पर विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे । यहां पर इसकी जीवनी का हमारे कथा भाग से जितना सम्बन्ध है, केवल उतना ही देने की कोशिश करेंगे ।

मतलब यह कि, अनेक स्थानों पर भ्रमण करते करते अन्त में बाबर को एक बुढ़िया के द्वारा हिंदुस्थान की शस्य श्यामला भूमि का पता लगा । भारत मेदिनी की इतनी प्रशंसा सुनते ही उसके मुंह में पानी भर गया । महत्वाकांक्षी तो वह था ही, भावी विपत्तियों की रंच मात्र भी परवाह न कर वह १२००० सैनिकों को साथ लेकर भारत विजय के निमित्त चल पड़ा । रास्ते में और भी बहुत से लोग आ आ कर उनकी फौज में मिलने लगे । सबसे पहले पानीपत के मशहूर रणक्षेत्र में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी से उसका मुकाबिला हुआ । यहां आते आते बाबर की सेना ८०००० के लगभग हो गई थी । २९ अप्रैल १५२६ के दिन यह इतिहास प्रसिद्ध भयंकर युद्ध हुआ । जिसमें इब्राहिम लोदी की फौज पराजित हुई, और विजयमाला बाबर के गले में पड़ी । इसके एक ही समय पठान

गौरव को घटाने की अपेक्षा वर्द्धित ही अधिक करेगी। यह कह कर सब लोगों ने महाराणा का हाथ पकड़ कर उन्हें रिक्त सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया।

घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देश्यों को बतलाने वाली है। यह घटना बतला है कि, हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि, राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है। और उसका शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि, अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए।

भारतवर्ष पर मुग़ल आक्रमण

जिस समय भारतवर्ष के अन्दर पठानों की ताकत लड़खड़ा कर गिरने वाली थी उस समय काबुल में एक असाधारण योग्यता वाले पुरुष का आविर्भाव हुआ। इस व्यक्ति का नाम जाहिरुद्दीन मुहम्मद बाबर था। १५ फरवरी सन् १४८३ में फ़रगाना नामक छोटीसी रियासत के राजा उमरशेख के घर बाबर का जन्म हुआ। ११ बरस की उमर होने पर बाबर के बाप का देहान्त हो गया, और उसी दिन से वह अपने बाप की रियासत का मालिक हुआ। बाबर बचपन से ही नैपोलियन की तरह महत्त्वाकांक्षी था। और इन्हीं ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं के

कारण उसे ऐसी भयङ्कर विपत्तियों का सामना करना पड़ा कि, कभी २ तो उसके पास खाने को चने तक नहीं रहे। पर उत्साही बाबर के हृदय पर इन विपत्तियों का विशेष प्रभाव न पड़ा, इन विपत्तियों के आने से उसकी महत्वाकांक्षाओं को अधिकाधिक बल मिलता गया। यदि हो सका तो "भारत के मुगल सम्राट्"❀ नामक पुस्तक में हम इसके जीवन पर विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। यहां पर इसकी जीवनी का हमारे कथा भाग से जितना सम्बन्ध है, केवल उतना ही देने की कोशिश करेंगे।

मतलब यह कि, अनेक स्थानों पर भ्रमण करते करते अन्त में बाबर को एक बुढिया के द्वारा हिंदुस्थान की शस्य श्यामला भूमि का पता लगा। भारत मेदिनी की इतनी प्रशंसा सुनते ही उसके मुंह में पानी भर गया। महत्वाकांक्षी तो वह था ही, भावी विपत्तियों की रंच मात्र भी परवाह न कर वह १२००० सैनिकों को साथ लेकर भारत विजय के निमित्त चल पड़ा। रास्ते में और भी बहुत से लोग आ आ कर उसकी फौज में मिलने लगे। सबसे पहले पानीपत के मशहूर रणक्षेत्र में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी से उसका मुकाबिला हुआ। यहां आते आते बाबर की सेना ५०००० के लगभग हो गई थी। २९ अप्रैल १५२६ के दिन यह इतिहास प्रसिद्ध भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें इब्राहिम लोदी की फौज पराजित हुई, और विजयमाला बाबर के गले में पड़ी। इसके एक ही सप्ताह पश्चात्

गौरव को घटाने की अपेक्षा वर्द्धित ही अधिक करेगी। यह कह कर सब लोगों ने महाराणा का हाथ पकड़ कर उन्हें रिक्त सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया।

घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देश्यों को बतलाने वाली है। यह घटना बतलाती है कि, हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि, राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है। और उस शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि, अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए।

भारतवर्ष पर मुग़ल आक्रमण

जिस समय भारतवर्ष के अन्दर पठानों की ताकत ल खड़ा कर गिरने वाली थी उस समय काबुल में एक असाधारण योग्यता वाले पुरुष का आविर्भाव हुआ। इस व्यक्ति का नाम जाहिरुद्दीन मुहम्मद बाबर था। १५ फरवरी सन् १४८३ में फ़रगाना नामक छोटीसी रियासत के राजा उमरशेख के घर बाबर का जन्म हुआ। ११ बरस की उमर होने पर बाबर के बाप का देहान्त हो गया, और उसी दिन से वह अपने बाप की रियासत का मालिक हुआ। बाबर बचपन से ही नैपोलियन की तरह महत्त्वाकांक्षी था। और इन्हीं ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं के

कारण उसे ऐसी भयङ्कर विपत्तियो का सामना करना पड़ा कि, कभी २ तो उसके पास खाने को चने तक नही रहे। पर उत्साही बाबर के हृदय पर इन विपत्तियो का विशेष प्रभाव न पड़ा, इन विपत्तियों के आने से उसकी महत्वाकांक्षाओं को अधिकाधिक बल मिलता गया। यदि हो सका तो "भारत के मुगल सम्राट्"* नामक पुस्तक में हम इसके जीवन पर विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे। यहां पर इसकी जीवनी का हमारे कथा भाग से जितना सम्बन्ध है, केवल उतना ही देने की कोशिश करेंगे।

मतलब यह कि, अनेक स्थानों पर भ्रमण करते करते अन्त में बाबर को एक बुढिया के द्वारा हिंदुस्थान की शस्य श्यामला भूमि का पता लगा। भारत मेदिनी की इतनी प्रशंसा सुनते ही उसके मुंह मे पानी भर गया। महत्वाकांक्षी तो वह था ही, भावी विपत्तियो की रंच मात्र भी परवाह न कर वह १२००० सैनिकों को साथ लेकर भारत विजय के निमित्त चल पड़ा। रास्ते मे और भी बहुत से लोग आ आ कर उसकी फ़ौज में मिलने लगे। सबसे पहले पानीपत के मशहूर रणक्षेत्र में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी से उसका मुकाबिला हुआ। यहां आते आते बाबर की सेना ७०००० के लगभग हो गई थी। २५ अप्रैल १५२६ के दिन यह इतिहास प्रसिद्ध भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें इब्राहिम लोदी की फौज पराजित हुई, और विजयमाला बाबर के गले मे पड़ी। इसके एक ही सप्ताह पश्चात्

दिल्ली का शाही ताज बाबर के मस्तक पर मंडित हुआ। और उसी दिन से भारत हमेशा के लिए सूत्र रूप से गुलाम हो गया। इब्राहीम लोदी से विजय पाने पर भी बाबर निश्चिन्त न हुआ। वह भली प्रकार जानता था कि, हिंदुस्थान में उसका प्रधान शत्रु इब्राहीम लोदी नहीं है प्रत्युत राणा संग्रामसिंह है। और इसलिए वह महाराणा सांगा पर विजय प्राप्त करने के साधन इकट्ठे करने लगा।

राणा सांगा और बाबर

इस स्थान पर प्रसंगवशात् हम राणा सांगा और बाबर के जीवन पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालना उचित समझते हैं। क्योंकि हमारे खयाल से इन दोनो महापुरुषो के जीवन मे बहुत कुछ साम्य है।

राणा सांगा और बाबर ये दोनों ही भारत मे अपने समय के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। जिस प्रकार राणा सांगा एक साधारण राजपूत न थे, उसी प्रकार बाबर भी साधारण व्यक्ति न था। दोनो एक ही ढङ्ग के और एक ही अवस्था के थे। राणा सांगा का जन्म १४८२ मे और बाबर का १४८३ में हुआ था। दोनों वीर थे और दोनों ने मुसीबत के मदरसे में तालीम पाई थी। बाबर का पूर्व जीवन दुःख, निराशा और पराजय मे व्यतीत हुआ था फिर भी उसमें अदम्य उत्साह, भारी महत्वाकांक्षा कर्म-शीलता और निजी वीरता का काफ़ी समावेश था। विपरीत परिस्थितियों के धक्के खा २ कर वह इतना मजबूत हो गया था कि, न मे कठिन विपत्ति के समय में भी उसका धैर्य्य विचलित न

होता था। उसका जीवन उत्तर की जंगली जातियों और तुर्किस्तान तथा ट्रान्स आक्सियाना की क्रूर, उपद्रवी और विश्वासघाती जातियों में व्यतीत हुआ था। उसके बलवान शरीर, अदम्य साहस और बेशकीमती तजुर्बे ने ही मनुष्यता और सभ्यता में उन्नत राजपूत जाति का मुकाबिला करने में सहायता की। बाबर का आचरण शुद्ध था, वह एक सच्चा मुसलमान था, हमेशा हंस मुख और प्रसन्न रहा करता था। राजनैतिक मामलों को छोड़ कर दूसरी बातों में वह उदार भी था। व्यक्तिगत योग्यता और नेतृत्व की दृष्टि से वह उन तमाम सर्दारों और नेताओं से, जो उसके पूर्व भारत में आ चुके थे अधिक बुद्धिमान और शक्तिशाली था। साहस, दृढ़ता और शारीरिक पराक्रम में वह महाराणा सांगा के समान ही था! शूरता, वीरता, उदारता आदि गुणों में अवश्य वह महाराणा संग्रामसिंह से कम था पर इसके साथ ही स्थिति के अनुभव में, सहनशीलता और धैर्य्य में वह महाराणा से बढ़कर भी था। लगातार की पराजय और असमानत दुःखों की लड़ी ने बाबर को धैर्य्यवान, स्थिति-परीक्षक और धूर्त बना दिया, भयंकर संकटों की अग्नि में पड़ पड़ कर उसकी विचार शक्ति तप्त-सुवर्ण की तरह शुद्ध हो गई थी, और जिनके कारण वह मानवीय हृदय और मनुष्य के मानसिक विकारों के परखने में निपुण हो गया था। पर इसके विरुद्ध महाराणा सांगा में, लगातार सफलता से मिलते रहने से और आपत्तियों की ठोकर न खाने से इन गुणों का समावेश न होने पाया। लगातार की विजय से उनके हृदय में आत्म-विश्वास साहस और अहंकार का संचार हो गया। जिसके कारण वे परिस्थिति का

रहस्य समझने में और लोगों के मनोभावों को परखने मे कुछ कमज़ोर रह गये। और इन्ही गुणों की कमी के कारण शायद उनकी यह इतिहास विख्यात् पराजय हुई।

सांगा महावीर और शूर नेता थे तो बाबर अधिक राजनीतिज्ञ, अधिक चतुर और कुशल सेनापति था। सांगा की ओर प्रतिष्ठा, वीरता, साहस और सेना की संख्या अधिक थी तो बावर की ओर युद्ध नीति, चतुरता और धार्मिक उत्साह का आधिक्य था। मतलब यह कि भारत के तत्कालीन इतिहास मे ये दोनों ही व्यक्ति महापुरुष थे।

खानवा का युद्ध

हम पहले ही लिख आए हैं कि, वावर को जितना डर राणा सांगा का था उतना किसी का भी नहीं था। और इसलिए वह राणा को पराजित करने के लिए कई दिनो से तैय्यारी कर रहा था। अन्त में ११ फरवरी सन् १५२७ के दिन वावर राणा सांगा से मुकाविला करने के लिए आगरे से रवाना हुआ। कुछ दिनों तक वह शहर के वाहर ठहर कर अपनी फौज और तोपखाने को ठीक करने लगा। उसने आलमखाँ को ग्वालियर एवं मकन, कासिमबेग, हमीद, और महमूद जैतून को "संवल" भेजा और वह स्वयं मेढापुर होता हुआ फतहपुर सीकरी पहुँचा। यहाँ आकर वह अपनी मोर्चे-वन्दी करने लगा।

इधर राणा सांगा भी वावर का मुकाविला करने के लिए चित्तौड़ पहुँचे। इब्राहीम लोदी के खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने की इच्छा से उसका भाई मुहम्मद लोदी भी राणा

की शरण मे आ गया था। इसके अतिरिक्त और भी कई अफगान सरदारों से जो कि वावर को हिन्दुस्थान से निकालना चाहते थे, राणा को सहायता मिली थी। राणा की फौज के रणथम्भोर पहुँचने का समाचार जब बावर को मिला तो वह बहुत डर गया। क्योंकि राणा के वल और विक्रम से वह पूर्ण परिचित था। वह अपनी दिनचर्य्या मे भी लिखता है कि, "सांगा बड़ा शक्तिशाली राजा था और जो बड़ा गौरव उसको प्राप्त था वह उसकी वीरता और तलवार के बल से ही था।" अस्तु, जब उसने सुना कि, राणा बढ़ते चले आ रहे हैं तो उसने तोमर राजा सिलहदी के द्वारा संधि का प्रस्ताव भेजा पर राणा ने उसे स्वीकार न किया और कन्दर के मजबूत किले पर अधिकार करते हुए वे बयाना की ओर आगे बढ़ने लगे। रास्ते मे हसनखाँ मेवाती नामक अफगान भी १०००० सवारो के साथ राणा की सेना मे आ मिला। वावर अपनी दिन-चर्य्या मे लिखता है:—

"जब उसकी सेना में यह खबर पहुँची कि राणा अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ शीघ्रता से आ रहा है तो हमारे गुप्तचर न तो बयाने के किले में पहुँच सके, और न वहाँ की कुछ खबर ही ले पहुँचा सके। बयाने की सेना कुछ दूर तक बाहर निकल आई। शत्रु उस पर टूट पड़ा और वह भाग निकली। तब महाराणा ने बयाना पर अधिकार कर लिया।" इसके पश्चात् महाराणा की सेना और आगे बढ़ी और २१ फरवरी १५२७ को उसने बाबर की आगे वाली सेना को बिलकुल नष्ट कर दिया। यह समाचार बाबर को मालूम हुआ तो वह विजय की

ओर से पूरा निराश हो गया और आत्म-रक्षा के लिए मोर्चे-
बन्दी करने लगा।

एर्सकिन साहब लिखते हैं कि मुग़लों के साथ राजपूतों
की गहरी मुठभेड़ हुई जिसमें मुग़ल अच्छी तरह पिट गये।
इस पराजय ने उन्हें अपने नये शत्रु की प्रतिष्ठा करना सिखाया।
कुछ दिन पूर्व मुग़ल सेना की एक टुकड़ी असावधानी से क़िले
से निकल कर बहुत दूर चली आई। उसे देखते ही राजपूत उस पर
टूट पड़े और उसे वापस किले में भगा दिया, उन्होंने वापस
जाकर अपनी सेना में राजपूतो के वीरत्व की बड़ी प्रशंसा की
जिससे मुग़ल लोग और भी भयभीत हो गये। उत्साही, शूर,
युद्ध और रक्तपात के प्रेमी राजपूत जातीय भाव से प्रेरित होकर
अपने वीर नेता की अध्यक्षता में शत्रु के बड़े से बड़े योद्धा का
सामना करने को तैय्यार थे और अपनी आत्म प्रतिष्ठा के
लिए जीवन विसर्जन करने को प्रस्तुत रहते थे।

स्टेनली लेनपूल लिखते हैं कि, राजपूतों की शूर वीरता
और प्रतिष्ठा के उच्च भाव उन्हें साहस और बलिदान के लिये
इतना उत्तेजित करते थे जितना कि, बाबर के अर्द्ध सभ्य सिपा-
हियों के ध्यान में भी आना कठिन था।

बाबर की अग्र भाग के सेनापति मीर-अब्दुल अजीज़ ने
सात आठ मील तक आगे बढ़ चौकियाँ कायम की थी पर
राजपूतों की सेना ने उन्हें भी नष्ट कर दिया।

इस तरह राजपूतों की निरन्तर सफलता, उनके उत्साह,
की आशातीत सफलता और उनकी सेना की विशालता-अ
सवा लाख होगी-को देख कर बाबर की सेना में समाप्ति

रूप से निराशा का दौर दौरा हो गया। जिससे बाबर को फिर एक बार सुलह की बात छेड़ना पड़ी। और इस अवसर मे उसने अपनी मोर्चेबन्दी को और भी मजबूत किया। इतने मे काबुल से चला हुआ ५०० स्वयंसेवकों का एक दल उसकी सेना से आ मिला। पर बाबर की निराशा और बेचैनी बढ़ती ही गई। तब उसने अपने गत जीवन पर दृष्टि डालकर उन पापो को जानना चाहा जिनके फल स्वरूप उसे यह दुःख उठाना पड़ रहा था। अन्त में उसे प्रतीत होने लगा कि, उसने नित्य मदिरापान का स्वभाव डालकर अपने धर्म के एक मुख्य सिद्धांत को कुचल डाला है। उसने उसी समय इस संकट से बचने के लिए इस पाप कर्म को तिलांजली देने का विचार किया। उसने मदिरापान की क़सम ली और शराब पीने के सोने चान्दी की गिलासों और सुराहियों को उसने तुड़वा कर उनके टुकड़ों को गरीबो में बंटवा दिया। इसके अतिरिक्त मुसलमानी धर्म के अनुसार उसने डाढ़ी न मुड़वाने की प्रतिज्ञा की।

पर इन कामों से सब लोगों की निराशा घटने के बदले अधिकाधिक बढ़ती ही गई। वह अपनी दिनचर्या में लिखता है,—

"इस समय पहले की घटनाओं से डरा हुआ और घबराए हुए सभी भयभीत हो गये थे। एक भी आदमी ऐसा नहीं था जो बहादुरी की बातें करके साहस दिखाता हो। वजीर, जिनका काम ही नेक सलाह देने का था, और अमीर जो राज्य की सम्पत्ति को भोगने वाले थे, [illegible] की [illegible] से न [illegible] था। और न उनकी सलाह ही इस अवस्था के [illegible] थी। [illegible]

मे अपनी फ़ौज मे साहस और वीरता का पूर्ण अभाव देख ;
मैंने सब अमीरो और सर्दारो को बुला कर कहा—

"सर्दारो और सिपाहियो ! प्रत्येक मनुष्य जो इस संसार में आता है अवश्य मरता है। जब हम यहाँ से चले जायंगे तब एक निराकार ईश्वर ही बाकी रह जायगा। जो कोई जीव का भोग करेगा उसे जरूर ही मौत का प्याला पीना पड़ेगा। जो इस दुनिया मे मौत की सराय के अन्दर आकर ठहरता है, उसे एक दिन जरूर बिना भूले इस घर से विदा लेनी होगी। इस-लिए अप्रतिष्ठा के साथ जीते रहने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना कहीं उत्तम है।

.. . . "परमात्मा हम पर प्रसन्न है उसने हमे ऐसी स्थिति मे ला रक्खा है कि, यदि हम लड़ाई में मारे जाँय तो शहीद होंगे और यदि जीते रहे तो विजय प्राप्त करेंगे। इसलिए हमे सब को मिल कर एक स्वर से इस बात की शपथ लेना चाहिए कि देह में प्राण रहते कोई भी लड़ाई से मुंह न मोड़ेगा और न युद्ध अथवा मारकाट में पीठ दिखावेगा।"

इस भाषण से उत्साहित होकर करीब २०००० वीरो ने क़ुरान हाथ में ले ले कर कसम खाई। पर बाबर को इस पर भी विश्राम न हुआ और उसने सिलहिद्दी को सुलह का पैगाम लेकर फिर णा के पास भेजा। बाबर ने इस शर्त पर राणा को कर स्वीकार किया कि वह दिल्ली और उसके अधीन प्रान्त ामी बना रहे पर महाराणा ने इसको भी स्वीकार न इससे सिलहिद्दी बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने भविष्य

में महाराणा के साथ किस प्रकार विश्वासघात कर इसका बदला लिया यह आगे जाकर मालूम होगा। अस्तु !

जब बाबर सन्धि से बिलकुल निराश हो गया तो अन्त में उसने जी छोड़ कर लड़ाई करना ही निश्चित किया। यदि इसी अवसर पर महाराणा सुस्ती न करके उस पर आक्रमण कर देते तो मुगलवंश कभी दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित न होता और आज भारत के इतिहास का रूप ही दूसरा नजर आता। पर जब दैव ही अनुकूल न हो तो सब का किया हो ही क्या सकता है। हाँ, भारत के भाग्य में गुलाम होना बदा था।

बाबर ने सब प्रोग्राम निश्चित कर अपने पड़ाव को वहाँ से हटा कर दो मील आगे वाले मोर्चे पर जमाया। १६ मार्च को बाबर ने अपनी सेना और तोपखाने का इन्तिजाम किया और उसने चारों ओर घूम कर सब लोगों को दिलासा दे दे कर उत्तेजित किया। प्रातःकाल साढ़े नौ बजे युद्ध आरम्भ हुआ। राजपूतों ने बाबर की सेना के दाहिने और मध्य भाग पर तीन आक्रमण किये। जिसके प्रभाव से वे मैदान छोड़ कर भागने लगे।

को ही बदल दिया। वह समय बहुत ही निकट आ चुका था कि, जब बाबर की फ़ौज भगने लगती, पर इसी बीच किसी मुग़ल सैनिक का चलाया हुआ तीर महाराणा के मस्तक पर इतने ज़ोर से लगा कि, जिससे वे बेसुध हो गये। बस इस समय में महाराणा का बेसुध हो जाना ही हिन्दुस्थान के दुर्भाग्य का कारण हो गया। यद्यपि कुछ लोगों ने चतुराई के साथ उनके रिक्त स्थान पर सर्दार आज्जाजी को बिठा दिया, पर ज्यों ही राजपूत सेना में महाराणा के घायल होने का समाचार फैला त्यों ही वह निराश हो गई, और उसके पैर उखड़ने लगे। इधर अवसर देख कर मुग़लों ने ज़ोर शोर से आक्रमण कर दिया, फल वही हुआ जो भारत के भाग्य में लिखा था। राजपूत सेना भाग निकली और सभी प्रसिद्ध २ सर्दार मारे गये।

राजपूतों की इस हार पर गम्भीरतापूर्वक मनन करने से यही फल निकलता है कि, उनकी इस पराजय का कारण उनकी वीरता की कमी न थी। परंतु इसका कारण हमारी सैनिक—कायदों की वह कमज़ोरी थी जिसने कई बार हमको पहले भी धोखा दिया। इसी सैनिक पद्धति से सिंध के राजा दाहिर की जो किसी भी प्रकार मुहम्मद कासिम से कम न था, पराजय हुई, इसी पद्धति के कारण पंजाब के शक्तिशाली राजा आनन्दपाल के भाग्य का निपटारा हुआ। आनन्दपाल भी महम्मूद गज़नवी से किसी प्रकार कम न थे, पर सन् १००८ के पेशावर वाले युद्ध में उनका हाथी बेक़ाबू होकर भाग गया, और इसी के कारण उनकी पराजय हुई। और इसी नाशकारी पद्धति के कारण

द्रोहियों के चरित्र पर विशेष आलोचना करते हुए हमारी लेखनी कांपती है।" हिंदू साम्राज्य के इस दुःखान्त नाटक की यवनिका पतन के साथ साथ वह भी विश्राम लेती है।

समाप्त
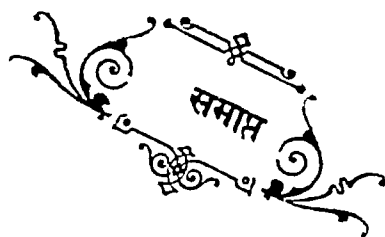
पहिले इसे अन्ततक जरूर पढ़ लीजिये ।

राष्ट्रीय साहित्य ही देश में नया जीवन पैदा करता है । खेद है हिन्दी में इस समय इसकी बड़ी कमी है । इसी कमी की पूर्ति के लिये हमने **हिन्दी साहित्य मन्दिर ग्रन्थमाला** नाम की यह माला निकालना शुरू किया है । अब देशवासियों से यह प्रार्थना है कि वे इस कार्य्य में हमारा उत्साह बढ़ावें और 'एक एक बूंद से घड़ा भर जाता है' इसी प्रकार कम से कम इस माला के स्थाई ग्राहक होकर और अपने मित्रों को बनाकर हमारी सहायता करें । स्थाई ग्राहक होने के लिये केवल एक दफा आपको आठ आने देने पड़ेंगे ।

स्थाई ग्राहक होने से अपूर्व लाभ ।

(१) ग्रन्थमाला से प्रकाशित सब ग्रन्थ पौनी कीमत में मिलेंगे । (२) प्रकाशित या प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में से आप जो चाहें लें, न पसन्द हो, न लें कोई बन्धन नहीं । (३) हमारे यहाँ दूसरे स्थानों की हिन्दी की प्रायः सभी उत्तम पुस्तकें मिलती हैं । इनमें से आप जो पुस्तकें हमारे यहाँ से मंगावेंगे, प्रायः उन सब पर एक आना रुपया कमीशन दिया जायेगा । (४) हमारे यहाँ जो पुस्तकें नई छपेंगी, उनकी सूचना बिना पोस्टेज लिये ही घर बैठे आपको देते रहेंगे ।

क्या अब भी आप स्थाई ग्राहक न बनेंगे ।

(४) प्रेसिडेंट विलसन और संसार की स्वाधीनता मू०॥=)

(५) नागपुर की कांग्रेस (दो चित्रों सहित) मू० ॥)

(६) चित्रांगदा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित । इस नाटक में प्र
प्रतापी अर्जुन और चित्राङ्गदा का पवित्र और स्वाभाविक प्रेम का बहुत
उत्तम ढंग से वर्णन किया गया है मू० ।=)

(७) तिलक दर्शन (भू० ले० श्रीमान पं० मदनमोहन माल-
वीय जी । इसमें लोकमान्य का स्फूर्तिकर चरित्र और उनके महत्वपूर्ण
लेखों और व्याख्यानों का संग्रह है । ११ चित्रों सहित मूल्य २॥)

(८) असहयोग-दर्शन—अर्थात् जीवन में नई जागृति पैदा करने
वाले म० गांधी के मुक्ति मन्त्रों का, उनके चुने हुए और असहयोग के
मर्म बताने वाले लेखों और व्याख्यानों का अपूर्व संग्रह । इसकी भूमिका
श्रीमान् पं० मोतीलालजी नेहरू ने लिखी है इसीलिये आप समझ सकते
हैं कि यह कितना अपूर्व ग्रन्थ है मूल्य १)

(९) बोल्शेविज़्म —इसकी भूमिका हिन्दी संसार में प्रसिद्ध
बाबू भगवानदास जी गुप्त ने लिखी है। भूमिका में वे लिखते
हैं "इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा और देखकर प्रसन्न हुआ।" इसमें
बोल्शेविज़्म के आचार्य्य लैनिन के निर्भीक सिद्धान्तों का वर्णन, वर्तमान
समय में वहाँ की राज्य-व्यवस्था, समाज व्यवस्था का उत्तम वर्णन है।
शुरू में वहाँ की राज्यक्रान्तिका इतिहास, एकही सप्ताह में प्रजा के हाथ
में राज्य का आना, राज्य की फौजें और पुलिस का प्रजामें मिलना आदि
अनेक जानने योग्य बातों का वर्णन है मूल्य १।=)

(१०) हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा—(रचयिता म० गांधी)
इसमें भारत का राष्ट्रीय झण्डा कैसा होना चाहिये उसका खूब वि
से चित्र सहित वर्णन किया गया है। इसके अलावा अभी हालके मह
गांधी जी के चुने हुए लेख और व्याख्यान भी दे दिये गये हैं। इस
कर आपका हृदय खिल उठेगा। मूल्य १)

(११) नवयुवको ! स्वाधीन बनो—इसमें अंग्रेज़ों के अत्याचारों को न सहने वाले और ७५ दिन तक जेल में उपवास कर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये प्राण त्यागने वाले आयरिश वीर टेरेन्स मेक्सविनी का संक्षिप्त जीवन तथा लो० तिलक म० गांधी, ला० लाजपतराय, आदि देश नेताओं के स्वाधीनता के भावों से भरे हुए उपदेश है । सचित्र मू० ॥) यह पुस्तक प्रत्येक नवयुवक के हाथ में होनी चाहिये ।

(१२) स्वतंत्रता की झनकार—यदि आप राष्ट्रीय कवियों की चुनी हुई स्वतंत्रता से भरी हुई कविताओं को पढ़ना चाहते हैं तो इसे तुरन्त मंगाइये । सचित्र मू० ॥)

(१३) भारतदर्शन—(मू० लेखक लाला लाजपतराय) भूमिका में लालाजी लिखते हैं "इस पुस्तक से मनुष्यों को यह प्रतीत हो जायगा कि इस देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था के क्या कारण हुए, किस तरह विदेशियोंने हमारे उद्योग धन्धों को नष्ट किया और क्यों हम इस समय तक दुरुस्त नहीं कर सके । मैं समझता हूं कि यह पुस्तक इस सम्बन्ध हमारे लिये बहुत कुछ सहायता देगी" मूल्य २॥) महात्मा जी लिखते हैं—

"मैं बड़े उत्साह से इस किताब की सिफारिश करता हूं"

(१४) देशबन्धु [illegible] की जीवनी—([illegible] बी० ए० [illegible]) इसमें [illegible] नहीं [illegible] है ।

(१५) [illegible] का आदर्श, सत्याग्रह और उसकी विजय—([illegible]) [illegible] । इस [illegible] को [illegible] मू० [illegible])

(१६) [illegible] का इतिहास—इसमें [illegible] है । मू० [illegible])

(१७) [illegible]—[illegible] है । [illegible] मू० [illegible])

(१८) धर्म और जातीयता—(लेखक महर्षि अरविन्द घोष) इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। मू० ॥)

(१९) तरुण भारत—(लेखक लाला लाजपत राय) पुस्तक क्या है देश की सच्ची रामायण है। मू० १।)

(२०) लक्ष्मी चरित्र—(६ चित्रों सहित) स्त्रियोपयोगी अनूठी पुस्तक—पातिव्रत धर्म का पूर्ण आदर्श मू० १)

(२१) सूर्य्यग्रहण—शिवाजीके समय का वीर रस पूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास—अनुवादक रामचन्द्र वर्मा मू० २।)

(२२) कलङ्किनी—स्त्रियोपयोगी सामाजिक उपन्यास ॥=)

(२३) गृहणीभूषण—स्त्रियोपयोगी शिक्षाप्रद पुस्तक ।)

(२४) म० ईसा नाटक—(ले० पं० बेचन शर्मा उग्र) इस मौलिक आध्यात्मिक नाटक की सारे हिन्दी संसार ने प्रशंसा की है। मू० ॥=) सजिल्द १=)

(२५) भारत में हिन्दू सम्राट्—यह पुस्तक आपके हाथ ही में है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१११	१२	क्षत्र-शक्ति	क्षत्रप-शक्ति
११२	६	चला था	चले थे।
११५	६	कौटिल्य	कौटिल्य के
११६	५	वालों	वाले सेल्यूकस
११८	१०	पड़ा।	पड़ा कि
७ १२५	११	६२	१३७
१२६	११	फिर	फिर भी
१२७	१२	और	सच्चे
१२७	१४	लोगोंके	लोगोंके फन्दे में
१२९	११	महाया	महायान
१२५	९	यूणहिचि	यूएहिचि
१२७	१८	वह	यह
१२७	७	धर्म के	बौद्ध धर्म के
१२९	७	बौद्ध थे	×
१२९	१६	रोप	जोश
१४४	२१	टसत्रा	सम्राट
१४५	११	क्षत्रय	शत्रयों
१५८	२४	सईं	इसके
१६१, १६६	८	अमणों	श्रमणों
१६६	१	हेत्रु	ज्ञान
१६७	२	मंत्रुमी	मंजुश्री
१७०	१८	बोधिवृक्ष	बोधिवृक्ष और
[illegible]२	५	को	और
[illegible]	१	कमारगुप्त	कुमारगुप्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७५	८	यूरोप में	यूरोप
१७५	१२	गांवगांव	गांवके गां[illegible]
१९०	५	एटिलमा	एटिला
१९०	१५	कारागार	कारागार से
१९१	१६	समयभी	समय
१८२	८	बाणभद्र	बाणभट्ट
१९३	१६	और	×
१९४	१७	कारागर	कारागा[illegible]
१९७	३	कथन हैं	कथन
१९९	६	दक्षिणा	दक्षिण
२०२	१८	ने	के
२०२	२३	ढूंढ़े	ढूंढ़
२१०	२०	भारतवर्षके	भारतवर्ष के इस
२१२	१	अपने	अपनी
२१४	१६	तीन	तीस
२१४	१७	तीनों	तीसों
२१५	११	दक्षिणात्म	दक्षिणात्य
२१६	३	विक्ष्वाक	विक्रमाक
२१६	११	कांचि	कांची
२२२	९	४	कि,
२२३	३	पुलेकशी	पुलकेशी का
२५	४	उन्हें	×
२४०	५	तंपरराजा	तंवर राजा
२५२	४	देव देव	जो देव
२५७	१२	सिहासना	सिंहासन

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

हिन्दी संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से यह मंडल स्थापित हुआ है। विविध विषयों पर सर्व साधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मंडल के द्वारा प्रकाशित होंगी। मूल्य लगभग लागतमात्र रहेगा अर्थात् १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें दी जावेंगी। वर्ष भर में कम से कम १६०० पृष्ठ तक की पुस्तके तीन रुपयों में दी जावेंगी। यह मूल्य स्थाई ग्राहकों के लिए है। स्थाई ग्राहक बनने के दो नियम हैं।

(१) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस भेजेंगे उनका नाम सदा के लिए स्थाई ग्राहकों मे लिख लिया जायगा और पुस्तक प्रकाशित होते ही लागत मूल्य से वी. पी. से भेज दी जावेगी।

नोट—प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से मगाने में ग्राहकों को पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी पी. खर्च का व्यर्थ ही अधिक लगेगा। इस तरह वर्ष के अन्त में पहले नम्बर के ग्राहकों को एक वर्ष में लगभग २) रुपया पोस्टेज का अधिक लग जायगा।

(२) प्रत्येक पुस्तक वी. पी. से भेजने मे स्थाई ग्राहकों को पोस्टेज का बहुत खर्चा पड़ जाता है। इसलिये ३) सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकों का मूल्य और १) पोस्टेज कुल ४) भेजकर भी वार्षिक ग्राहक बन सकते हैं। वार्षिक ग्राहकों से ॥) प्रवेश फीस के भी नहीं लिये जाते।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

<u>माला में अबतक यह पुस्तकें निकली हैं।</u>

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—(लेखक महात्मा गांधी) पृष्ठ लगभग ३०० मूल्य स्थाई ग्राहकों से ।≡) सर्व साधारण से ।॥) (२) दिव्य जीवन—पृष्ठ १३६ मूल्य स० ग्राहकों से ।)॥ सर्वसाधारण से ।=)॥ (३) शिवाजी की योग्यता—पृष्ठ १२८ मूल्य स्थाई ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।=) (४) भारत के स्त्री-रत्न—पृष्ठ ४०० मूल्य स्थाई ग्राहकों से ॥।) सर्वसाधारण से १=) इसके अतिरिक्त ४६ पुस्तकें छप रही हैं।

पता—सस्ता-साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर।